वर्ष : 44
अंक : 1
जनवरी - मार्च 2023
मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

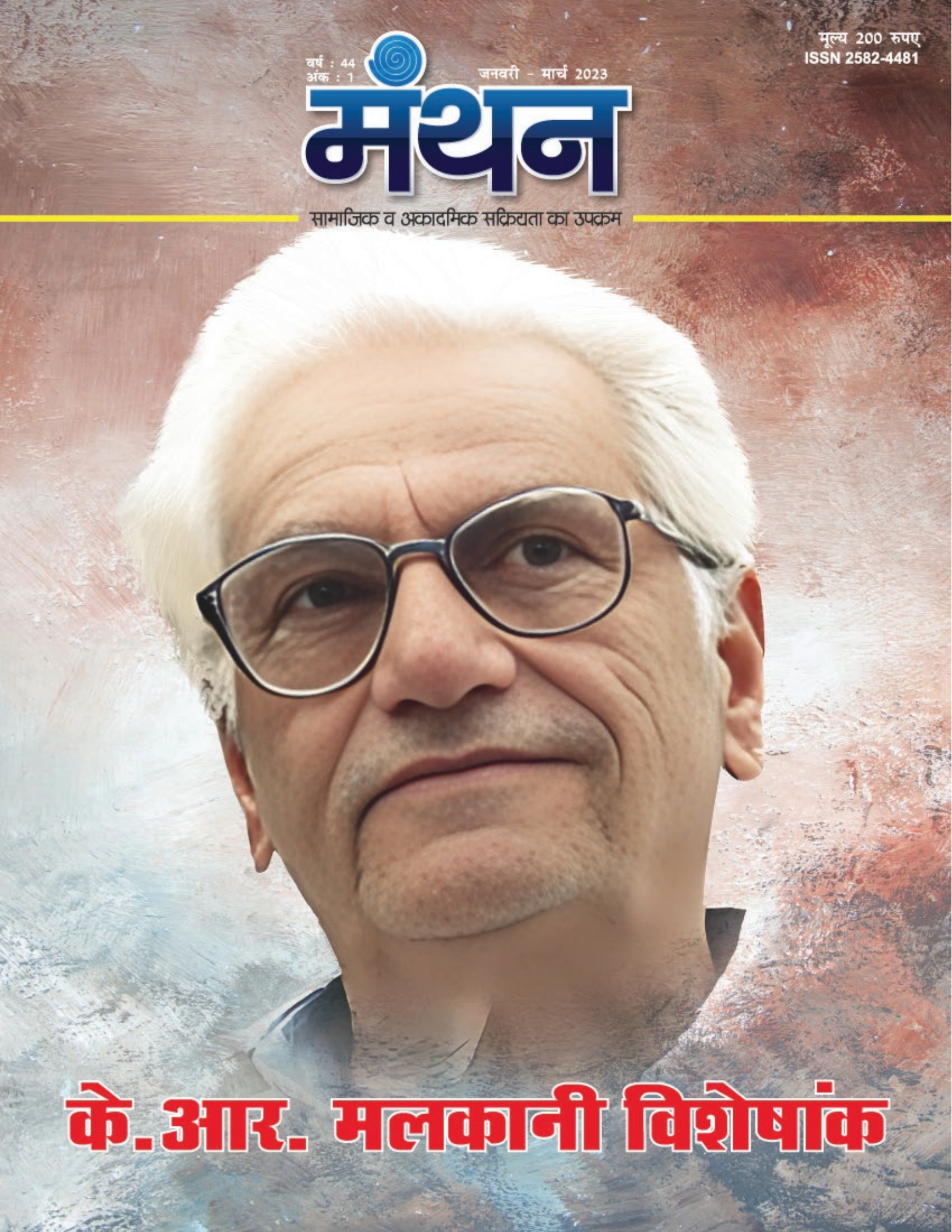

के.आर. मलकानी विशेषांक

आज़ादी का अमृत महोत्सव

G20

मध्यप्रदेश शासन

इन्वेस्ट मध्यप्रदेश

ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट

11 - 12 जनवरी 2023, इंदौर

बेहतर कल के लिए तैयार मध्यप्रदेश

नरेंद्र मोदी
प्रधानमंत्री

रजिस्टर करें
https://investmp.in/

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

एडवांटेज मध्यप्रदेश

निवेश करने के लिए अथवा मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश से वन-टू-वन मीटिंग के लिए
www.investmp.in पर विजिट कर अपना आशय प्रकट करें

निवेश के प्रमुख क्षेत्र

आयोजक
MPIDC
MP INDUSTRIAL DEVELOPMENT CORPORATION LTD.

राष्ट्रीय सहयोगी
CII
Confederation of Indian Industry

क्यूआर कोड स्कैन करें

₹ 200/-

संपादक मंडल
श्री रामबहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
डॉ. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 44, अंक : 1 जनवरी-मार्च 2023

के.आर. मलकानी विशेषांक

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
me.arvindsingh@manthandigital.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

मुद्रण
ओसियन ट्रेडिंग को.
132, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074; ईमेलः info@manthandigital.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय		04
3.	'ऑर्गनाइजर' और के.आर. मलकानी	प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार	06
4.	के.आर. मलकानी और 'द मदरलैंड' - लोकतंत्र के प्रहरी	अनिर्बान गांगुली	15
5.	मलकानी जी और *मंथन* शोध की व्यावहारिकता	अतुल जैन	20
6.	सांप्रदायिक समन्वय कठिनाइयाँ और उनके हल	के.आर. मलकानी	23

प्रतिसाद

i.	हिंदू-मुस्लिम समस्या पर पारस्परिक सहयोग का दृष्टिकोण	असगर अली इंजीनियर	35
ii.	अंग्रेजी शरारत से भी एक कदम आगे है हिंदू-मुस्लिम समस्या	एच.वी. शेषाद्रि	44
iii.	मैं एक अलग एजेंडा तैयार करूँगा	न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर (रिटा.)	45
iv.	समस्या सुलझाई जाए आपसी समझ व प्रेम से	मुफ्ती शमसुद्दीन अहमद	46
v.	हिंदू-मुस्लिम बंधुता की राह में कुछ समस्याएँ	के.एस. सुदर्शन	49
vi.	हिंदू धृष्टता और आत्मश्लाघा	सैयद शहाबुद्दीन	57
vii.	सामान्य सिद्धांत मंजूर परंतु विशेष पर आपत्ति	डॉ. गोपाल सिंह	59
viii.	आध्यात्मिक हस्तक्षेप की आवश्यकता	मोअज्जिज अली बेग	60
ix.	मैं एक वैकल्पिक और पूरक परिपत्र लिखना चाहूँगा	बलराज पुरी	61
x.	प्रमुख समस्या धर्म को परिभाषित करने की है	पी.एन. हक्सर	62
xi.	12-सूत्रीय कार्ययोजना सामान्यतः स्वीकार्य	डॉ. एम. मंजूर आलम	63
xii.	प्रामाणिक व विश्वासोत्पादक	एम. रफीक खान	64
xiii.	समस्या का मूल कारण आर्थिक है	लक्ष्मी एन. मेनन	65
xiv.	जहाँ अकबर व डॉ. भगवान दास भी असफल हो गए	मौलाना वहीदुद्दीन खान	66
xv.	पढ़ने में रुचिकर परंतु सहमत नहीं	वी. गंगाधर	66
xvi.	सार्थक बात करें फिजूल को छोड़ें	डॉ. ए.आर. बेदार	67
xvii.	यदा-कदा चमत्कार भी होते हैं	वी.के. गोकाक	67
xviii.	एक सार्थक वार्तालाप हिंदुओं और मुसलमानों के बीच	एम.वी. कामथ	68
xix.	शोध का उत्कृष्ट नमूना	प्रेम नारायण भाटिया	68
xx.	एक गंभीर विचार विनिमय आवश्यक	असगर अली इंजीनियर	69
xxi.	उलझी समस्या का ताजगी भरा समाधान	पी. परमेश्वरन	69
xxii.	एक व्यावहारिक परिपत्र	डॉ. नारायण समतानी	70
xxiii.	अत्यंत कठिन समस्या पर महत्त्वपूर्ण योगदान	एम.जे. अकबर	70
xxiv.	धार्मिक समस्या अल्पसंख्यक समस्या नहीं है	एम.आर. मसानी	71
xxv.	मत-मतांतरों के बीच रचनात्मक विमर्श चाहिए	डॉ. कर्ण सिंह	71
xxvi.	आवश्यकता विवेक की है, धर्म की नहीं	बी.के. नेहरू	72
xxvii	शुभकामनाएँ	बी.एन. पांडे	72
xxviii	सुझावों पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाए	डॉ. सुशीला नैयर	73
xxix.	भारतीय अनुभव से भारतीय समस्या का समाधान खोजें	इम्तियाज अहमद	73

आनुषंगिक आलेख

7.	प्रख्यात संपादक मलकानी जी पुस्तकों का नई दिल्ली में लोकार्पण	डॉ शंशाक द्विवेदी	74

लेखकों का परिचय

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार भारतीय जनसंचार संस्थान के अंग्रेजी पत्रकारिता विभाग में प्रोफेसर हैं। सन 2020 में भारतीय जनसंचार संस्थान में आने से पूर्व वे करीब 28 वर्षों तक वे 'ऑर्गनाइजर' साप्ताहिक के संपादकीय विभाग से संबद्ध रहे और मलकानी जी के निकटवर्ती लोगों में शामिल रहे हैं।

डॉ. अनिर्बान गांगुली संप्रति श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन के निदेशक हैं। जादवपुर विश्वविद्यालय से शिक्षा नीति पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त डॉ. गांगुली की प्रमुख कृतियाँ हैं -डिबेटिंग कल्चर : एजूकेशन, फिलॉसफी ऐंड प्रेक्टिस, स्वामी विवेकानंद, बुद्ध ऐंड बुद्धिज्म तथा द मोदी डॉक्ट्रीन: रीडिफाइनिंग गवर्नेंस।

अतुल जैन कॉलेज के प्रथम वर्ष से ही अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। कई ख्यालिलब्ध पत्र-पत्रिकाओं में महत्त्वपूर्ण दायित्व सँभालने के अलावा वे कुछ सरकारी संस्थानों में सलाहकार तथा *मंथन* के संपादक भी रहे हैं। अब वे दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान के प्रधान सचिव तथा एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास संस्थन के सचिव हैं।

के.आर. मलकानी केवलराम रतनमल मल्कानी (19 नवंबर, 1921-27 अक्तूबर, 2003) एक विख्यात पत्रकार, इतिहासकार और राजनेता थे। वे वर्ष 1991 से 1994 तक भारतीय जनता पार्टी के उपाध्यक्ष रहे। वे 1994 से 2000 तक राज्यसभा के सदस्य रहे तथा जुलाई 2002 से अपनी मृत्यु तक पुडुचेरी के उपराज्यपाल रहे। उन्होंने 'ऑर्गेनाइजर', 'पाञ्चजन्य' और 'मदरलैंड' के संपादक के रूप में लंबे समय तक काम किया। सिंध के हैदराबाद (अब पाकिस्तान में) में जन्मे श्री मल्कानी दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान, नई दिल्ली के उपाध्यक्ष भी रहे।

अशगर अली इंजीनियर (1939-2013) इस्लामिक विद्वान् थे, जो दावूदी बोहरा समुदाय से थे। वे एक प्रसिद्ध लेखक और समाज-सुधारक रहे। वे अपनी पुस्तकों 'कम्युनलिज्म इन इंडिया' और 'प्रॉब्लम ऑफ मुस्लिम वीमेन इन इंडिया' आदि के लिए विख्यात हुए।

होंगासंद्रा वेंकटरामैया शेषाद्रि (1926-2005) आजीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक रहे। उन्होंने वर्ष 1987 से 2000 तक संघ के कार्यवाह के रूप में दायित्व निर्वहन किया। वह एक सुपठित विद्वान् एवं विख्यात बौद्धिक थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'ट्रैजिक स्टोरी ऑफ पार्टीशन' के माध्यम से भारत के विभाजन के अनछुए पहलुओं को उजागर किया

न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर (1915-2014) एक प्रसिद्ध न्यायविद् और भारतीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश रहे। इन्हें वर्ष 1999 में 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया था।

मुफ्ती सम्मुद्दीन अहमद जमियत-ए-इस्लामी के सदस्य थे। वे मूलत: बिहार के आरा जिले के निवासी थे। उन्होंने अपने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत टिस्को कंपनी के कर्मचारी के रूप में की थी। बाद में वे सऊदी अरब में भी एक कर्मचारी के रूप में कार्यरत रहे। भारत वापस आने पर वे मरकज जमियत दिल्ली के जनसंपर्क सचिव बने। हदीस के ऊपर लिखी गई उनकी पुस्तक 'शम्मे रिसालत' अपने विषय पर एक प्रसिद्ध पुस्तक है।

पी. परमेश्वरन (1927-2020) को वर्ष 2004 में 'पद्मश्री' एवं वर्ष 2018 में 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया था। उन्होंने एक सुचिंतित लेखक के रूप में हिंदू विचारों और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े विषयों पर अनेक पुस्तकों का लेखन किया। 1960 के दशक में वे जनसंघ के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष रहे। नई दिल्ली स्थित दीनदयाल शोध संस्थान के निदेशक रहे।

कुप्पाहल्ली सीतारामैया सुदर्शन (1931-2012) वर्ष 2000 से वर्ष 2009 तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पाँचवें सरसंघचालक के दायित्व में रहे। पहले वे संघ के बौद्धिक विभाग के प्रमुख भी रहे। वे एक प्रशिक्षित दूरसंचार अभियंता थे।

सैयद शहाबुद्दीन (1935-2017) ने भारतीय विदेश सेवा के अधिकारी के रूप में कार्य किया। वे बाद में राजनीतिक क्षेत्र की ओर मुड़े और एक संसद सदस्य के रूप उन्होंने मुस्लिम कानूनों और सामुदायिक हितों के प्रवक्ता के रूप में स्वयं को स्थापित किया।

डॉ. गोपाल सिंह (1917-1990) एक सामाजिक कार्यकर्ता एवं एक राजनेता थे। उन्होंने राज्यसभा सदस्य, गोवा के उपराज्यपाल और नागालैंड के राज्यपाल के रूप में अपनी सेवाएँ दीं। गुरुनानक देवजी एवं गुरु गोविंद सिंहजी की जीवनी लिखने और गुरुग्रंथ साहिबजी का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करने का श्रेय इन्हें ही जाता है।

मोअज्जिन अली बेग, प्रोफेसर मनोविज्ञान, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय।

विनायक कृष्ण गोकाक (1909-1992) एक प्रसिद्ध कन्नड़ लेखक एवं शिक्षाविद् थे। वे अनेक विश्वविद्यालयों के कुलपति और शिमला स्थित भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के निदेशक भी रहे। उन्हें वर्ष 1961 में 'पद्मश्री' पुरस्कार व वर्ष 1990 में 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

डॉ. नारायण समतानी का जन्म वर्ष 1924 में हुआ था। वे बौद्ध दर्शन व पाली भाषा के एक प्रभावशाली विद्वान् हुए। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में पाली भाषा अध्ययन के लिए अलग से विभाग शुरू करवाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

बलराज पुरी (1928-2014) प्रसिद्ध पत्रकार एवं राजनीतिक टिप्पणीकार थे। जम्मू और कश्मीर अध्ययन संस्थान के निदेशक भी रहे। उन्हें वर्ष 2005 में 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया था।

ब्रज कुमार नेहरू (1909-2001) आई.सी.एस. अधिकारी थे। वे पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के चचेरे भाई भी थे; उन्हें वर्ष 1999 में 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया था।

एम. रफीक खान का जन्म 1933 में जौनपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। वे एक इस्लामिक विद्वान् थे, जो जामिया मिल्लिया इस्लामिया और गांधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली से संबद्ध थे।

मिनोचर रुस्तम मसानी (1905-1998) स्वतंत्रता सेनानी एवं भारत की संविधान सभा के सदस्य रहे। संसद सदस्य में अपनी भूमिका के लिए विख्यात हुए।

डॉ. कर्ण सिंह (1931) जम्मू-कश्मीर के पूर्व राजपरिवार से संबंध रखते हैं। वे जम्मू-कश्मीर के सदर-ए-रियासत एवं वहाँ के पहले राज्यपाल रहे। वे अपने सार्वजनिक जीवन में एक संसद सदस्य और एक बौद्धिक के रूप में प्रसिद्ध हुए।

डॉ. एम. मंजूर आलम (1945) मूलत: बिहार के मधुबनी के रहने वाले हैं। इन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एच.डी. की। सऊदी अरब की रियाद यूनिवर्सिटी में इन्होंने सह-आचार्य के रूप में सेवाएँ दी हैं तथा सऊदी अरब राजतंत्र के वित्तीय मंत्रालय में आर्थिक सलाहकार भी रहे हैं।

प्रो. इम्तियाज अहमद जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में राजनीतिक समाजशास्त्र के शिक्षक के रूप में वर्ष 1972 से 2002 के बीच कार्यरत रहे। इनकी पुस्तक 'कास्ट एंड सोशल स्ट्रातीफिकेशन अमंग मुस्लिम्स इन इंडिया' को इनका महती योगदान माना जाता है।

एम.जे. अकबर (1951) एक प्रसिद्ध लेखक, पत्रकार एवं राजनेता हैं। वे वर्ष 1989 से वर्ष 2014 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य रहे। वर्ष 2014 में वे भारतीय जनता पार्टी के सदस्य बने।

मौलाना वहीदुद्दीन खान (1925-2021) मूलत: उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के रहने वाले एक प्रसिद्ध इस्लामिक विद्वान् थे, जिन्होंने कुरान का आधुनिक अंग्रेजी में अनुवाद किया। इन्हें 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया था।

बी. गंगाधर मुंबई से कार्य करनेवाले अंग्रेजी भाषा के एक प्रसिद्ध पत्रकार हैं। 'त्रिशंकु' नाम का पात्र गढ़ने के लिए इनकी विशेष रूप से ख्याति है।

बिशंभर नाथ पांडे (1906-1998) एक स्वतंत्रता सेनानी और कांग्रेस के विख्यात नेता रहे। उन्होंने वर्ष 1984 से लेकर 1988 तक उड़ीसा के राज्यपाल के रूप में कार्य किया।

सुशीला नायर (1914-2000) एक प्रशिक्षित चिकित्सक तथा महात्मा गांधी की सहयोगी रही थीं। स्वतंत्रता के पश्चात् वे एक प्रसिद्ध गांधीवादी कार्यकर्ता के रूप में उभरीं। वर्ष 1952 से 1955 के बीच वे केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री भी रहीं।

परमेश्वर नारायण हस्कस (1913-1998) लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से शिक्षित हुए। वर्ष 1971 से 73 के बीच वे भारत के प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव रहे। उन्होंने 1975 से 77 तक योजना आयोग के उपाध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएँ दीं।

प्रेम नारायण भाटिया (1922-1995) भारत के पूर्व राजनयिक एवं एक प्रभावशाली पत्रकार रहे। वे 'द स्टेट्समैन' अखबार के राजनीतिक संपादक और 'द ट्रिब्यून' तथा 'द इंडियन एक्सप्रेस' के संपादक रहे।

लक्ष्मी एन. मेनन (1899-1994) एक स्वतंत्रता सेनानी थीं। बाद में वे राजनीति की तरफ गईं और वर्ष 1962 से 1966 तक भारत के विदेश राज्य मंत्री के रूप में कार्यरत रहीं। इन्हें वर्ष 1957 में 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया था।

डॉ. ए.आर. बेदर पटना स्थित खुदाबक्श ओरिएंटल लाइब्रेरी के डायरेक्टर रहे।

माधव विट्ठल कामथ (1921-2014) एक प्रसिद्ध पत्रकार थे। वे 'द संडे टाइम्स' और 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' के संपादक रहे। इन्हें वर्ष 2004 में 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया था।

डॉ. शशांक द्विवेदी मेवाड़ विश्वविद्यालय के निदेशक (प्रकाशन) हैं

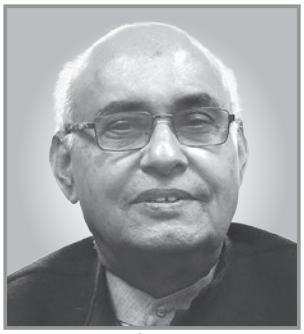

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय

जनवरी-मार्च 2023 पाश्चात्य वर्ष का यह पहला अंक आपके हाथ में है, अभिनंदन। यह अंक श्री के. आर. मलकानी कि स्मृति को समर्पित है। श्री के.आर. मलकानी एक संवेदनशील बुद्धिजीवी एवं सरोकारी पत्रकार थे। 19 नवंबर 2022 को उनकी जन्म शताब्दी का समारोप संपन्न हो गया। प्रतिवेदन इस अंक में है। लगभग पाँच दशकों तक उन्होंने पत्रकारीय लेखन किया। स्वाभाविक रूप से इस लेखन में विषयगत विविधता रही है।

मलकानी जी का परिवार सिंध-प्रदेश में आजादी के आंदोलन से जुड़ा हुआ था। उनके बड़े भाई श्री नारायण दास मलकानी, गांधीवादी कांग्रेसी थे। सिंध में ही श्री के.आर. मलकानी का संबंध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से बना। विभाजन की भयानक त्रासदी को सिंध ने विशेष रूप से भोगा था। संघ के स्वयंसेवकों ने संप्रदायाधारित द्वि-राष्ट्रवाद को स्वीकार नहीं किया था। अत: वे 'अखंड भारत' के प्रतिपादक विचारों के प्रवक्ता बने। उन्होंने 'हिंदुस्तान टाइम्स' के पत्रकार के रूप में अपना कार्य प्रारंभ किया, लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री एकनाथ रानाडे के आग्रह पर उन्होंने 'हिंदुस्तान टाइम्स' छोड़ नव प्रकाशित 'ऑर्गनाइजर' साप्ताहिक का संपादक बनना स्वीकार किया। वे चार दशकों तक 'ऑर्गनाइजर' के संपादक रहे। अंग्रेजी विश्व सामान्यत: 'ऑर्गनाइजर' के माध्यम से ही संघ का परिचय प्राप्त करता रहा है।

1975 में आपातकाल के प्रथम बंदी थे श्री के.आर. मलकानी। दिनांक 25 जून की रात्रि में ही उनको मीसा बंदी बना लिया गया। बंदी बनाने का मूल कारण था उनका 'द मदरलैंड' दैनिक का संपादक होना। वे पूरे आपातकाल में बंदी रहे। जेल का सर्वोत्तम उपयोग तो अध्ययन में ही है, मलकानी जी वैसे भी उद्भट अध्येता थे। जेल ने उन्हें बहुपाठी अध्येता बना दिया। इसका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक 'आधी रात को कोई दस्तक देता है' में किया है।

कुछ काल तक मलकानी जी 'ऑर्गनाइजर' तथा 'मदरलैंड' दोनों के संपादक रहे। आपातकाल के बाद 'मदरलैंड' पुन: प्रकाशित नहीं हो सका। 'ऑर्गनाइजर' पुन: प्रकाशित हुआ तथा मलकानी जी ही उसके संपादक सन् 1984 तक रहे। तत्पश्चात् वे दीनदयाल शोध संस्थान के उपाध्यक्ष तथा शोध पत्रिका *मंथन* के संपादक बने।

जेल के अध्ययनावसर ने उन्हें जो नवीन दृष्टि प्रदान की उसका एक संदर्भ भारतीय मुसलमान भी है। उन्होंने 1979 में अपनी पुस्तक में एक अध्याय लिखा 'मुस्लिम एक नया परिप्रेक्ष्य'। यह विषय उनको मथता रहा अत: उन्होंने जून 1988 के '*मंथन*' में एक आलेख प्रस्तुत किया 'Resolving Religio-Cultural Differences in the Service of The Indian People.' इस शोधालेख की प्रतियाँ देश के सौ से अधिक लोगों को भेजी गईं। एक शानदार एवं बोधप्रद संवाद हुआ। इस अंक में वह संवाद प्रकाशित है। उन्होंने जो

शोध-आलेख लिखा वह अंग्रेजी *मंथन* के जून 1988 तथा हिंदी *मंथन* के अगस्त 1988 के अंकों में प्रकाशित हुआ। इस आलेख पर सबसे पहली प्रतिक्रिया 7 जुलाई, 1988 को 'इंडियन एक्सप्रेस' में छपी, जो असगर अली इंजीनियर की थी:

"मुझे यह जानकर प्रसन्नता एवं आश्चर्य हुआ कि दीनदयाल शोध संस्थान के श्री के.आर. मलकानी ने मुसलमानों से विचार-विमर्श करने के लिए एक निबंध तैयार किया है। मैं कह सकता हूँ कि यह प्रस्तावना-लेख निस्संदेह संतुलित है और बहु-संख्यक समुदाय के भाइयों के साथ बातचीत करने का आधार बन सकता है। मुसलमानों के कुछ प्रतिनिधि संगठनों को भी चाहिए कि वे भी हिंदुओं से बातचीत करने के लिए इसी प्रकार के दस्तावेज का प्रारूप तैयार करें। इस प्रकार के विचार-विनिमय के लिए इस्लामी धर्म-शास्त्र में काफी गुंजायश है। बातचीत के लिए इस प्रकार के प्रारूप की रचना करने हेतु 'दि इंस्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक स्टडीज' बिलकुल तैयार है।"

श्री असगर अली ने वह प्रारूप तैयार किया, जिसे मलकानी जी ने अंग्रेजी *मंथन* में सितंबर 1988 को प्रकाशित किया। शीर्षक था 'हिंदू-मुस्लिम समस्या : एक सहकारी दृष्टिकोण' (Hindu Muslim Problem: A Cooperative Approach) इस प्रारूप पर लिखा था 'हिंदू-मुस्लिम संवाद संवर्धन के लिए प्रलेख' (A Document for Promotion of Hindu Muslim Dialogue) यह प्रलेख हिंदी *मंथन* में दिसंबर 1988 को प्रकाशित हुआ। संवादांतर्गत यह आलेख भी इस अंक में है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन बौद्धिक प्रमुख तथा बाद में सरसंघचालक रहे श्री कु. सी. सुदर्शन तथा तत्कालीन सह-सरकार्यवाह तथा बाद में सरकार्यवाह रहे श्री एच. वी. शेषाद्री के मंतव्य बहुत ही बेबाक तथा सत्य के कठोर धरातल को रेखांकित करने वाले हैं। संघ के इन तीन वरिष्ठ जनों श्री मलकानी, श्री शेषाद्री तथा श्री सुदर्शन जी का यह सवाद, संघ के भीतरी संवाद को भी प्रकट करता है। कालांतर में श्रीमान कु.सी. सुदर्शन के संपर्क में आए मुस्लिम नेताओं ने 'राष्ट्रीय मुस्लिम मंच' की भी स्थापना की।

देश की सभी विचारधाराओं व लब्ध प्रतिष्ठित बुद्धिजीवियों ने मलकानी जी के प्रारूप पर अपने विचार रखे। वे बहुत ही बोधप्रद हैं। मुस्लिम बुद्धिजीवी भी उसमें शामिल हैं, उनकी प्रतिक्रियाएँ कहीं सकारात्मकताओं को व्यक्त करती हैं, कभी गहरी नकारात्मकता को। श्री सय्यद शहाबुद्दीन ने सर्वाधिक नकारात्मक टिप्पणी की। यह संवाद बेहद रुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक है तथा आज बहुत ही प्रासंगिक भी है। इसीलिए इस अंक का संयोजन हुआ है।

कभी-कभी लगता है कि आज जो वातावरण बना है, उसमें बहुत तनाव है यह संवादोपयोगी नहीं है। यह सत्य नहीं है, भारतीय स्वभाव प्रकृतित: संवादधर्मी है। आवश्यकता है विश्वसनीय एवं सार्थक पहल की। मलकानी जी की यह जन्मशताब्दी हमें अवसर देती है कि हम मलकानी जी की उस पहल को आगे बढ़ाएँ।

'ऑर्गनाइजर', 'मदरलैंड' एवं *मंथन* यही उनके पत्रकारीय जीवन का समग्र है। तदनुकूल सामग्री आपको इस अंक में मिलेगी। 2023 का यह वर्ष महापुरुषों की स्मृति को समर्पित रहेगा, अगला अंक भगत सिंह विशेषांक है।

शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

'ऑर्गनाइजर' और के.आर. मलकानी

आज के 'ऑर्गनाइजर' को आकार देने वाले केवल रतन मलकानी हैं। लेखन के जरिये उनके अप्रतिम योगदान का एक विश्लेषण

सारांश

के.आर. मलकानी नाम से विख्यात श्री केवल रतन मलकानी एक ऐसे असाधारण प्रतिभासंपन्न भारतीय पत्रकार, लेखक और शोधकर्ता हुए हैं, जिनका स्मरण स्वतंत्र भारत की पत्रकारिता में उच्च पत्रकारीय मूल्यों और अद्भुत शोध कौशल के लिए होता है। भले ही उन्होंने अपने पत्रकार जीवन की शुरुआत वर्ष 1948 में अंग्रेजी दैनिक 'हिंदुस्तान टाइम्स' से की हो, परंतु पत्रकारिता में उन्हें पहचान मिली 'ऑर्गनाइजर'और 'द मदरलैंड' के संपादक के रूप में।उन्होंने 1948 से 1983 तक 'ऑर्गनाइजर' का संपादन किया। पंडित जवाहरलाल नेहरु और श्रीमती इंदिरा गाँधी की सरकारें उनके लेखन को लेकर इतनी सजग रहती थीं कि 'ऑर्गनाइजर' की प्रति प्रकाशित होते ही उन्हें तत्काल उपलब्ध करायी जाती थी।तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु ने एक बार स्वयं श्री मलकानी से कहा था कि "वे 'ऑर्गनाइजर' के प्रत्येक अंक की बेसब्री से प्रतीक्षा करते हैं ताकि वे जान सकें कि उनकी अब किस बात के लिए आलोचना हो रही है"। संभवत: 'ऑर्गनाइजर' पर सरकार की इतनी पैनी नजर के कारण ही 25 जून, 1975 को देश में आधी रात के समय आपातकाल लागू होते ही जिन प्रमुख लोगों को सरकार ने आधी रात को ही गिरफ्तार किया, उनमें मलकानी जी पहले व्यक्ति थे।आपातकाल हटने के बाद वे उन लोगों में शामिल थे, जिन्हें मार्च 1977 में सबसे बाद में छोड़ा गया। स्वतंत्र भारत की पत्रकारिता में राष्ट्रवादी स्वर को कुचलने के लिए 1950 में ही 'ऑर्गनाइजर' पर प्रतिबंध लगाया गया, जिसे मलकानी जी ने 17 अप्रैल, 1950 को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी। बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने 5 जून, 1950 को उस प्रतिबंध को असंवैधानिक करार दिया था। 'ऑर्गनाइजर' के संपादक रहते हुए मलकानी जी ने फादर अंथनी एलेंजीमित्तम, पुरुषोत्तम दास टंडन, के.एम. मुंशी, राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, डॉ. कर्ण सिंह जैसे विभिन्न विचारधारों के विद्वान् नेताओं और लेखकों को अखबार में प्रमुखता से स्थान दिया। यहाँ तक कि तत्कालीन प्रमुख वामपंथी नेता भी 'ऑर्गनाइजर' के माध्यम से अपने विचारों को प्रस्तुत करने में सम्मान महसूस करते थे। मलकानी जी भारतीय पत्रकारों में उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके लिए पत्रकारिता एक मिशन और देशसेवा का माध्यम थी। यही कारण था कि उन्हें जब 'ऑर्गनाइजर' का संपादक बनने के लिए कहा गया तो उन्होंने कम वेतन पर भी यह जिम्मेदारी स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं किया। और यह जिम्मेदारी उन्होंने अनथक34 वर्ष तक निभाई। वर्ष 2021-22 उस योद्धा पत्रकार (19 जनवरी, 1921 से 27 अक्टूबर, 2003) का जन्म शताब्दी वर्ष है। इस निमित्त भारतीय पत्रकारिता में उनके योगदान को 'ऑर्गनाइजर' में उनके द्वारा लिखे गए लेखों के माध्यम से समझना अत्यंत प्रासंगिक है। शोधकर्ता ने स्वयं 'ऑर्गनाइजर' में 28 वर्ष तक विभिन्न संपादकीय पदों पर कार्य किया है और श्री केवलरतन मलकानी के साथ अनेक बार विभिन्न विषयों पर संवाद किया।

संकेत शब्द: *के.आर. मलकानी, ऑर्गनाइजर, आरएसएस, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, ए.आर. नायर, वाइस ऑफ द नेशन, द मदरलैंड, पांचजन्य, हिंदुस्तान टाइम्स*

प्रस्तावना

एक पत्रकार के रूप में अपनी असाधारण शोध वृत्ति और दृढ़ लेखनीके कारण श्री के. आर. मलकानी ने स्वतंत्र भारत की पत्रकारिता

में कई पीढ़ियों को प्रभावित किया है। वे ऐसे 'प्रखर राष्ट्रभक्त पत्रकार' (कोश्यारी, 2021), महान दृष्टा, मुखर लेखक और वक्ता थे, जिनके लिए सदैव राष्ट्र सर्वप्रथम था। जिस मुद्दे पर उन्हें लगता था कि वे सही हैं उस पर वे मुखर होकर लिखते थे। वे पत्रकारों की उस पीढ़ी से आए जो एक मिशनरी भाव के साथ स्वतंत्रता आंदोलन से उपजी थी। 'ऑर्गनाइजर' के संपादक की जिम्मेदारी संभालने के बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा और अत्यंत सूक्ष्म सुविधाओं, कम स्टाफ और सत्तापक्ष की ओर से लगातार पैदा की जाती रही परेशानियों के बावजूद वे लगातार काम करते रहे।किसी भी प्रकार का लालच उन्हें अपने पथ और प्रतिबद्धता से डिगा नहीं सका।वर्ष 1983 में 'ऑर्गनाइजर'से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने किसी भी मीडिया संस्थान में काम करने की बजाए दीनदयाल शोध संस्थान में काम करना पसंद किया और अनेक वर्षों तक संस्थान की शोध पत्रिका '*मंथन*' का संपादन करते रहे।राज्य सभा सांसद रहते हुए भी उन्होंने सदैव अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्य का पालन किया। मलकानी जी का जन्म 19 नवंबर, 1921 को तत्कालीन सिंध के हैदराबाद (अब पाकिस्तान में) में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा हैदराबाद (सिंध) के डी.जी. नेशनल कॉलेज, पुणे (भारत) के फर्गुसन कॉलेज तथा मुंबई के स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एंड सोशियोलॉजी से हुई। वर्ष 1948 की शुरुआत में 'हिंदुस्तान टाइम्स' में उपसंपादक के रूप में पत्रकारिता की अपनी यात्रा आरंभ करने से पूर्व उन्होंने उसी डी. जी. नेशनल कॉलेज में व्याख्याता के रूप में 1945 से 1947 तक दो वर्ष काम किया, जहाँ से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने 'ऑर्गनाइजर' के संपादक की जिम्मेदारी 1948 के उत्तरार्ध में संभाली और अखबार के सबसे युवा और सबसे अधिक अवधि तक काम करने वाले संपादक बने। इस अवधि में उन्होंने 1971 से 1975 तक 'ऑर्गनाइजर' के सहयोगी प्रकाशन अंग्रेजी दैनिक 'मदरलैंड' और हिंदी साप्ताहिक 'पांचजन्य' के संपादक की जिम्मेदारी का भी निर्वाह किया। वर्ष 1971 में जब बांग्लादेश युद्ध हुआ तो उन्होंने 'द मदरलैंड' नाम से ही एक सांध्य दैनिक का संपादन भी किया। यह चार पृष्ठ का ब्रॉडशीट समाचार पत्र था। वर्ष 1961-62 के दौरान वे हार्वर्ड यूनिवर्सिटी की फेलोशिप पर अमेरिका अध्ययन हेतु गए। वर्ष 1978 से 1979 तक वे एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के महासचिव भी रहे।

उनकी प्रमुख पुस्तकों में शामिल हैं 'द मिडनाइट नॉक' (1977), 'द आरएसएस स्टोरी' (1980), 'द सिंध स्टोरी' (1984), 'अयोध्या एंड हिंदू मुस्लिम रिलेशंस' (1993) आदि। वर्ष 2002 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'इंडिया फर्स्ट' उनके द्वारा समय-समय पर लिखे गए लेखों का संकलन है। उनकी अंतिम पुस्तक 'पोलिटिकल मिस्ट्रीज' भारत में हुई राजनीतिक हत्याओं पर केंद्रित है, जिसमें महात्मा गाँधी, श्यामा प्रसाद मुकर्जी, इंदिरा गाँधी, राजीव गाँधी, कश्मीर की राजकुमारी, कनिष्क एयरक्राफ्ट बोम्बिंग और पुरुलिया हथियार गिराने के मामले की पड़ताल की गई है। पांडिचेरी के उपराज्यपाल रहते हुए उन्होंने 27 अक्टूबर, 2003 को अंतिम साँस ली। वर्ष 1994 से 2000 तक वे राज्य सभा सांसद रहे। उन्होंने 1983 से 1991 तक दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, के उपाध्यक्ष की जिम्मेदारी भी निभाई। नवंबर 2021 में शुरू हुए उनके जन्म शताब्दी वर्ष के दौरान पत्रकारिता में उनके योगदान का स्मरण करने के लिए देशभर में अनेक गतिविधियों का आयोजन हुआ। इसलिए उनके विचारों को उसी 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित उनके लेखों के माध्यम से समझना प्रासंगिक होगा, जहाँ उन्होंने तीन दशक से भी अधिक समय तक एक संपादक के रूप में काम किया।

आजकल के बहुत से संपादकों की अपेक्षा (जो अपने अखबार में संपादकीय तक नहीं लिखते) मलकानी जी ऐसे संपादक थे जो 'ऑर्गनाइजर' के प्रत्येक अंक में संपादकीय ही नहीं बल्कि अधिकतर अंकों की आवरण कथा भी स्वयं ही लिखते थे। 'द मदरलैंड' में मलकानी जी के साथ काम कर चुके वरिष्ठ पत्रकार श्री के.एन. गुप्ता इन शब्दों में मलकानी जी की दूरदृष्टि, विश्लेषण क्षमता और साहस का स्मरण करते हैं: "मलकानी जी ऐसे पत्रकार थे, जिन्होंने बहुत पहले यह भविष्यवाणी कर दी थी कि देश में कभी भी आपातकाल लागू हो सकता है! उन्होंने जनवरी 1975 में 'द मदरलैंड' के मुखपृष्ठ पर खबर प्रकाशित की थी कि श्रीमती इंदिरा गाँधी जल्दी ही देश में आपातकाल लागू कर विपक्षी नेताओं को जेल में डाल सकती हैं और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि संगठनों पर प्रतिबंध लग सकता है। हालाँकि जनवरी 1975 में उस खबर पर ज्यादातर लोगों ने ध्यान नहीं दिया, परंतु बाद में जब 25 जून, 1975 की आधी रात को देश में आपातकाल लागू हुआ तो वह खबर सच साबित हुई। संभवत: वह खबर मुंबई निवासी जनसंघ के तत्कालीन वरिष्ठ नेता श्री वसंत पंडित की भविष्यवाणी पर आधारित थी।श्री पंडित एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी भी थे। दरअसल उन्होंने श्री लालकृष्ण आडवाणी को कहा था कि शीघ्र ही उनके जीवन में दो साल का अज्ञातवास आने की संभावना है। मलकानी जी जैसे दूरदृष्टा संपादक ने ही उस समय उस खबर को प्रकाशित करने का साहस दिखाया था" (गुप्ता, 2021)।

आजकल के बहुत से संपादकों की अपेक्षा (जो अपने अखबार में संपादकीय तक नहीं लिखते) मलकानी जी ऐसे संपादक थे जो 'ऑर्गनाइजर' के प्रत्येक अंक में संपादकीय ही नहीं बल्कि अधिकतर अंकों की आवरण कथा भी स्वयं ही लिखते थे। 'द मदरलैंड' में मलकानी जी के साथ काम कर चुके वरिष्ठ पत्रकार श्री के.एन. गुप्ता इन शब्दों में मलकानी जी की दूरदृष्टि, विश्लेषण क्षमता और साहस का स्मरण करते हैं: मलकानी जी ऐसे पत्रकार थे, जिन्होंने बहुत पहले यह भविष्यवाणी कर दी थी कि देश में कभी भी आपातकाल लागू हो सकता है

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भारतीय पत्रकारिता में श्री केवलरतन मलकानी के योगदान को

समझना है। चूँकि प्रस्तुत अध्ययनऐतिहासिक प्रकृति का है इसलिए श्री मलकानी के संपादकत्व में 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित विषयवस्तु का ही विश्लेषण किया गया है। खासतौर से 1948 से 1983 के मध्य श्री मलकानी द्वारा 'ऑर्गनाइजर' में लिखित सम्पादकीयों और खबरों को प्रमुख डाटा के रूप में लिया गया है। इसके अलावा कुछ ऐसे लोगों की राय भी ली गई है, जिन्होंने 'ऑर्गनाइजर' अथवा 'द मदरलैंड' में मलकानी जी के साथ काम किया।

'ऑर्गनाइजर' की शुरुआत

राष्ट्रीय दृष्टिकोण के एक अंग्रेजी साप्ताहिक समाचार पत्र को आरंभ करने का निर्णय स्वतंत्रता से पूर्व उस समय ले लिया गया था जब वर्ष 1946 में 16,000 अंशधारकों के सहयोग से भारत प्रकाशन (दिल्ली) लिमिटेड नाम से एक कंपनी की स्थापना की गई।इस कंपनी के स्वामित्व में 'ऑर्गनाइजर' का प्रथम अंक 3 जुलाई, 1947 को प्रकाशित हुआ। भारत प्रकाशन (दिल्ली) लिमिटेड नाम से कंपनी की स्थापना के विचार को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन युवा प्रचारक श्री वसंतराव ओककी ओर से बल मिला और उस काम में हिंदी पत्र 'दैनिक भारतवर्ष' के संपादक श्री देवेन्द्र विजय दढवाल, दो सरकारी कर्मचारी श्री अमरनाथ बजाज और श्री चौतराम तथा दिल्ली क्लॉथ मिल्स के तत्कालीन मालिक लाला चरत राम का सहयोग भी सक्रिय रूप से मिला। दिल्ली से अंग्रेजी साप्ताहिक समाचार पत्र आरंभ करने के इस प्रयास में मुख्य भूमिका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन वरिष्ठ प्रचारक श्री माधवराव मूले और पंडित दीनदयाल उपाध्याय की थी।उसी समय दीनदयाल जी लखनऊ से हिंदी मासिक पत्रिका 'राष्ट्रधर्म' और हिंदी साप्ताहिक पत्र 'पांचजन्य' की शुरुआत की तैयारी भी कर रहे थे।स्वतंत्रता प्राप्ति तक जिस प्रसिद्ध लतीफी प्रेस में 'डॉन' अखबार छपता था, उसी लतीफी प्रेस से 'ऑर्गनाइजर' का प्रकाशन शुरू हुआ। भारत विभाजन के बाद 'ऑर्गनाइजर' ने उस प्रेस को खरीद लिया और उसका नाम बदलकर 'हिंदुस्तान प्रेस' कर दिया।

बेशक, 'ऑर्गनाइजर' के प्रकाशन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं की सक्रिय भूमिका थी, परंतु ज्यादातर लोगों को मालूम नहीं है कि 'ऑर्गनाइजर' के प्रथम संपादक श्री ए. राघवन नायर का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से कोई संबंध नहीं था और वामपंथ के प्रति उनका झुकाव सर्वविदित था। दरअसल, ऐसा जानबूझकर किया गया था और इसके पीछे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक श्री गुरूजी की यह कल्पना थी कि अखबार पर शुरू से ही हिंदुत्व का लेबल न लगे। श्री नायर का चयन वास्तव में उनकी अंग्रेजी भाषा पर पकड़ और बेहतरीन सम्पादकीय कौशल के कारण किया गया था। उन्होंने ऑर्गनाइजर की जिम्मेदारी जून 1947 में संभाली। वे मूल रूप से केरल के रहने वाले थे ओर पहले चीन और बैंकोक के अखबार 'द स्ट्रेट टाइम्स' तथा भारत में 'द स्टेट्समैन' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में काम कर चुके थे।'ऑर्गनाइजर' का प्रकाशन 1948 तक निर्बाध गति से चलता रहा।लेकिन महात्मा गाँधी की हत्या के झूठे आरोप में जब संघ पर प्रतिबंध लगा तो सरकार ने उस समय 'ऑर्गनाइजर'की प्रिंटिंग प्रेस और ऑफिस को भी जब्त कर लिया।उसके बाद 1950 में श्री नायर ने 'द डेल्ही टाइम्स' नाम से अपना स्वयं का अखबार शुरू किया।'ऑर्गनाइजर' से अपने पिता के संबंधों पर टिप्पणी करते हुए श्री नायर के पुत्र श्री कृष्णा राज कहते हैं, "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखबार से मेरे पिताजी का संबंध पूरी तरह प्रोफेशनल था न कि वैचारिक। वे अंग्रेजी भाषा में ही नहीं, बल्कि हिंदू दर्शन और भारतीय संस्कृति के बहुत अच्छे जानकर थे" (नायर, 2018)।

'ऑर्गनाइजर' के 28 जनवरी, 2018 के अंक में प्रकाशित एक लेख में 'ऑर्गनाइजर' के शुरूआती प्रकाशन के उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है: "ऑर्गनाइजर के प्रकाशन का प्रमुख उद्देश्य उन वैकल्पिक विचारों को स्वर प्रदान करना था, जिन्हें स्वतंत्र भारत में कांग्रेस-वामपंथी गठबंधन के कारण हाशिये पर धकेल दिया गया था। इसके अलावा इसका एक और उद्देश्य सभ्यागत मूल्यों के मजबूत आधार पर राष्ट्रत्व की उन परंपरागत जड़ों को पुनर्भाषित करना था जिनके लिए हमारे पूर्वजों ने विदेशी आक्रांताओं से दीर्घकाल तक संघर्ष किया. ...इस प्रयास में 'ऑर्गनाइजर' पर पहला आघात महात्मा गाँधी की जघन्य हत्या के बाद हुआ।उस हत्या के झूठे आरोप में संघ पर प्रतिबंध लगा दिया गया और उसी साजिश के तहत छह महीने पुराने इस प्रकाशन का भी गला घोंट दिया गया। बाद में जब संघ से बिना शर्त प्रतिबंध हटाया गया तो उसे बाद जो अन्य गतिविधियाँ देशभर में सामान्य रूप से शुरू हुई उनमें 'ऑर्गनाइजर' का पुन: प्रकाशन भी था। इस बार केवल रतन मलकानी को इसके संपादन की जिम्मेदारी सौंपी गई। कुछ ही समय में मलकानी जी 'ऑर्गनाइजर' की प्रमुख पहचान बन गए और उन्होंने 1948 से 1983 इस पत्र का संपादन किया (ऑर्गनाइजर, 2018)। पत्र के वैचारिक झुकाव को स्पष्ट करते हुए 'ऑर्गनाइजर' के वर्तमान संपादक प्रफुल्ल केतकर कहते हैं, "हर प्रकाशन का कुछ न कुछ वैचारिक झुकाव होता ही है। कुछ का प्रत्यक्ष और कुछ का अप्रत्यक्ष, परंतु वे इसे स्वीकार करने से बचते हैं।'ऑर्गनाइजर'ने उस समय स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि भारत की वही सांस्कृतिक एकता हमारी प्रेरणा है जिसके लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रतिबद्ध है जब बहुत से लोग इस राष्ट्रीय दृष्टि वाले स्वैच्छिक संगठन को अछूत मानते थे। इस काम में 'ऑर्गनाइजर' ने संगठन का मुखपत्र बनने की बजाय हाशिये पर धकेल दिए गए उन सभी लोगों की आवाज बनना पसंद किया जो इस देश के शाश्वत मूल्यों की बात करते हैं (केतकर, 2018)।

सरकारी उत्पीड़न

के. आर. मलकानी महज ऐसे पहले पत्रकार नहीं थे, जिन्होंने 'द मदरलैंड' में प्रकाशित एक समाचार के माध्यम से देश में आपातकाल लागू होने की संभावना व्यक्त की थी, बल्कि वे ऐसे पहले व्यक्ति भी थे जिसे आपातकाल लागू होने के तत्काल बाद गिरफ्तार किया गया था।'द इंडियन एक्सप्रेस' की संपादक रहीं कूमी कपूर ने अपनी पुस्तक 'द इमरजेंसी: अ पर्सनल हिस्ट्री' में श्री मलकानी की गिरफ्तारी का इन शब्दों में वर्णन किया है: "पुलिसवालों के एक समूह ने 26 जून, 1975 की सुबह 1.00 बजे मलकानी जी के राजेंद्र नगर स्थित घर को चारों तरफ से घेरकर उन्हें नींद से

जगाया और कहा कि वे उनके साथ थाने चलें।उनके घर को चारों तरफ से घेर लिया गया था। उनके छोटे से बगीचे में भी पुलिस वालों के झुंड जमा थे।" श्री मलकानी की गिरफ्तारी के समाचार को उस दिन 'द हिंदुस्तान टाइम्स' ने एक कॉलम में प्रकाशित किया था, जो अगले दिन के अखबारों में आपातकाल के संबंध में प्रकाशित एकमात्र खबर थी (शर्मा, 2020)।

आपातकाल पहली घटना नहीं थी जब 'ऑर्गनाइजर' की आवाज को चुप करने का प्रयास किया गया।उससे पच्चीस साल पहले 1950 की शुरुआत में भी जवाहरलाल नेहरु की सरकार ने ऐसा ही प्रयास कर मुंह की खायी थी। देश में जब पाकिस्तान के साथ युद्ध के हालत थे और बंगाल और पश्चिमी पाकिस्तान में हिंदुओं पर अमानवीय अत्याचार हो रहे थे उस समय 'ऑर्गनाइजर' ने 27 फरवरी, 1950 के अंक में मुखपृष्ठ पर 'सिक्स क्वेश्चंस' नाम से एक खबर प्रकाशित की। इसके बाद एक पूरी श्रंखला के माध्यम से मुस्लिम लीग से जुड़े मुस्लिम कट्टरपंथियों द्वारा हिंदुओं पर किये जा रहे अत्याचारों का खुलासा किया गया। पंडित नेहरु सरकार ने 'ऑर्गनाइजर' द्वारा ऐसे संवेदनशील मुद्दों पर की जा रही 'ग्राउंड रिपोर्टिंग' को बंद करने के लिए कड़ा रुख अपनाया और केन्द्रीय प्रेस सलाहकार समिति के समक्ष स्पष्टीकरण देने के लिए के.आर. मलकानी को तलब किया। श्री मलकानी ने 'ऑफिसियल एक्ट ऑफ हर्रेस्मेंट' शीर्षक से 'ऑर्गनाइजर' में एक सम्पादकीय लिखकर इस कृत्य का कड़ा प्रतिकार किया। इसकी प्रतिक्रिया में 'ऑर्गनाइजर' पर सेंसरशिप लगा दी गई, जिसे 17 अप्रैल, 1950 को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। न्यायालय ने 5 जून, 1950 को ईस्ट पंजाब पब्लिक सेफ्टी एक्ट के उस संबंधित प्रावधान को असंवैधानिक करार दिया, जिसके तहत वह सेंसरशिप लगायी गई थी। इस प्रकार के सरकारी उत्पीड़न पर टिप्पणी करते हुए 'ऑर्गनाइजर' के पूर्व सहयोगी संपादक श्री रमेश चंद बतुरा कहते हैं, "आपातकाल के दौरान 'ऑर्गनाइजर' पर जो आघात हुआ वह इतना क्रूर था कि उससे यह अखबार कभी नहीं उभर पाया। इसकी प्रिंटिंग प्रेस, कार्यालय के दस्तावेज, अखबार की पुरानी प्रतियाँ और महत्वपूर्ण फाइलें आदि सभी को पूरी तरह नष्ट कर दिया गया। अपने अंकों की पुरानी प्रतियों को 'ऑर्गनाइजर' ने बाद में जैसे-तैसे अपने पाठकों से एकत्र किया। इसीलिये 'ऑर्गनाइजर' के बहुत से पुराने अंक आज भी उपलब्ध हैं। हालाँकि कुछ विदेशी पुस्तकालयों में वे अंक मिल जाते हैं। परंतु 'ऑर्गनाइजर' आज तक अपनी स्वयं की प्रिंटिंग प्रेस नहीं खरीद पाया" (बतुरा, 2018)।

कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा से संपन्न संपादक होने के बावजूद मलकानी जी अपने कौशल में अभिवृद्धि करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। इसीलिए अक्टूबर 1960 में वे एक फेलोशिप पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु दो वर्षों के लिए गए। उन दो वर्षों में उन्होंने अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को और अधिक गहराई से समझने का प्रयास किया और वैश्विक स्तर पर अनेक नए मित्र भी बनाए। उनकी अनुपस्थिति में श्री लालकृष्ण आडवाणी ने 'ऑर्गनाइजर' के कार्यवाहक संपादक का दायित्व संभाला

हार्वर्ड विश्वविद्यालय से फेलोशिप

कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा से संपन्न संपादक होने के बावजूद मलकानी जी अपने कौशल में अभिवृद्धि करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। इसीलिए अक्टूबर 1960 में वे एक फेलोशिप पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु दो वर्षों के लिए गए। उन दो वर्षों में उन्होंने अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को और अधिक गहराई से समझने का प्रयास किया और वैश्विक स्तर पर अनेक नए मित्र भी बनाए। उनकी अनुपस्थिति में श्री लालकृष्ण आडवाणी ने 'ऑर्गनाइजर' के कार्यवाहक संपादक का दायित्व संभाला। आडवाणी जी 1960 में सहायक संपादक के रूप में 'ऑर्गनाइजर'से जुड़ चुके थे।उन दिनों में आडवाणी जी ने फिल्म संवाददाता के रूप में महत्वपूर्ण योगदान दिया और अनेक छदम नामों से लगातार लेख लिखते रहे।उनका ऐसा ही एक छद्म नाम था 'नेत्र', जिसका प्रयोग उन्होंने सिनेमा पर अपना स्तंभ लिखने में किया। आडवाणी जी पंडित दीनदयाल उपाध्याय की सलाह पर 'ऑर्गनाइजर' में आये थे। इस संबंध में दीनदयाल जी के साथ हुए संवाद को वे इस प्रकार स्मरण करते हैं: "एक दिन मैंने दीनदयाल जी से चर्चा की कि अपने पारिवारिक दायित्व का मुझे कैसे निर्वाह करना चाहिए? दीनदयाल जी ऐसे नेता थे जिनका हृदय अपने साथी कार्यकर्ताओं की सहायता के लिए सदैव व्याकुल रहता था। उन्होंने मुझे 'ऑर्गनाइजर' में काम करने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा'यह हमारा अपना अखबार है'। 'आपको वहाँ काम करना इसलिए अच्छा लगेगा क्योंकि आपकी लेखन में रूचि है'। अखबार को भी आप जैसा एक व्यक्ति चाहिए. ... इस प्रकार 1960 में मैंने 'ऑर्गनाइजर' में सहायक संपादक के रूप में काम शुरू किया" (आडवाणी, 2018)। उन दो वर्षों में जो मुद्दा लगभग हर सप्ताह छाया रहता था वह था 1962 का चीनी आक्रमण।

चर्चित स्तंभ

अखबार से नए पाठकों को जोड़ने के उद्देश्य से मलकानी जी ने 'ऑर्गनाइजर' में अनेक नए स्तंभ शुरू किए।ऐसे ही कुछ चर्चित स्तंभों में से एक था 'सेटिरिकस' जिसे लम्बे समय तक श्री सुधाकर राजे ने लिखा। श्री राजे का हाल ही में 23 अक्टूबर, 2022 को मुंबई में निधन हुआ। अनेक तात्कालिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को स्थान देने के साथ-साथ 'ऑर्गनाइजर' में और भी बहुत से विषयों पर सामग्री प्रकाशित की जाती रही। उनमें प्रमुख थे लघु कथाएँ, प्रश्न-उत्तर स्तंभ, पुस्तक समीक्षा और खेल। 'ऑर्गनाइजर' का 'पेरिस्कोप' स्तंभ भी पाठकों द्वारा बहुत पसंद किया गया। फिल्म समीक्षा पर केंद्रित स्तंभ 'सिनेनोट्स' तो स्वयं लालकृष्ण आडवाणी लिखते थे।एक अन्य चर्चित स्तंभ था 'पोलिटिकल डायरी', जिसे भारतीय जन संघ के तत्कालीन महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय लिखते थे। 'सिनेनोट्स'

स्तंभ कैसे शुरू हुआ, इस संबंध में जानकारी देते हुए आडवाणी जी बताते हैं: "एक दिन हमारी संपादकीय बैठक में विषय आया कि हमारे अखबार के बारे में आम धारणा यह बन गई है कि यह बहुत 'ड्राई' अखबार है, जिसमें राजनीतिक समाचार अधिक होते हैं। मलकानी जी कहा कि यह सच है। हमें जनजीवन से जुड़े अन्य विषयों जैसे कि सिनेमा से जुड़ी खबरों को भी स्थान देना चाहिए। फिर प्रश्न आया कि सिनेमा पर लिखेगा कौन? इस विषय पर लिखने के लिए मैंने अपने नाम का प्रस्ताव रखा और इस प्रकार मैंने 'नेत्र' नाम से सिनेमा से संबंधित स्तंभ लिखना शुरू किया।" आडवाणी जी यह भी बताते हैं कि दीनदयाल उपाध्याय का स्तंभ 'पोलिटिकल डायरी' 'ऑर्गनाइजर' में कैसे शुरू हुआ: "जब मैं 'ऑर्गनाइजर' में था तो मेरे आग्रह पर दीनदयाल उपाध्याय जी ने 'पोलिटिकल डायरी' नाम से एक साप्तहिक स्तंभ लिखना शुरू किया। वे सप्ताह का कोई एक मुद्दा चुनते थे और अपनी दृष्टि से उसका गहन विश्लेषण करते थे। कुछ ही समय में वह स्तंभ पाठकों में बहुत चर्चित हो गया। दो स्तंभ लिखने के बाद एक दिन वे मेरे पास आये और कहने लगे, लाल, मैं नहीं लिख सकता! इस प्रकार लिखना मेरे स्वभाव में नहीं है। मैं मुद्दे के बारे में तो लिखूंगा परंतु अपने बारे में नहीं।अपने बारे में सोचने की अनिच्छा के बारे में आज सोचना भी अकल्पनीय है" (आडवाणी, 2018)। 'ऑर्गनाइजर' की प्रसार संख्या वैसे तो कम ही रही है, लेकिन बौद्धिक जगत और राजनीतिक क्षेत्रों में इसका प्रभाव बहुत अधिक रहा है। मलकानी जी के दौर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ के विरोधी और समर्थक सभी 'ऑर्गनाइजर' को गहराई से पढ़ते थे।

पत्रकारों की नियुक्ति का तरीका

यह जानना भी रोचक है कि मलकानी जी अपनी टीम हेतु नए पत्रकारों का चयन कैसे करते थे। वर्ष 1964 में उप संपादक के रूप में 'ऑर्गनाइजर' परिवार में शामिल होने वाले श्री रमेश चंद बतुरा (जो 2000 में सहयोगी संपादक के रूप में सेवानिवृत्त हुए) अपनी भर्ती प्रक्रिया के बारे में इस प्रकार बताते हैं: "मलकानी जी ने मुझे कहा कि अपनी पसंद के किन्हीं दो विषयों पर दो लेख लिखकर भेज दो। मैंने दो लेख लिखे और डाक से भेज दिए। मलकानी जी ने उन्हें देखा और दो सप्ताह बाद मुझे 'जॉइनिंग ऑफर' भेज दिया। वेतन पर कुछ विचार-विमर्श के बाद 1964 में 'ऑर्गनाइजर' न्यूजरूम में मेरा प्रवेश हो गया। वहां लालकृष्ण आडवाणी जी पहले से जॉइंट एडिटर के रूप में काम कर रहे थे। मलकानी जी और आडवाणी जी दोनों को लोगों और विषयों की गहरी समझ थी, भाषा पर शानदार पकड़ थी और दोनों की हे लेखनी में अद्भुत प्रवाह था। मुझे लगता है कि 1960-71 का समय 'ऑर्गनाइजर' के लिए बेहतरीन दौर था। उस समय यह देश का सबसे प्रभावी टेबलायड अखबार था और उसकी प्रसार संख्या भी 40,000 से अधिक थी। कुछ विशेषांकों की बिक्री तो 50,000 प्रतियों को पार कर जाती थी। 'ऑर्गनाइजर' में दो अल्पकालीन चित्रकार थे, जिनमें मशहूर कार्नुटिस्ट रंगा भी थे। 1964-71 के दौरान मलकानी जी ने 'ऑर्गनाइजर' में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से बाहर के लोगों के लेख भी प्रकाशित करने शुरू किए। उस समय 'ऑर्गनाइजर' की सामग्री में बहुत बदलाव आया-सिर्फ पुरानी खबरें ही नहीं होती थी बल्कि उनका भविष्य की दृष्टि से भी विश्लेषण होने लगा। इसके कारण भी प्रसार में उछाल आया और 'ऑर्गनाइजर' समाचार पत्र स्टाल पर भी मिलने लगा" (बतुरा, 2018)।

राष्ट्रीय एकात्मता के प्रयास

अपने शुरूआती दिनों से ही 'ऑर्गनाइजर' ने अलग-अलग तरीकों से जन भावनाओं को स्वर प्रदान करना शुरू किया। इसी प्रयास के तहत सितंबर 1947 में एक 'गैलप पोल' किया गया, जिसमें दिल्लीवासियों से पश्चिमी पाकिस्तान से भारत आए शरणार्थियों से संबंधित कुछ मुद्दों पर राय मांगी गई।वह 'गैलप पोल' वास्तव में अमेरिका की तर्ज पर भारत में राष्ट्रीय नीतियों से जुड़े मसलों पर लोगों की राय जानने का शुरुआती प्रयास था।इस सर्वे के तहत पहले दिल्ली के पाठकों से कुल चार प्रश्नों पर राय मांगी गई। उसमें शामिल सभी प्रश्न अंग्रेजी और हिंदी दोनों भाषाओँ में पूछे गए ताकि अधिक से अधिक लोगों की राय प्राप्त हो सके। उस सर्वे के परिणाम 'ऑर्गनाइजर' के अक्टूबर 16, 1947 के अंक में प्रकाशित हुए। इस प्रयास को थोड़ा और बल प्रदान करते हुए पहली प्रश्नावली में तीन और सवाल जोड़कर देशभर के पाठकों से कुल सात प्रश्नों पर राय मांगी गई। उस सर्वे के परिणाम से तत्कालीन सरकार काफी अधिक भयाक्रांत हो गई थी, क्योंकि उसके माध्यम से उसका निकम्मापन उजागर हो रहा था। वर्ष 1958 में 'ऑर्गनाइजर'ने गोसंरक्षण हेतु देशव्यापी हस्ताक्षर अभियान का भी समर्थन किया। गोहत्या निरोध समिति के आह्वान पर उस समय गोपाष्टमी जन जागरण पखवाड़ा देशभर में मनाया गया। इसके अलावा 1965 के युद्ध के समय जब तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने देश का आह्वान किया कि वे एक समय का भोजन छोड़ दें तो उस समय भी 'ऑर्गनाइजर' ने उस आह्वान का समर्थन किया था" (कुमार, 2018)।

खोजी पत्रकारिता

'ऑर्गनाइजर' के माध्यम से के.आर. मलकानी ने लाल बहादुर शास्त्री और दीनदयाल उपाध्याय की हत्या की गुत्थी सुलझाने हेतु तत्कालीन सरकार पर दबाव बनाया। वास्तव में वह अनुकरणीय खोजी पत्रकारिता थी। लाल बहादुर शास्त्री की हत्या के संबंध में डॉ. राम मनोहर लोहिया से मिली कुछ महत्वपूर्ण जानकारी को आधार बनाकर 'ऑर्गनाइजर' ने इस रहस्य से पर्दा उठाने की दिशा में पहल की।डॉ. लोहिया ने शास्त्री जी की हत्या से जुड़े कुछ दस्तावजों का विश्लेषण कर अपनी पत्रिका 'मैनकाइंड' में लेख प्रकाशित किए थे। उन तथ्यों के आधार पर 'ऑर्गनाइजर' ने जाँच को आगे बढ़ाया। उस पड़ताल के बाद पहली रिपोर्ट 'ऑर्गनाइजर' के 17 जनवरी, 1970 के अंक में 'सम अननॉन फैक्ट्स अबाउट द मिस्टीरीयस डेथ ऑफ शास्त्री' शीर्षक से प्रकाशित हुई। उस खबर में 'ऑर्गनाइजर' ने उन लोगों के बारे में जानकारी मांगी जो ताशकंद में शास्त्री जी के साथ थे। उनमें एक थे उस समय मास्को में भारत के राजदूत टी.एन. कॉल के निजी सहयोगी जान मोहम्मद, जो घटना के बाद से गायब थे। इसमें दूसरे थे उस ताशकंद विला के

सुरक्षा अधिकारी आर. कपूर जहाँ शास्त्री जी की 11 जनवरी, 1966 को मृत्यु हुई थी। घटना के बाद से ही वे दृश्य से गायब थे। 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित लेख की गूँज संसद में भी सुनाई दी। एसएसपी सांसद राज नारायण, कांग्रेस के सांसद टी.एन. सिंह, निर्दलीय सांसद दह्याभाई पटेल आदि ने यह विषय संसद में उठाया।दबाव बना तो उसके बाद 50 से अधिक सांसदों ने मिलकर प्रेस वार्ता आयोजित की और इस संबंध में जाँच की मांग की। इस सबंध में भी एक खबर 'ऑर्गनाइजर' के 16 अप्रैल, 1970 के अंक में प्रकाशित हुई।उसके बाद शास्त्री जी के विश्वस्त सहयोगियों में से एक टी.एन. सिंह ने 'ऑन रिकॉर्ड' कहा कि, "मुझे पूरा यकीन है कि शास्त्री प्राकृतिक मौक नहीं मरे।" उसी समय शास्त्री जी की पत्नी श्रीमती ललिता शास्त्री का साक्षात्कार 'धर्मयुग' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। वह साक्षात्कार भी 'ऑर्गनाइजर' के 10 अक्टूबर, 1970 के अंक में अनुवाद करके प्रकाशित हुआ। उस साक्षात्कार में श्रीमती शास्त्री ने संदेह व्यक्त किया कि शास्त्री जी की पानी की बोतल में जहर मिलाया गया था। इसके अलावा 7 और 14 नवंबर, 1971 के अंकों में भी शास्त्री जी की मौत से जुड़े विषय पर खबरें प्रकाशित हुई। उन खबरों में शास्त्री जी की मेडिकल रिपोर्ट्स में पायी गई खामियों का जिक्र किया गया था। आखिर सरकार दबाव में आई और अनिच्छा से ही सही, उसने एक श्वेत पत्र जारी किया। उस श्वेत पत्र में भी इतनी खामियां थी कि 'ऑर्गनाइजर' ने उसे एक 'काला श्वेत पत्र' करार दिया। इस संबंध में 26 दिसंबर, 1970 के अंक में विस्तार से खबर प्रकशित हुई। इसी प्रकार दीनदयाल उपाध्याय की रहस्यमयी हत्या के संबंध में भी 'ऑर्गनाइजर' ने विस्तार से खबरें प्रकाशित कीं। इस संबंध में गठित जस्टिस वाई.वी. चंद्रचूड आयोग के कामकाज पर भी अखबार ने पैनी नजर रखी और उसके निष्कर्षों पर कई रिपोर्ट्स प्रकाशित कीं।

राष्ट्रीय विमर्श में योगदान

'ऑर्गनाइजर' ने जिन विषयों पर सामग्री प्रकाशित की उनसे राष्ट्रीय विमर्श के निर्माण में काफी सहयोग प्राप्त हुआ। प्रथम अंक के ही संपादकीय (3 जुलाई, 1947), में सांप्रदायिक विभाजन के आधार पर जो राजनीतिक संस्कृति विकसित हुई उस पर इन शब्दों में प्रहार किया गया: "विधायिका और स्थानीय निकायों में मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व देना ऐसा चुनावी प्रयास था जिसके माध्यम से देश विभाजन हेतु अंग्रेजों द्वारा रची गई साजिश को ही कामयाब किया गया।" इस संपादकीय से एक दिशा निर्धारित हो गई थी। 'ऑर्गनाइजर' उस राजनीतिक संस्कृति का विरोध करने वाला था जो अंग्रेजों के समान ही धर्म, जाति, क्षेत्र, पंथ आदि के नाम पर विभाजन करती है। इस साप्ताहिक ने जे.बी. कृपलानी जैसे कांग्रेस विद्रोहियों के विभिन्न अभियोगों को भी 16 अक्टूबर, 1948 के अंक में स्थान दिया। देश में गठबंधन राजनीतिक का जो विचार 1980 के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय राजनीति में चर्चा में आया उस पर 'ऑर्गनाइजर' दरअसल 1960 के दशक में ही व्यापक चर्चा कर चुका था। प्रमुख राजनीतिक विचारक जैसे कि आचार्य कृपलानी, सी. राजगोपालाचारी और के.एम. मुंशी भी नियमित रूप से 'ऑर्गनाइजर' के माध्यम से कांग्रेस सरकार की गलतियों को उजागर करते थे। राजगोपालाचारी ने राजनीति में उभर रही अवैध वित्तीय संस्कृति की तीखी आलोचना की। 29 अगस्त, 1960 के अंक में प्रकाशित एक लेख में वे लिखते हैं, "जैसा कि कुछ लोग सुझाव दे रहे हैं, यदि सत्ताधारी दल को चुनावी उद्देश्यों के लिए मिलने वाले धन को कर मुक्त कर दिया गया तो फिर देश में एक ही राजनीतिक दल के शासन हेतु कुछ और करने की जरूरत नहीं है।" 'ऑर्गनाइजर' ने एक और जिस मुद्दे पर खुलकर लिखा वह था लोकतान्त्रिक संस्कृति को बढ़ावा देना। 1969 में सुभाष कश्यप, जो बाद में लोक सभा के महासचिव भी बने, ने सुझाव दिया था कि देश में मतदान की आयु 21 से घटाकर 18 वर्ष कर देनी चाहिए। यह सुझाव 1987 में जाकर हकीकत बना।

स्वतंत्रता के पश्चात 'ऑर्गनाइजर' ने खुलकर समाज जीवन में भ्रष्टाचार और कदाचार का मुखर होकर विरोध किया। 1951 में जब विपक्षी दलों को दबाने के लिए सत्ताधारी दल कांग्रेस द्वारा सरकारी मशीनरी का खुलेआम दुरुपयोग हो रहा था उस समय 'ऑर्गनाइजर' ने स्पष्ट रूप से उसकी भर्त्सना करते हुए 17 सितंबर, 1951 में खबर लिखी, जिसका शीर्षक था 'कांग्रेस मर्डर्स डेमोक्रेसी इन डेल्ही'। इसके अलावा विभिन्न मंत्रालयों, न्यायपालिका, प्रशासन आदि में व्याप्त संस्थागत भ्रष्टाचार पर भी हमेशा पैनी दृष्टि रखी गई। राजनीति ही नहीं, कथित रूप से सोशलिस्ट कांग्रेस शासन के दौरान उद्योगपतियों से उगाही की जो संस्कृति पनपी, उस पर भी प्रहार किया गया। उदाहरण के लिए 22 अप्रैल, 1954 के अंक में इस मुद्दे पर गठित सुचेता कृपलानी समिति की सिफारिशों को स्थान दिया गया। साथ ही इंडस्ट्रियल फाइनेंस कारपोरेशन की भेदभावयुक्त कार्यप्रणाली पर भी प्रहार किया गया। जगजीवन राम, अब्दुल रहमान अंतुले, संजय गाँधी अथवा अन्य जिस किसी भी नेता पर भ्रष्टाचार के आरोप थे उनका उपहास उड़ाया गया। चाहे वह 'मारुति' का मसला हो या फिर 'नेशनल हेराल्ड' का खेल सभी पर 'ऑर्गनाइजर' में लगातार लिखा गया। 17 मार्च, 1952 के अंक में प्रकाशित एक खबर में बताया गया कि शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर की सच्चाई बयान करने पर किस प्रकार 'ऑर्गनाइजर' पर प्रतिबंध लगाया। जब अब्दुल रहमान अंतुले और दत्ता सामंत ने 'इंडियन एक्सप्रेस' के विरुद्ध सिर्फ इसलिए

स्वतंत्रता के पश्चात 'ऑर्गनाइजर' ने खुलकर समाज जीवन में भ्रष्टाचार और कदाचार का मुखर होकर विरोध किया। 1951 में जब विपक्षी दलों को दबाने के लिए सत्ताधारी दल कांग्रेस द्वारा सरकारी मशीनरी का खुलेआम दुरुपयोग हो रहा था उस समय 'ऑर्गनाइजर' ने स्पष्ट रूप से उसकी भर्त्सना करते हुए 17 सितंबर, 1951 में खबर लिखी, जिसका शीर्षक था 'कांग्रेस मर्डर्स डेमोक्रेसी इन डेल्ही'। इसके अलावा विभिन्न मंत्रालयों, न्यायपालिका, प्रशासन आदि में व्याप्त संस्थागत भ्रष्टाचार पर भी हमेशा पैनी दृष्टि रखी गई

अभियान छेड़ा क्योंकि अखबार ने उनकी कारगुजारियों को उजागर किया तो उस समय 'ऑर्गनाइजर' ने 'इंडियन एक्सप्रेस' का साथ दिया। इस संबंध में 29 नवंबर, 1981 के अंक में विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की गई।

संस्थागत ईमानदारी के लिए संघर्ष

'ऑर्गनाइजर' ने कांग्रेस व्यवस्था द्वारा संस्थाओं के विनियोजन का भी विरोध किया। शुरू से ही चाहे वह चुनावी धांधलियों का मसला हो या फिर शिक्षा और संस्कृति संबंधी संस्थाओं को वैचारिक रंग में रंगने के प्रयास, देश की सुरक्षा और प्रतिरक्षा पर समझौता 'ऑर्गनाइजर' ने राष्ट्र की चेतना के अनुसार ही काम किया। वर्ष 1965 में पकिस्तान के साथ युद्ध शुरू होने से पहले ही 'ऑर्गनाइजर' ने पाकिस्तान और अमेरिका बीच बढ़ती नजदीकियों पर पैनी नजर रखी। 15 मार्च, 1954 के अंक में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को युद्धक हथियार उपलब्ध कराने संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। परंतु, पंडित नेहरु और उनकी सरकार ने उन खबरों को गंभीरता से नहीं लिया। इसके बाद 28 अगस्त, 1961 के अंक में फिर से चेताया गया कि क्या पाकिस्तान और अमेरिका के बीच डील पक्की हो गई है? उसमें बताया गया था कि पाकिस्तान को 3000 हवाई जहाज और 21 युद्धपोत मिलने वाले हैं। आचार्य कृपलानी ने जब 'नेशनल इंटीग्रेशन काउंसिल' के गठन के आधार पर सवाल उठाये तो 'ऑर्गनाइजर' ने उस पूरे नाटक पर से पर्दा उठाया। आचार्य कृपलानी ने कहा कि बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की आड़ में काउंसिल के माध्यम से संप्रदायवाद को बढ़ावा देने का प्रयास हो रहा है।

इसी प्रकार चाहे अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी जैसी शिक्षा संस्थाओं में निरंतर बढ़ते मुस्लिम सम्प्रदायवाद का मामला हो या फिर कांग्रेस पार्टी द्वारा बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी के नाम में शामिल 'हिंदू' शब्द पर आपत्ति हो,'ऑर्गनाइजर' ने ऐसी सब घटनाओं पर भी पैनी नजर रखी। जब बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी के नाम में से 'हिंदू' शब्द हटाने संबंधी एक विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया तो 'ऑर्गनाइजर' ने 20 नवंबर, 1965 के अंक में सी. राजगोपालाचारी का इसके विरोध में लिखा गया एक तथ्यपरक लेख प्रकाशित किया। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा अन्य संस्थाओं को जब इंदिरा गाँधी के संरक्षण में नुरुल हसन ने वैचारिक में रंगने के प्रयास किये तो उन सभी प्रयासों का ऑर्गनाइजर में भंडाफोड़ किया गया (आजाद, 2018। आरंभ से ही शराबबंदी और गौहत्या पर प्रतिबंध की मांग का समर्थन करते हुए लेख और समाचार 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित होते रहे हैं। 14 जनवरी, 1954 के अंक में प्रकाशित एक खबर में विनोबा भावे कहते हैं, "मैं कहता हूँ कि हमारे सेक्युलर राज्य में गौ संरक्षण अवश्य होना चाहिए।" 12 जुलाई, 1954 के अंक में प्रकाशित एक समाचार में बताया गया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने केंद्रीय कार्यकारी मंडल की अपनी बैठक में संकल्प लिया कि "सत्याग्रह से हो या बिना सत्याग्रह के हमें गाय की रक्षा करनी चाहिए!"

भारत का विचार

अपनी शुरुआत से ही 'ऑर्गनाइजर' ऐसे वैकल्पिक विमर्शों का मंच रहा है जो राष्ट्रीय दृष्टिकोण को बल प्रदान करते हों। स्वतंत्रता के समय ही मातृभूमि का बंटवारा हो गया। 14 अगस्त, 1947 के अंक में प्रकाशित ऐतिहासिक संपादकीय में 'विदर' शीर्षक से कहा गया कि "आज के अनेक मानसिक संभ्रमों और वर्तमान तथा आने वाली अनेक समस्याओं को सिर्फ इस एक तथ्य को स्वीकार कर लेने से टाला जा सकता है कि हिन्दुस्तान में हिंदू ही राष्ट्र का आधार हैं।" इस साहसिक कदम की कुछ लोगों ने इसे सांप्रदायिक कहकर निंदा की। 1947 में ही जवाहरलाल नेहरु ने हर उस चीज की आलोचना करनी शुरू कर दी थी जिसमें कहीं भी हिंदू शब्द जुड़ा हुआ था। उन्हें अक्सर यह कहते हुए पाया जाता था कि, "हिंदू राज्य का विचार ही न केवल मध्ययुगीन है, बल्कि मूर्खतापूर्ण भी है... हिंदू राज्य की कल्पना देखने में ही फासिस्ट प्रतीत होती है।" 'ऑर्गनाइजर' ने इसका जवाब दिया। कई लेखों में तर्क दिया गया कि हिंदू न तो किसी विशेष समुदाय अथवा पूजा पद्धति को निरुपित करता है और न ही किसी धार्मिक व्यवस्था को। यह एक राष्ट्रीयता है। दूसरे, इस्लाम की भांति हिंदुत्व एक धर्म नहीं है। यह जीवन दृष्टि है। 4 मार्च, 1966 को विनायक दामोदर सावरकर की मृत्यु के बाद उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए सिटीजन काउंसिल ऑफ डेल्ही के तत्वावधान में कार्यक्रम का आयोजन किया गया। उस सभा में सावरकर की परंपरा पर टिप्पणी करते हुए डॉ. राम मनोहर लोहिया ने कहा, "मैं सावरकर के इस विचार से सहमत हूँ कि भारत में जो भी रहता है वह हिंदू है फिर वह चाहे किसी भी पूजा पद्धति को मानने वाला क्यों न हो। हिंदू शब्द का वही अर्थ है जो 'हिंदी' और 'हिन्दुस्तान' का है। हिंदू को धर्म के अर्थ में नहीं लेना चाहिए।"

लेखकों की श्रृंखला

मलकानी जी के नेतृत्व में 'ऑर्गनाइजर' को वैचारिक विरोधियों के बीच भी स्वीकार्यता मिली, जिससे पाठ्य सामग्री ही समृद्ध नहीं हुई, बल्कि उससे बहसों को भी नया आयाम मिला। 1950 के दशक के आरंभ में जब देश में निराशा का माहौल बनने लगा था तो विनोभा भावे ने 'ऑर्गनाइजर' के माध्यम से तत्कालीन परिस्थिति पर अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने निराशा के लिए पंडित नेहरु की खाद्यान्न आयात, गौहत्या पर प्रतिबंध और ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देने जैसे अनेक मोर्चों पर विफलता को जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने पंडित नेहरु पर योजनाएं बनाने में विफल रहने का आरोप लगते हुए कहा, "मैं इसे एक नैतिक चूक मानता हूँ।" उन्होंने स्पष्ट रूप से तत्कालीन प्रधानमंत्री को कहा, "अपने वायदों को निभाइए अथवा इस्तीफा दीजिए!" विनोबा जी ने प्रधानमंत्री पर सीधा हमला बोलते हुए कहा कि, "बदले में कोई विकल्प प्रदान किये बगैर आपने गाँव से उनके उद्योग छीन लिए। आपमें यह साहस ही नहीं है कि आप किसी भी विषय पर देश को स्पष्ट दिशा प्रदान कर सकें।" 1961 में फील्ड मार्शल के.एम. करियप्पा ने भी 'ऑर्गनाइजर' के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने चेताते हुए कहा, "यदि लोकतंत्र पर हमला होता है तो भारत एक आत्मसंतुष्ट दर्शक की भांति चुप नहीं बैठेगा।" 'ऑर्गनाइजर' के दीपावली अंक में 'फिजिकल एंड मोरल सिक्यूरिटी ऑफ इंडिया' शीर्षक से प्रकाशित एक लेख में वे कहते हैं, "जब मैं कहता

हूँ कि हमारे युवाओं में चरित्र की शुद्धता, उच्च स्तर का अनुशासन और मिलकर काम करने की समझ होनी चाहिए उस समय मैं निश्चित रूप से अति-आदर्शवादी नहीं होता। एक सैनिक के रूप में 34 वर्ष अपने देश की सेवा करने और इस दौरान हजारों युवाओं और लोगों से बात करने के बाद मुझे अपने देश की ताकत पर पूरा भरोसा है। मुझे अपने युवाओं पर भरोसा है। मुझे अपने सभी वर्गों के लोगों पर भरोसा है।"

भारतीय विद्या भवन के संस्थापक और सुप्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक श्री के. एम. मुंशी ने भी 'ऑर्गनाइजर' के लिए लेख लिखे। उनका एक लेख नवंबर 1965 के अंक में प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक था 'रिलेशंस बिटवीन इंडिया एंड ब्रिटेन विल नेवर बी द सेम अगेन। वह लेख 1965 के भारत पाकिस्तान युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया था। जब ब्रिटेन ने पाकिस्तान का पक्ष लेते हुए भारत से नाराजगी व्यक्त की तो मुंशी का वह लेख नए विदेश संबंधों को लेकर एक सटीक चेतावनी था। मुंशी जी का तर्क था, "नेहरू के नेतृत्व में भारत द्वारा संचालित गुटनिरपेक्ष आंदोलन का यह ऐसा परिणाम था, जिसकी चेतावनी को समझना चाहिए।" बाद में कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष जे. बी. कृपलानी ने भी 'ऑर्गनाइजर' के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त किया। 1981 में शीत युद्ध के दौरान जब अमेरिका ने पाकिस्तान को हथियारों की आपूर्ति की उस समय 'आवर अनडिप्लोमेटिक रेस्पोंस टु यूएस आर्म्स टु पाकिस्तान' शीर्षक से लिखे अपने लेख में उन्होंने विस्तार से समझाया कि पाकिस्तान को अमेरिका द्वारा की गई हथियारों की आपूर्ति से भारत को किस प्रकार का खतरा पैदा होने वाला है। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि, "जब हमारी शांति को गंभीर खतरा साफ नजर आ रहा हो तो क्या हमें ऐसे मामलों में चुप बैठना चाहिए?" कूटनीतिक संबंधों की असफलता का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए उन्होंने चेतावनी दी कि भारत की अकेले चलने की नीति के गंभीर परिणाम हो सकते हैं। 6 दिसंबर, 1981 के अंक में पूर्व केंद्रीय मंत्री डॉ. कर्ण सिंह का डॉ. बी.आर. शर्मा के साथ एक साक्षात्कार प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने हिंदू संस्कृति पर अपने विचार

भारतीय विद्या भवन के संस्थापक और सुप्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक श्री के. एम. मुंशी ने भी 'ऑर्गनाइजर' के लिए लेख लिखे। उनका एक लेख नवंबर 1965 के अंक में प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक था 'रिलेशंस बिटवीन इंडिया एंड ब्रिटेन विल नेवर बी द सेम अगेन। वह लेख 1965 के भारत पाकिस्तान युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया था। जब ब्रिटेन ने पाकिस्तान का पक्ष लेते हुए भारत से नाराजगी व्यक्त की तो मुंशी का वह लेख नए विदेश संबंधों को लेकर एक सटीक चेतावनी था। मुंशी जी का तर्क था, नेहरू के नेतृत्व में भारत द्वारा संचालित गुटनिरपेक्ष आंदोलन का यह ऐसा परिणाम था, जिसकी चेतावनी को समझना चाहिए

व्यक्त किये। 'हिन्दुइज्म इज नाउ रेडी फॉर क्रिएटिव रिवाइवल' शीर्षक से प्रकाशित उस साक्षात्कार में वे कहते हैं, "पश्चिमी दर्शन प्लेटो के दर्शन पर पादटीकाओं (फुटनोट्स) की श्रंखला है। एक दार्शनिक राजा के संबंध में यदि प्लेटो की मानें तो राजा जनक एक आदर्श राजा थे।" भारत में मौजूद संकटों पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा, "भारत में मुख्य संकट यह है कि भारत सरकार का दर्शन ही स्पष्ट नहीं है। हमारा शिक्षा तंत्र मूल्य विहीन है" (भारद्वाज, 2018)।

अन्तिहीन कठिनाइयाँ

के.आर. मलकानी के 'न्यूज सेंस' और 'ऑर्गनाइजर' द्वारा झेली गई परेशानियों का जिक्र करते हुए अखबार के दीर्घकाल तक प्रकाशक रहे हेमनदास मोटवाणी (जो 1962 में 'ऑर्गनाइजर' में नियुक्त हुए और 30 अप्रैल, 2000 को सेवानिवृत्त हुए) कहते हैं, "मैंने 'ऑर्गनाइजर' के प्रकाशक भारत प्रकाशन (दिल्ली) लिमिटेड के बहुत से उतार-चढ़ाव का साक्षी हूँ। मेरा मानना है कि 'ऑर्गनाइजर' मलकानी जी के दौर में उच्चतम शिखर पर था। मलकानी जी सदैव अपने पाठकों को कुछ न कुछ ऐसा नया कंटेंट परोसने के लिए तत्पर रहते थे, जो उन्हें किसी अन्य समाचार पत्र में नहीं मिलता था। मलकानी जी का न्यूज सेंस और दृष्टि जबरदस्त थे। किसी साप्ताहिक समाचार पत्र के विकास में ये दोनों बिंदु अहम् हैं। उस समय विभिन्न समाचार पत्रों और संसद में 'ऑर्गनाइजर' का अक्सर उद्धरण दिया जाता था। हालाँकि इसके कारण 'ऑर्गनाइजर' वामपंथियों और कांग्रेस नेताओं की आँख की किरकिरी बन गया।इसका परिणाम यह हुआ कि जब हम किसी कंपनी के पास विज्ञापन मांगने के लिए जाते थे तो वे कहते थे कि 'पैसा चंदे के रूप में ले जाओ पर विज्ञापन प्रकाशित मत करो, अन्यथा सत्तधारी दल के नेता नाराज होकर हमें प्रताड़ित करेंगे'। हमारे लिए यह बहुत दिनों तक समस्या बनी रही और इसके कारण संस्थान कई बार गंभीर आर्थिक संकट में आ गया। उन दिनों मलकानी और 'ऑर्गनाइजर' एक दूसरे के परिचायक थे। हालाँकि इसका हमें लाभ भी हुआ। 'ऑर्गनाइजर' की बढ़ती मांग का प्रमुख कारण समाचार 'संकलन और समाचारों के प्रस्तुतीकरण में मलकानी जी का लीक से हटकर सोचना था। 'ऑर्गनाइजर' उस समय विपक्षी दलों का एकमात्र अखबार था। इसलिए विपक्षी दलों के नेता भी इसे गंभीरता से पढ़ते थे। यहाँ तक कि विभिन्न देशों के दूतावास भी हमारे नियमित ग्राहक थे"(मोटवाणी, 2018)।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वरिष्ठ प्रचारक श्री रंगा हरि राष्ट्र जागरण में 'ऑर्गनाइजर' के योगदान की इन शब्दों में समीक्षा करते हैं, "1940 के दशक में देश में जो परिस्थितियां थीं वास्तव में एक स्पष्ट राष्ट्रीय दृष्टिकोण के वैचारिक समाचार पत्र को शुरू कराने में उनका बड़ा योगदान था। 'ऑर्गनाइजर' इस उद्देश्य की पूर्ति में आरंभ से लगा है। ए.आर. नायर, के. आर. मलकानी, लालकृष्ण आडवाणी जैसे संपादकों द्वारा प्रदत्त वैचारिक प्रेरणा के कारण यह साप्ताहिक कभी अपने वैचारिक उद्देश्य से नहीं भटका। जब भी आवश्यकता हुई तो 'ऑर्गनाइजर' ने प्रधानमंत्री से लेकर छोटे नेताओं तक की आलोचना से

कभी परहेज नहीं किया। पंडित जवाहरलाल नेहरु ने एक बार के. आर. मलकानी को कहा था कि वे 'ऑर्गनाइजर' के प्रत्येक अंक की बेसब्री से प्रतीक्षा करते हैं ताकि वे जान सकें कि अब किस मुद्दे पर उनकी आलोचना हो रही है। मलकानी जी ने बाद में कहा था कि देश के प्रधानमंत्री के मुख से ये शब्द सुनने के बाद उन्हें अहसास हुआ कि उनके कंधों पर जो जिम्मेदारी है वह बहुत महत्वपूर्ण और विशाल है। जब भी परिस्थिति पैदा हुई तो 'ऑर्गनाइजर' ने आलोचना में कोई कंजूसी नहीं की, क्योंकि राष्ट्रीय विचार उसके लिए सदैव सर्वोच्च रहे हैं। 'ऑर्गनाइजर' न तो कभी डरा और न कभी इसने पक्षपात किया। इसलिए यदि अपने विचार का भी कोई व्यक्ति भटक गया तो उसकी आलोचना में भी 'ऑर्गनाइजर' ने कभी संकोच नहीं किया। अब देश ऐसे दौर से गुजर रहा है जब विचार और उससे प्रतिबद्धता केंद्र में हैं। यहीं 'ऑर्गनाइजर' की प्रासंगिकता दिखाई देती है" (हरि, 2018)।

निष्कर्ष

'ऑर्गनाइजर' संपादक के रूप में के.आर. मलकानी पत्रकारिता के मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध रहे और राष्ट्र नवनिर्माण के लिए देश को एकजुट किया। 'वोइस ऑफ द नेशन' ध्येयवाक्य के साथ समाचार पत्र ने नीति-निर्माण में हस्तक्षेप किया, विकल्प प्रस्तुत किये, यथास्थिति को चुनौती दी और सामाजिक और राजनीतिक सुधार के लिए लोगों को संगठित किया। मलकानी जी के नेतृत्व में 'ऑर्गनाइजर' की यात्रा में उन ताकतों को वैकल्पिक स्थान उपलब्ध कराया गया जो सत्ता को चुनौती देते रहे। राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, अंतरराष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में उन्होंने एक नए क्षेत्र का निर्माण किया जो राष्ट्रीय मूल्यों से जुड़ा था और जो विभाजनकारी न होकर जोड़ने वाला था, न्यूनकारी न होकर समग्र था। मलकानी जी ने भारत को भारत की नजर से देखने की समझ विकसित करने में सक्रिय भूमिका निभाई। जैसा कि पंडित नेहरु ने टिप्पणी की थी उनकी 'आलोचना' तथ्यों पर आधारित होती थी। यही कारण था कि तमाम प्रयासों के बावजूद कोई भी सरकारी एजेंसी उन्हें गलत नहीं ठहरा सकी और 'ऑर्गनाइजर' को प्रताड़ित करने के तमाम प्रयास न्यायालय के समक्ष टिक नहीं सके।मलकानी जी भारतीय भारतीय पत्रकारों की उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं जो सच के लिए अड़ी रही और जिसके लिए राष्ट्र सदैव सर्वप्रथम था। उनकी पुस्तकें उनकी अद्‌भुत अन्वेषणात्मक और खोजी दृष्टि की प्रतीक हैं। राज्य सभा सांसद और पांडिचेरी के उपराज्यपाल रहते हुए उन्होंने अनेक भाषण दिए, जिनका संकलन अभी तक नहीं हुआ है। इसके अलावा उनकी पुस्तकों, 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित लेखों और संपादकीयों और उनके द्वारा अनेक लोगों को लिखे गए पत्रों पर भी अध्ययन होना चाहिए। वर्ष 1961-62 में जब वे हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन करने गए थे तो उस दौर के अनुभव पर भी काम हो सकता है। इसके अलावा दीनदयाल शोध संस्थान की शोध पत्रिका '*मंथन*' और अन्य पत्रिकाओं में उनके द्वारा लिखे गए लेखों के अध्ययन की भी जरूरत है। 'पांचजन्य' और 'द मदरलैंड' के संपादक के रूप में भी उन्होंने अनेक लेख और संपादकीय लिखे, जिनका संकलन और विश्वलेषण हो सकता है। वर्ष 1978-79 के दौरान एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के महासचिव के रूप में उनके कार्यकाल पर भी अलग से शोध हो सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में के.आर. मलकानी और 'ऑर्गनाइजर' के संबंध में कुछ तथ्य जुटाने का प्रयास किया गया है, परंतु इस दिशा में अभी बहुत काम शेष है। आने वाले समय में जन संचार के शोधार्थी इसे आगे बढ़ा सकते हैं।

संदर्भ

1. आडवाणी, एल.के. (2018). द ऑर्गनाइजर इयर्स. *ऑर्गनाइजर*, अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ 21.
2. आजाद, एन.के. (2018). शेपिंग द डिस्कोर्स. *ऑर्गनाइजर.* अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ 48-51.
3. ऑर्गनाइजर. (2018). द जर्नी बिगिन्स. *ऑर्गनाइजर.* अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ13.
4. कुमार, पी. (2018). इनिशिएटिव्ज फॉर इंटीग्रेशन. *ऑर्गनाइजर.* अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ 40-41.
5. केतकर, पी. (2018). नोट जस्ट मीडिया, बट अ मूवमेंट. *ऑर्गनाइजर.* अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ 11.
6. कोश्यारी. बी.एस. (2021). के आर. मलकानी वाज अ फिएर्स्ली नेशनलिस्ट जर्नलिस्ट: गवर्नर.https://rajbhavan-maharashtra.gov.in/en/28-12-2021-k-r-malkani-was-a-fiercely-nationalist-journalist-governor/से दिनांक 12 सितंबर, 2022 को पुन: प्राप्त.
7. गुप्ता, के. एन. (2021). के आर मलकानी: अपराइट, बोल्ड एंड अनकम्प्रोमाइजिंग. https://organiser.org/2021/11/29/16416/bharat/kr-malkani-upright-bold-and-uncompromising/से दिनांक 11 सितंबर, 2022 को पुन: प्राप्त.
8. नायर, डी.वी. (2018). द फर्स्ट एंकर. *ऑर्गनाइजर.* अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ 14-15.
9. बतुरा, आर.सी. (2018). 'ऑर्गनाइजर' के पूर्व सहयोगी संपादक, जिन्होंने आपातकाल लागू होने से पहले के.आर. मलकानी के साथ 'द मदरलैंड' में काम किया. दिल्ली में उनके निवास पर 03 जनवरी, 2018 को साक्षात्कार.
10. भारद्वाज, ए. (2018). विंडोज वाइड ओपन. *ऑर्गनाइजर*, अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ 69-70.
11. मोटवाणी, एच. डी. (2018). एन इन्सेप्रेबल आइडेंटिटी. *ऑर्गनाइजर.* अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ 16-19.
12. शर्मा, यू. (2020). के. आर. मलकानी-आरएसएस आइडिओलोग, जर्नलिस्ट एंड पॉलिटिशियन हु प्रिडिक्टेड इमरजेंसी. द प्रिंट. https://theprint.in/theprint-profile/kr-malkani-rss-ideologue-journalist-and-politician-who-predicted-emergency/547947/से दिनांक 23 सितंबर, 2022 को पुन: प्राप्त.
13. हरि. आर. (2018). ऑर्गनाइजर, द टोर्च-बेयरर ऑफ द आइडियोलॉजी. *ऑर्गनाइजर.* अंक 28 जनवरी, 2018, पृष्ठ 103.

अनिर्बान गांगुली

के.आर. मलकानी और 'द मदरलैंड' - लोकतंत्र के प्रहरी

'द मदरलैंड' एक ऐसा समाचार-पत्र था जिसने अपनी दृष्टि सदैव 'सर्वप्रथम भारत' के सूत्रवाक्य पर केंद्रित रखी। इसके मौलिक चरित्र का निर्धारण करने वाले के.आर. मलकानी हैं

वर्ष 1971 से 1975 के बीच के चार वर्षों की एक संक्षिप्त अवधि में, के. आर. मलकानी (1921-2003) के संपादन में 'द मदरलैंड' ने पत्रकारिता जगत में अपूर्व गरिमा और मान्यता हासिल की। वर्ष 1970 के दशक से भारत की राज्य शासन व्यवस्था उत्तरोत्तर हो रही अधोगति को लोगों के सामने रखते हुए, इसने स्वयं को राष्ट्र के एक निर्भीक और मुखर समाचारपत्र के रूप में स्थापित किया। इस संदर्भ में 'मदरलैंड' की 'भारत प्रथम' की अनुशंसा और भारत के राष्ट्रीय हित के इसके अप्रतिम वर्णन का कोई सानी नहीं है। इसमें इंदिरा गांधी और प्रधान मंत्री के तौर-तरीकों की तीक्ष्ण और कटु आलोचना भी थी, जिसके चलते अंततः इंदिरा गांधी ने आपात स्थिति लागू करने के बाद पहला अवसर मिलते ही इस पर पाबंदी लगा दी।

भारत को जिन परिस्थितियों ने क्षति पहुँचाई, 'द मदरलैंड' में उनकी बेबाक टिप्पणी और सुस्पष्ट विश्लेषण, इंदिरा सरकार की उसकी मुखर किंतु अकाट्य आलोचना, और भारत के लिए जरूरी शासन संस्कृति के प्रति उसकी संवेदनशीलता और उस समय राष्ट्रीय मानस में पनप रही अस्वीकार की मनोदशा के उसके चित्रण से लोग अचंभित रह जाते थे। स्थिति की भयावहता को देखते हुए,मलकानी ने लिखा, "देश में भूख और लोगों के मन में क्रोध है।" एक अस्वीकरण था, जो अंततः मौलिक परिवर्तन की ललक का प्रतीक बन बैठा, जिससे चिढ़कर इंदिरा गांधी ने कुलीन वर्ग और अपनी 'पाकशाला मंत्रिपरिषद' के चालाक सदस्यों की सहायता से आपात काल की घोषणा कर दी, जिनके सत्ता के नशे और राजनीति से चिपके रहने की कामना के चलते भारत एक विशाल कारागार बन चला था।

'द मदरलैंड' का संपादन शुरू करने से पहले ही के. आर. मलकानी प्रतिष्ठित साप्ताहिक 'ऑर्गनाइजर' का संपादन शुरू कर चुके थे। एक अग्रणी राजनीतिक चिंतक और बुद्धिजीवी, भारतीय जन संघ (बीजेएस), जिसके वह आरंभिक और सक्रिय सदस्य थे, की राजनीति और राजनीतिक दर्शन के एक उत्कृष्ट रिपोर्टर के रूप में उन्होंने स्वयं को पहले ही स्थापित कर लिया था। वस्तुतः, वर्ष 1971 तक,मलकानी न केवल भारत में प्रतिपक्षी राजनीति के एक साक्षी, विवेचक, विश्लेषक और व्याख्याकार थे, बल्कि अति प्रतिकूल और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में, भारत की एक वैकल्पिक परिकल्पना की नींव डालने के लिए एक राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष पर विचार करने और तदनुरूप उसे आरंभ करने हेतु वर्ष 1951 में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा गठित बीजेएस के नेतृत्व में उस धारा के एक सक्रिय कार्यकर्ता भी थे, जिसे अहम मोड़ों पर छोटे-छोटे कम्युनिस्ट दलों के समर्थन से कांग्रेस के उस समय के नेहरू-इंदिरा तंत्र से प्रोत्साहन मिल रहा था।

इसके कार्यकर्ता-केंद्रितता, विचारधारा प्रेरित राजनीति व पार्टी के विकास पर इसके जोर, और 'भारत प्रथम' की राजनीति के इसके आधार से इसे आंतरिक शक्ति, लोच और संस्कार मिला। 'द मदरलैंड' में अपने एक दिलचस्प संपादकीय में मलकानी लिखते हैं, "एक काडर किसी विचारधारा का ठोस घटक और मूर्त रूप होता है। वह अनंत संस्कारों से निकला निचोड़ होता है। वह सामूहिक रूप से अपनाए गए सामूहिक आदर्शों की भट्ठी में दीर्घ काल तक तप कर तैयार होता है। उसके पास साथ मिलकर लड़े गए युद्धों की एक धरोहर होती है... पार्टियाँ लोगों के संघर्ष

में ही एकजुट हो सकती हैं।" जनसंघ में एक कृतसंकल्प काडर-बुद्धिजीवी और आगे चलकर भारतीय जनता पार्टी के संस्थापक सदस्यों में से एक के रूप में मलकानी स्वयं साथ मिलकर लड़े गए युद्धों की उस धरोहर का एक मुख्य योद्धा थे। भाजपा ने स्वयं जन संघर्ष की बीजेएस की उस परंपरा को जारी रखा, और अंततः वह आजादी के बाद के भारत में जन-साधारण की एक काडर संचालित प्रभावशाली और अजेय पार्टी के रूप में उभर कर सामने आई।

जनसंघ और भाजपा नेताओं की मलकानी की पीढ़ी के राजनीतिक जीवन का बेहतर हिस्सा बतौर विपक्ष बीता। वह निरंतर नेहरू की आम सहमति और आगे चलकर इंदिरा गांधी के अलोकतांत्रिक प्रभुत्व का निर्भीकता और साहस के साथ विरोध करते रहे। 'दि मदरलैंड' अक्सरमलकानी को मुखर राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में प्रस्तुत करता रहा। विपक्ष के दृष्टिकोण के अनुरूप, एक बार उन्होंने लिखा, "यह किसी व्यक्ति की सत्ता की लालसा का कोई प्रश्न नहीं है; जिन लोगों ने प्रतिपक्ष में रहते हुए एक चौथाई सदी गुजार दी, वे वहाँ अपना शेष जीवन आराम से बिता सकते थे। संभव था कि सत्ता में वे सहज भी महसूस नहीं करते। उनमें से कोई भी यदि चाहता तो सत्ताधारी दल का दामन थाम लेता और कोई अच्छी जगह हासिल कर लेता। किंतु उन्होंने ऐसा कभी नहीं चाहा। किंतु वे और प्रत्येक देशभक्त भारतीय एक अल्पसंख्यक समर्थन से ऊपर की सोच रखने वाली एक सरकार, नैतिक सत्ता वाली एक सरकार, एक ऐसी सरकार चाहता है जो लोगों से स्नेह रखे और उनका सम्मान करे।" क्या उनके इस उद्‌गार के लिए उन्हें दोष दिया जा सकता है? एक अन्य आलेख में तात्विक दृष्टि से कांग्रेसियों और गैर-कांग्रेसियों के बीच मतभेद का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं, "कांग्रेसियों और गैर-कांग्रेसियों के बीच मतभेद विचारधारा नहीं है, यह जीवन के प्रति नजरिया है। सत्ता में हिस्सेदारी की लालसा रखने वाले सभी लोग कांग्रेस में हैं। और जो अपने विचारों और आदर्शों को भौतिक हितों से ऊपर रखते हैं, वे विपक्ष में हैं।"

मुख्यतः जनसंघ के नेतृत्व में प्रतिपक्षियों के इस निरंतर और व्यापक दबाव के कारण ही, भारत की लोकतांत्रिक परंपराएं दृढ़ता से स्थापित हो पाईं। इसका श्रेय प्रतिपक्ष के नेताओं को जाता है। आजादी के बाद की भारतीय राजनीति के कुछ पंडितों का मानना है कि "इस विचार पर फिर से *मंथन* की आवश्यकता है कि वर्ष 1950 के दशक में भारतीय राजनीति पर कांग्रेस का गहरा वर्चस्व था, जिसमें विपक्ष की भूमिका नगण्य थी। यद्यपि विपक्ष चुनावी दृष्टि से एकजुट नहीं था, किंतु वह संसद के भीतर और बाहर एक प्रभावशील भूमिका निभाता रहा।"

कांग्रेस से इतर राजनीतिक क्षेत्र का विस्तार "यद्यपि धीरे-धीरे किंतु निश्चित रूप से..." हुआ। जनसंघ ने स्वयं को उस धीमे किंतु निश्चित विस्तारवादी परिवेश में खड़ा पाया। आगे चल कर मलकानी का 'द मदरलैंड' विपक्षी तथा 'गैर-कांग्रेसी' राजनीति और राजनीतिक दर्शन का एक वाहक बन गया।

मलकानी अपने समय के मुख्य राजनीतिक इतिहासकारों में से एक के रूप में उभर कर सामने आए और 'द मदरलैंड', कुछ समय के लिए उनका सर्वाधिक प्रिय और गतिशील वाहन बना रहा। जनसंघ के इतिहास और तत्कालीन राजनीतिक जटिलताओं का के. आर. मलकानी का ज्ञान व कोष विशाल और उनके पांडित्य तथा अपरिमित स्मरणशक्ति और घटनाओं का सारगर्भित विश्लेषण करने की उनकी क्षमता से अवगत लोगों के लिए अकसर अभिभूत करने वाला था। बीतते समय के साथ उनके इस गुण में निखार आता गया।

उनकी गहरी जिज्ञासा उनकी बौद्धिक प्यास का प्रेरणा स्रोत थी। विश्लेषण के क्रम में विवरणों की तह तक जाने कीमलकानी की प्रवृत्ति उन्हें विस्तृत और गहन अध्ययन के लिए प्रेरित किया करती थी। यह एक जुनून था जो जीवनपर्यंत उनके साथ बना रहा। उनकी लेखनी निरंतर चलती रही, उनका मस्तिष्क हमेशा सक्रिय रहा, उनकी जिज्ञासा कभी थमी नहीं, और राष्ट्रीय वृत्तांतों को पुष्ट करने, आधार को विस्तार और जड़ों को गहराई देने की उनकी ललक कभी फीकी नहीं पड़ी।

'द मदरलैंड' की तीक्ष्ण शैली और त्रुटिहीन अंग्रेजी में के. आर. मलकानी की अपनी शैली की झलक दिखाई देती है। इसकी सामग्री और प्रसंगों में भारत के प्रति उनकी अपनी गहरी चिंताओं और आकांक्षाओं की छवि दिखाई देती है। वर्ष 1975 के मार्च के आरंभिक दिनों में भारत के उत्थान और भू-राजनीतिक मंच पर उसकी शक्ति की स्थिति को सुदृढ़ करने की आवश्यकता का उल्लेख करते समय उनके एक संपादकीय लेख की नीचे प्रस्तुत पंक्तियों में 'द मदरलैंड' का अपना सिद्धांत और पत्रकारिता की शैली साफ देखी जा सकती है, "यह बात समझ लेना जरूरी है कि भारत जैसे आकार और महत्व का कोई देश किसी का अनुचर नहीं हो सकता। अपने एक सौरमंडल के साथ भारत केवल और केवल एक सूर्य हो सकता है।" डीआरआई राष्ट्रीय मानस की सीमा पर संभवतः एकमात्र विचार कुंड था जिसे लोकतंत्र, लोकतांत्रिक अधिकारों के निलंबन का आभास हो चला था और जिसने दूसरों के इस पर सोचने से बहुत पहले ही इसके प्रति लोगों को सचेत कर दिया था।

जब इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की और उनके विरोधियों को कैद करने की योजना आनन-फानन में लागू की गई, तब मलकानी के अनुसार दिल्ली में गिरफ्तार

मलकानी अपने समय के मुख्य राजनीतिक इतिहासकारों में से एक के रूप में उभर कर सामने आए और 'द मदरलैंड', कुछ समय के लिए उनका सर्वाधिक प्रिय और गतिशील वाहन बना रहा। जनसंघ के इतिहास और तत्कालीन राजनीतिक जटिलताओं का के. आर. मलकानी का ज्ञान व कोष विशाल और उनके पांडित्य तथा अपरिमित स्मरणशक्ति और घटनाओं का सारगर्भित विश्लेषण करने की उनकी क्षमता से अवगत लोगों के लिए अकसर अभिभूत करने वाला था। बीतते समय के साथ उनके इस गुण में निखार आता गया

होने वाले वह पहले व्यक्ति थे। मलकानी अक्सर एक विलक्षण राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया करते थे। उदाहरणस्वरूप, मार्च 1975 में उन्होंने अपने एक आलेख में भारत में राजनीतिक स्थिति का चित्रण 'अति डावांडोल' के रूप में किया। उन्होंने लिखा, "आपको पता नहीं कि अगले वर्ष आपकी सरकार कैसी होगी।" उस वर्ष मार्च में, दीनदयाल शोध संस्थान (डीआरआई) में, जिसके मलकानी आगे चलकर उपाध्यक्ष बने, 'संविधान और लोकतंत्र में आपातकाल' विषय पर एक परिसंवाद का आयोजन किया गया। परिसंवाद में अपने विचार रखते हुए, भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश, के. सुब्बाराव ने कहा, "ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जब हमारे संवैधानिक लोकतंत्र को ध्वस्त करने के लिए राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल जाल बुन सकते हैं।"

जैसा किमलकानी ने आगे चलकर लिखा, "26 जून को आपातकाल की घोषणा, नेताओं की गिरफ्तारी और राष्ट्रीय उथल-पुथल का समाचार छापने वाला 'द मदरलैंड' भारत का एकमात्र समाचारपत्र था।" मलकानी के अधीन काम कर चुकीं अनुभवी पत्रकार कूमी कपूर अपने संस्मरण, 'दि इमरजेंसी : ए पर्सनल हिस्ट्री' में अखबार के बारे में लिखती हैं, "साहसिक, कभी-कभी सनसनीखेज समाचार और धुर गांधी-विरोधी पंक्तियां" जिसने "प्रधान मंत्री को निजी तौर पर क्रोधोन्मत्त कर दिया था।" कपूर लिखती हैं, इस अखबार के "विवादास्पद आलेखों में समस्तीपुर में एक बम विस्फोट में रेल मंत्री ललित नारायण मिश्र की हत्या में राजनीतिक साजिश का आरोप भी शामिल था। इसने बदनाम रुस्तम नगरवाला मामले में अन्य अखबारों की तुलना में गहरी छानबीन की, जिसमें सेना से सेवानिवृत्त नगरवाला पर श्रीमती गांधी की आवाज में भारतीय स्टेट बैंक से 60 लाख रुपये ठगने और हेड कैशियर को नगरवाला को वह राशि देने का ओदश देने का आरोप लगाया गया था।"

'द मदरलैंड' में मलकानी ने "संजय गांधी की मारुति फैक्ट्री को लेकर परेशान कर देने वाले कई प्रश्न भी खड़े किए थे, जिन्हें संसद में पेश किया गया था।" कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं, "श्रीमती गांधी ने कुछ ऐसे काम किए हैं, जो किसी अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय प्रधानमंत्री को बरबाद कर सकते थे। किंतु उनके व्यवहार की गरिमा, उनकी निश्छल गूंजती आवाज, एक कुलीन महिला होने नाते उनका ठाट-बाट, सब ने इन कृत्यों को छिपाने में सहायता की है", या फिर, "उदाहरण के लिए अपने बेटे को छोटी कार का लाइसेंस देना। बहुत से लोगों को इस पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ था। ऐसे हजारों लोगों को लाइसेंस मिल रहे थे जो फर्जी थे, तो फिर एक लाइसेंस जवाहरलाल के दौहित्र को क्यों नहीं मिल सकता था? उनमें तर्क-वितर्क छिड़ा था। हो सकता है कि कुछ लोगों के मन में यह विचार भी आया हो कि संजय की कार के मामले के जल्दी साकार होने का एक बेहतर अवसर था और इसका अर्थ यह हो सकता था कि जो लोग बाजार में मौजूद गाडि यां नहीं खरीद सकते उनके लिए बाजार में जल्द एक कार उपलब्ध हो।" ये पंक्तियां निश्चय ही प्रधान मंत्री को नागवार गुजरी होंगी, जो अपने बेटे संजय को वित्तीय और राजनीतिक दोनों स्तरों पर सुव्यवस्थित आधार देने के लिए सभी नियमों को ताक पर रखने और सभी मर्यादाओं तथा मूल्यों को दरकिनार करने पर आमादा थीं।

मलकानी ने नगरवाला मामले पर स्पष्ट शब्दों में लिखा, कोई अन्य प्रधान मंत्री होता, तो उसे 'माताजी' के नाम पर नगरवाला द्वारा निकाले गए 60 लाख रुपये के इस मामले के चलते गद्दी छोड़नी पड़ती, किंतु इंदिरा गांधी के साथ ऐसा नहीं हुआ। रेडियो चुप था, प्रेस को जल्द ही खामोश कर दिया गया। और संदिग्धों को अदालती कार्यवाहियों का सामना करना पड़ा। यदि अदालत ने कोषपाल को छोड़ दिया होता, या यदि नगरवाला की मृत्यु हो जाती, तो यह दोष प्रधानमंत्री का कतई नहीं होता

मलकानी ने नगरवाला मामले पर स्पष्ट शब्दों में लिखा, "कोई अन्य प्रधान मंत्री होता, तो उसे 'माताजी' के नाम पर नगरवाला द्वारा निकाले गए 60 लाख रुपये के इस मामले के चलते गद्दी छोड़नी पड़ती, किंतु इंदिरा गांधी के साथ ऐसा नहीं हुआ। रेडियो चुप था, प्रेस को जल्द ही खामोश कर दिया गया। और संदिग्धों को अदालती कार्यवाहियों का सामना करना पड़ा। यदि अदालत ने कोषपाल को छोड़ दिया होता, या यदि नगरवाला की मृत्यु हो जाती, तो यह दोष प्रधानमंत्री का कतई नहीं होता! इस पूर्णत: घृणास्पद मामले को बड़ी सफाई से अदालत की फाइल में दबा दिया गया। यदि कुछ समय बाद यह फाइल अपने आप गुम हो जाए, तो किसी को आश्चर्य नहीं होगा। किंतु इसे लेकर किसी को ज्यादा चिंता है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। लोग क्षमा कर देने को तैयार हैं, वे भूल जाने को तैयार हैं - मिल चुकी और मिलने वाली सेवाओं के लिए।" ऐसा देखा गया कि मई 1971 के अंत तक और उसके बाद भी, "श्रीमती गांधी सावधानीपूर्वक मौन रहीं। यह मामला [नगरवाला मामला] जब भी लोक सभा के किसी उत्तेजनापूर्ण माहौल में उठाया जाता, तो वह चुपचाप अपने कमरे से बाहर निकल जातीं और अपने किये का परिणाम भुगतने के लिए बेचारे वित्त मंत्री वाई. बी. चव्हाण को छोड़ जातीं।"

नगरवाला मामले ने देश को झकझोर डाला था। इतने बड़े भ्रष्टाचार और धन की हेराफेरी की बात सामने आई और उसमें शीर्ष व्यक्ति का नाम प्रत्यक्षत: शामिल प्रतीत हो रहा था। नगरवाला प्रकरण पर मलकानी विशेष रूप से तीखा प्रहार कर रहे थे। 'द मदरलैंड' ने एक के बाद एक कई खुलासे किए और अपने आलेखों में मलकानी ने पूछा कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में क्या था। "लोगों के मन में सवाल उठना रुक नहीं सकता। वह प्रश्न है : नगरवाला ने 60 लाख रुपये की वह राशि आखिर किस खाते से निकाली थी? यह सारा पैसा किस का था? क्या यह श्रीमती गांधी का निजी खाता था? क्या यह उनकी पार्टी का खाता था? क्या यह उनका कोड नंबर वाला कोई गुप्त खाता था? या फिर यह विदेशी धन था, जिसका

उपयोग वह जब चाहतीं, कर सकती थीं? सीजर की बीबी की तरह, किसी देश के प्रधान मंत्री को संदेह से परे होना चाहिए। किंतु दुख है कि नगरवाला मामले ने उनके नाम को एक गहरा काला दाग लगा दिया है। लोगों के मन में जिज्ञासा है कि कहीं उनकी राजनीति विदेशी धन पर तो निर्भर नहीं है। पूरा प्रकरण एक प्रहेलिका के आवरण में लिपटा एक रहस्य बन गया है ..." यह लाजिमी था कि मलकानी हमेशा स्कैनर के घेरे में रहे और श्रीमती गांधी के बदले के रेडार पर उनका नाम अंकित रहा।

आजादी के बाद के और फिर नेहरू के बाद के भारत के राजनीतिक सफर के पंडितों और जिज्ञासु लोगों के लिए 'द मदरलैंड' में मुक्ति संग्राम की विजय से, जिसके फलस्वरूप बांग्लादेश का जन्म हुआ, अनैतिक आपातकाल के उस अंधेरे युग तक एक गहन और व्यापक विश्लेषण और मूल्यांकन प्रदान करता है। इस मुक्ति संग्राम के बारे में मलकानी ने 'द मदरलैंड' में लिखा - "जब बांग्लादेश को आजादी मिली, तब जनसंघ के कई समर्थकों को महसूस हुआ कि इंदिरा गांधी ने ठीक वही किया जो जनसंघ करना चाहता था, पर कर नहीं सकता था।" जिस युग और राजनीतिक परिवेश में 'द मदरलैंड' का प्रकाशन हो रहा था, उसका अति सुंदर वर्णन मलकानी ने अपने आलेख में किया है, "आजादी के सत्ताईस वर्ष बाद, भारत उतना ही गरीब है जितना कभी था; यह गले तक कर्ज में डूबा हुआ है, और हमारे व विकसित दुनिया के बीच की खाई कई गुना बढ़ गई है। यह एक निराशाजनक स्थिति है। फिर भी सरकार ऐसा व्यवहार कर रही है मानो विश्व के साथ सब कुछ ठीक है और स्थितियां वैसी ही हैं जैसी उन्हें होना चाहिए। ऐसा लगता है मानो हम भारत की अंतहीन परवशता और भारतीय जनता की बढ़ती दरिद्रता से संतुष्ट हैं।" नेहरू युग में पल्लवित तथा इंदिरा युग में पुष्पित और उन दिनों प्रचलित 'लाइसेंस-परिमट-कोटा राज' के हानिकारक प्रभावों के प्रबल विरोधी मलकानी ने लिखा, "इस प्रकार, इस परिमट-लाइसेंस-कोटा राज ने हिंदुस्तान को करप्टिस्तान बना डाला है।"

इंदिरा गांधी की नीतियों को मलकानी ने चुनौती दी और भारत पर पड़ने वाले उनके प्रतिकूल प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए उनका गहन विश्लेषण किया, "अपने शोषण के लिए अपने को प्रस्तुत करने वाले हम पृथ्वी पर एकमात्र मूर्ख हैं - और इसे सहायता कहते हैं।" उन्होंने इस पर दुख भी जताया। किंतु इंदिरा गांधी की बातों में जब भी उन्हें कोई खूबी नजर आती, वह उसकी शालीनतापूर्वक सराहना करते। इंदिरा के आज के अनुवर्तियों के विपरीत, इंदिरा के प्रति उनका विरोध व्यक्तिगत या विवेकहीन नहीं होता, बल्कि इसके पीछे भारत के राष्ट्रीय हितों की रक्षा और संवर्धन के प्रति आग्रह की भावना होती। आगे चलकर सोनिया गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस के विपरीत, जो वर्ष 1998 में तत्कालीन प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा शुरू किए गए पोखरण दो की घोर विरोधी थी, मलकानी ने अपने 'द मदरलैंड' में इंदिरा के पोखरण एक के आक्रमण का समर्थन करते हुए लिखा, "यह बात निस्संदेह समझ लेनी चाहिए कि परमाणु विस्फोट महज कोई बड़ा धमाका नहीं, बल्कि बड़े बदलावों का सूचक होता है। इसके चलते स्थिति में गुणात्मक बदलाव आता है। यह किसी व्यक्ति के विकास के चरम को छूने जैसा है - जब उसके लिए हर स्थिति में बदलाव आ जाता है।"

नेहरू का युग इंदिरा के युग में संलीन हो गया, विशालकाय कांग्रेस आरोह पथ पर अग्रसर थी, स्वयं को अपराजेय मानती हुई। मलकानी इंदिरा के भारत और उनकी कांग्रेस पार्टी की निर्ममतापूर्वक कटु आलोचना करने का कोई अवसर नहीं छोड़ते थे। 'द मदरलैंड' में अपनी अद्वितीय प्रेरक शैली में उन्होंने लिखा, "विचारधारा के अभाव के चलते कांग्रेस किसी भी आदर्शवादी को आकृष्ट करने में असफल रही है। वे तमाम उग्र नारे लगा सकते हैं, किंतु बुनियादी तौर पर वे सब अनैतिक झपटमार हैं। उन्हें देश को लेकर कोई पीड़ा नहीं है; वे अपने लिए देश को पीड़ा पहुंचाते हैं। कांग्रेस की यही दोहरी त्रासदी है - परम सत्ता और विचारधारा का परम अभाव - जिसने इस पार्टी को एक जिंदा बदबूदार लाश का रूप दे दिया है - और देश को तबाह कर डाला है।"

कांग्रेस ने जब अपनी अंध गांधीवादिता से किनारा किया, तब उन्होंने लिखा, "आजादी से पहले भी, ज्यादातर कांग्रेसियों की गांधीवाद के प्रति आस्था नहीं थी; उन्होंने केवल गांधी को लिया, क्योंकि वह 'महात्मा' थे, जिनकी धार्मिक भाषा उनके लिए वोट बटोरती। कांग्रेस के लिए गांधी एक व्यापार-चिह्न से ज्यादा कुछ नहीं थे। आज, उस चिह्न का कोई नामोनिशान नहीं है, किंतु व्यापार बदस्तूर चल रहा है। जो कांग्रेसी सच्चे गांधीवादी थे, उन्हें कब का दरकिनार किया जा चुका था।"

'द मदरलैंड' की मूल भावना, उसकी दिशा, उसकी अवस्थिति और विचार के जनक व प्रेरणा स्रोत आरएसएस के आदर्श और जनसंघ की विचारधारा थे, इन दोनों ही संगठनों को मलकानी ने अपना जीवन समर्पित कर दिया था। वस्तुतः, यह उनके दर्शन और विचारधारा के संचार और प्रसार का प्रभावशाली वाहक बन चला था। उनके अनेकानेक आलेखों में एक उल्लेखनीय समकालीन गूंज सुनाई देती है। इसमें आप नेहरू-गांधी परिवार को लेकर आरएसएस और जन संघ का दुराग्रह देख सकते हैं।

इंदिरा का यह आक्षेप मलकानी को नागवार लगा कि आरएसएस एक क्रूर

इंदिरा गांधी की नीतियों को मलकानी ने चुनौती दी और भारत पर पड़ने वाले उनके प्रतिकूल प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए उनका गहन विश्लेषण किया, "अपने शोषण के लिए अपने को प्रस्तुत करने वाले हम पृथ्वी पर एकमात्र मूर्ख हैं - और इसे सहायता कहते हैं।" उन्होंने इस पर दुख भी जताया। किंतु इंदिरा गांधी की बातों में जब भी उन्हें कोई खूबी नजर आती, वह उसकी शालीनतापूर्वक सराहना करते। इंदिरा के आज के अनुवर्तियों के विपरीत, इंदिरा के प्रति उनका विरोध व्यक्तिगत या विवेकहीन नहीं होता, बल्कि इसके पीछे भारत के राष्ट्रीय हितों की रक्षा और संवर्धन के प्रति आग्रह की भावना होती

और फासीवादी संगठन है। अपनी अकाट्य प्रतिक्रिया के साथ वह लिखते हैं, "उनके साथ पूरी बात एक मनोग्रस्ति-सी लगती है और उनकी इस मनोग्रस्ति को और तूल देने में उनके इर्द-गिर्द मंडराते साम्यवादियों व संप्रदायवादियों का निहित स्वार्थ है। वह यह नहीं सोचना चाहतीं कि यदि आरएसएस हिंसक है, तो 50 वर्ष के उसके जीवन काल में उसके किसी कार्यकर्ता को हिंसा का दोषी क्यों नहीं ठहराया गया है - नहीं, उनके समर्पित न्यायाधीशों ने भी ऐसे किसी व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया है। न ही वह यह देखती हैं कि कोई 'सांप्रदायिक', 'फासीवादी' और 'प्रतिक्रियावादी' संगठन बड़ी संख्या में प्रतिभाशाली और आदर्शवादी लोगों को कैसे आकर्षित कर थामे रख सकता है जो हर दूसरी पार्टी/आंदोलन के मर्म हैं।

'द मदरलैंड' में मलकानी के आलेख असाधारण और आकर्षक होते थे। उनकी भू-राजनीति, अमेरिकी राजनीति, विश्व कूटनीति, तेल राजनीति की जानकारी, पश्चिम एशियाई राजनीति, अफगानिस्तान और भूतपूर्व उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत, भ्रष्टाचार, हिंदुत्व और सांस्कृतिक मुद्दों, श्रम मुद्दों, खाद्य सुरक्षा और जीवन शैली, चुनाव सुधारों, कश्मीर, हिंदू-मुस्लिम समस्या और कई अन्य समस्याओं की उनकी समझ व्यापक थी। उनके कई आलेख पांच दशकों से अधिक समय के बाद आज भी बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। उनके लेखनों और स्रोतों में एक ऐसा मन दिखाई देता है, जो विश्व के अग्रणी विचारकों के विचारों की धाराओं, तर्कों और वृत्तांतों से अच्छी तरह परिचित था, उनके अध्ययन का क्षेत्र विशाल था और दृष्टांत उतने ही विविधतापूर्ण।

कई विषयों के व्याख्याता और समर्थक, के.आर. मलकानी का दृष्टिकोण और अभिव्यक्तियां बहुधा भविष्यवादी होती थीं। उदाहरणस्वरूप, वर्ष 1975 में, उन्होंने 61वें संशोधन के लागू होने से बहुत पहले 18 वर्ष के बच्चों के लिए मतदान के अधिकार की सिफारिश की थी। भारतीय भाषाओं के उन्नयन के प्रबल पक्षधर, मलकानी जनसंघ और आरएसएस के विश्वदर्शन का समर्थन करते हुए मानते थे कि स्वभाषा के बिना स्वराज्य का लक्ष्य पूरा नहीं हो

'द मदरलैंड' में मलकानी के आलेख असाधारण और आकर्षक होते थे। उनकी भू-राजनीति, अमेरिकी राजनीति, विश्व कूटनीति, तेल राजनीति की जानकारी, पश्चिम एशियाई राजनीति, अफगानिस्तान और भूतपूर्व उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत, भ्रष्टाचार, हिंदुत्व और सांस्कृतिक मुद्दों, श्रम मुद्दों, खाद्य सुरक्षा और जीवन शैली, चुनाव सुधारों, कश्मीर, हिंदू-मुस्लिम समस्या और कई अन्य समस्याओं की उनकी समझ व्यापक थी। उनके कई आलेख पांच दशकों से अधिक समय के बाद आज भी बड़े चाव से पढ़े जाते हैं

सकता। 'द मदरलैंड' में अपने आलेखों में उन्होंने लोगों की भाषा में शिक्षा और प्रशासन मुहैया कराने, लोगों के उत्थान और लोगों व सरकार के बीच के अंतर को दूर करने की आवश्यकता पर बल दिया। अंग्रेजी पर हमारी अति-निर्भरता की वह घोर निंदा करते थे; ऐसी निंदा प्राय: वही कर सकता है, जिसका मलकानी की तरह भाषा पर आधिपत्य हो। 'द मदरलैंड' में उन्होंने लिखा, "वस्तुत: किसी व्यक्ति को समस्त विश्व का ज्ञान हो सकता है, किंतु यदि उसे अंग्रेजी नहीं आती, तो भारत में उसे 'अशिक्षित' माना जाता है। अंग्रेजी-वालों का यही मानना है। यह धारणा जाति व्यवस्था को एक नया रूप देती है। अंग्रेजी हमारी अपनी भाषाओं पर हावी हो गई है और हमारे अपने ग्रंथों को इसने हमारे लिए एक सीलबंद पुस्तक बना दिया है। हम मिल और मार्क्स और मेकियावेली का दृष्टांत देते हैं, किंतु मनु या पाणिनि या चाणक्य का हमें कोई ज्ञान नहीं है। हम अपनी मौलिकता खो चुके हैं, तो इसमें आश्चर्य कैसा, भारतीय मेधा का पौधा आज कंपवायु से ग्रस्त हो चला है।"

कुछ अन्य लोगों की भांति वह कश्मीर समस्या का विश्लेषण कर सकते थे। वर्षों तक कश्मीर पर जनसंघ के मूलभूत दृष्टिकोणों की सिफारिश करते रहने के दौरान, अपने गहन विश्लेषण में वह शेख अब्दुल्ला की स्वायत्तता के नाम पर कभी नरम, कभी कट्टर अलगाववाद की राजनीति को खारिज करते रहे। कश्मीर के लोग क्या चाहते हैं, इस पर तर्क देते हुए मलकानी ने लिखा, "यह स्वायत्तता नहीं है - राजनेताओं का शगल है; वे केवल ईमानदारी से जीना और अच्छा प्रशासन चाहते हैं। यदि सरकार विकास दर को तेज करे और स्वच्छ प्रशासन दे, तो स्वायत्तता को लेकर किसी को भी कोई परेशानी नहीं होगी।"

संसार का कोई भी व्यक्ति मलकानी के 'द मदरलैंड' का गहन विश्लेषण कर सकता है। 'द मदरलैंड' एक तरफ जहां अपने संसार के वृत्तांतों को मुखर अभिव्यक्ति देने में लगा था, तो वहीं दूसरी तरफ भविष्य का उसका अपना एक नजरिया भी था, एक ऐसा भविष्य जिसमें अंतत: लोगों की शक्ति जाग्रत हो और राष्ट्र की प्रगति के मुख्य प्रेरक के रूप में उभर कर सामने आए। 'द मदरलैंड' में मलकानी ने कभी लिखा था, "हमें महज सुप्त बहुमत को जगाना और उसे उसकी शक्ति और निर्दोषिता का अहसास कराना है,'' और फिर शेष सब कुछ स्वत: होने लगेगा। सामाजिक न्याय और समता राष्ट्र के स्वस्थ व समग्र विकास के दो मुख्य आयाम हैं। अपने आलेखों में उन्होंने लिखा, "हम अभी तक एक एकीकृत राष्ट्र नहीं हो पाए हैं, एक वर्ग के लोगों के कष्ट अन्य वर्गों के लोग महसूस नहीं करते। केवल उस समय को छोड़ कर जब राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे में हो, हम एक होकर क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं करते। जब कोई बाहरी संकट गुजर जाता है, तब हम पुन: तंद्रा की चादर ओढ़ लेते हैं। हम अन्याय का विरोध नहीं करते। हम अलग-अलग जातियों और वर्गों और समुदायों और संघों और दलों के रूप सोचते और कार्य करते हैं - भारतीय नागरिकों के रूप में नहीं"

दि मदरलैंड भारत और भारतीय लोकतंत्र के सर्वाधिक प्रभावी और प्रेरणादायक समाचारपत्रों में से एक के रूप में उभर कर सामने आया। यह एक अजस्र धरोहर है और इसके पनपने व विकसित होने में के. आर. मलकानी ने जो अप्रतिम योगदान दिया, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

अतुल जैन

मलकानी जी और मंथन शोध की व्यावहारिकता

मंथन को एक अनन्य शोध पत्रिका बनाने में मलकानी का योगदान अविस्मरणीय है। उनके कर्तृत्व का एक सिंहावलोकन

बीते वर्ष हमने मूर्धन्य पत्रकार स्वर्गीय केवल रतन मलकानी की जन्म शताब्दी मनाई। वे पत्रकार, स्तंभकार, संपादक, राजनीतिज्ञ, सांसद, चिंतक, विचारक, न जाने क्या-क्या थे। एक विचारधारा के प्रवर्तक थे। लेकिन उसमें जड़ नहीं थे। विचारधारा से बंधे होने के साथ-साथ व्यवहारिकता के भी धनी थे। हालांकि अपनी सक्रियता के अंतिम समय में वे राजनीति में रहे, लेकिन उनकी मुख्य पहचान एक प्रखर राष्ट्रवादी पत्रकार व संपादक के रूप में ज्यादा रही। देश के प्रमुख साप्ताहिक ऑर्गेनाइजर व दैनिक मदरलैंड के वे संस्थापक संपादकों में से रहे और आठ वर्षों तक *मंथन* के संपादक रहे।

मंथन का संपादन करते हुए उन्होंने विविध विषयों पर शोधपरक लेख लिखे भी और लिखवाए भी। शोध से उनका अर्थ सिर्फ अभिलेखागारों के दस्तावेजों तक ही सीमित नहीं था। बल्कि देश की नामी गिरामी हस्तियों को *मंथन* या दीनदयाल शोध संस्थान के मंचों पर इकठ्ठा कर, उनकी विद्वता के दस्तावेजीकरण का अनूठा बीड़ा उन्होंने उठाया। इसका असर यह हुआ कि ऐतिहासिक बातों को नए संदर्भों में रखने, देखने व समझने का अवसर *मंथन* के सुधी पाठकों को मिला। राजनीति व समाजशास्त्र के शोधार्थियों के लिए *मंथन* एक अनिवार्य सा शोधग्रंथ बन गया। आज भी है।

मंथन, दीनदयाल शोध संस्थान का एक लंबे समय से पला हुआ स्वप्न रहा। 1972 में संस्थान की स्थापना के समय से ही इससे संबद्ध लोगों के मनों में *मंथन* का स्वप्न सबसे ऊपर था। संस्थान द्वारा प्रकाशित प्रथम विवरणिका में ही इसके आगमन की घोषणा की गई थी। ऐसी कल्पना की गई थी कि यह विश्व भर के अध्येताओं, विशेषज्ञों एवं विचारकों को एक मंच प्रदान करेगा जहाँ वे सार्थक, निष्पक्ष और वस्तुपरक संवाद कर उन समस्याओं के व्यावहारिक व समसामयिक समाधान प्रस्तुत कर सकें।

हालांकि अपने शैशव काल में ही *मंथन* को बहुत सी विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था। आपातकाल के दौरान संस्थान की लगभग सभी गतिविधियां ठप हो गई थीं। जो लोग संस्थान की रीढ़ थे, वे या तो कारागार में बंद हो चुके थे या बड़े दबाव और तनाव में भूमिगत संघर्ष चला रहे थे। किंतु जैसे ही आपातकाल समाप्त हुआ और संस्थान की गतिविधियां पुनः प्रारंभ हुईं, *मंथन* का प्रकाशन भी उसकी प्राथमिकता थी।

उस समय पत्र-पत्रिकाओं की भारी भीड़ थी। किंतु नानाजी व उनकी टीम ने तय किया कि *मंथन* उन्हीं में से मात्र एक नहीं होगा। *मंथन* का एक उद्देश्य एक स्पष्ट व्रत वाले पत्र का था। जैसा इसका नाम ही इंगित करता है, यह धारणाओं और विचारों के *मंथन* के लिए है। *मंथन* के साथ पौराणिक समुद्र-*मंथन* की प्रतीकात्मकता जुड़ी है। नानाजी का मत था कि *मंथन* को ज्ञानप्रद होना चाहिए और ज्ञान को कर्म - उचित कर्म - का प्रेरक होना चाहिए। वह ज्ञान जो कर्म की प्रेरणा नहीं देता, लंगड़ा है। तथा वह कर्म जो ज्ञान से उत्पन्न नहीं होता, अंधा है। *मंथन* का सौभाग्य रहा कि उसे ऐसे संपादक मिले जो इस विचार प्रवाह में आकंठ डूबे हुए थे।

जिस कालखंड में मलकानी जी ने *मंथन* के संपादक का दायित्व संभाला (1983-91) वह राजनैतिक रूप से बहुत उथल-पुथल वाला था। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या हो गई थी। दो समुदायों के बीच तलवारें खिंच गई थीं। बहुत नाजुक समय में उन्होंने बहुत सतर्कता व संवेदनशीलता के साथ इस दायित्व को निभाया। इंदिरा जी की हत्या के बाद देश की सत्ता पर अनुभवहीन लोगों का शासन स्थापित

हुआ। लेकिन नानाजी ने इसे देश के लिए एक अवसर के रूप में देखा। और *मंथन* के माध्यम से मलकानी जी ने उसे सकारात्मक अभिव्यक्ति में परिवर्तित कर दिया।

1989 में देश में रामजन्मभूमि आंदोलन का शंख बज गया था। अगले दो वर्षों तक *मंथन* में ऐसे शोध प्रकाशित हुए जिनसे रामजन्मभूमि पर मंदिर के विध्वंस के आकाट्य सबूत मिलते चले गए। इस विषय पर बहुत फोकस के साथ तो उन्होंने काम किया ही, आंदोलन के वृहद पक्ष को भी मलकानी जी ने बहुत शानदार धार दी।

राष्ट्रवाद बनाम सांप्रदायिकता या धर्मनिरपेक्षता के विभिन्न पक्षों को मलकानी जी ने *मंथन* के माध्यम से ऐसे संदर्भों के साथ उठाया कि बहस राष्ट्रवाद के पक्ष में झुकती चली गई। आज हम उसका सुखद परिणाम देख रहे हैं।

जिन दिनों संघ विचारधारा से जुड़े लोगों को पत्रकार आमतौर पर अपनी बिरादरी से बाहर ही रखा करते थे, उन दिनों भी मलकानी जी की स्वीकार्यता सभी प्रजातियों के पत्रकारों के बीच बराबर थी। उन दिनों एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया का सदस्य होना कोई मामूली बात नहीं थी। सर्वाधिक प्रतिष्ठित संगठन था वह देश के नामी गिरामी संपादकों का। मलकानी जी उसके उपाध्यक्ष भी रहे और उसकी विभिन्न खोजी समितियों के सदस्य भी। अक्तूबर 1987 में *मंथन* में ही छपी उनकी रिपोर्ट का अध्ययन किया जाए तो समझ आता है कि कितने वस्तुपरक व ध्येयनिष्ठ थे वे। जहां उन्होंने निर्भीक व संतुलित तरीके से शासन व अधिकारियों के व्यवहार की निंदा की, वहीं पत्रकारों के अशोभनीय आचरण व पीत पत्रकारिता की भी कड़ी आलोचना की।

जिस पृष्ठभूमि से वे आते थे या जो उनका जीने का स्टाइल था, उसे देख कर कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि मलकानी जी का प्रकृति से कोई विशेष भावात्मक लगाव रहा होगा। लेकिन *मंथन* के मार्च 1987 के अंक में उन्होंने एक लेख लिखा, 'महिमामय छोटी-छोटी बातें'। उसे पढ़ कर लगेगा कि वे तो कितने 'भारतीय' थे। सचमुच, ऐसी ढेर सारी छोटी-छोटी बातों की ओर उन्होंने ध्यान दिलाया जो हमारे स्व से जुड़ी हुई हैं।

मंथन के जनवरी 1987 अंक में उन्होंने एक शोधपरक लेख लिखा, 'आचार्यों द्वारा समाज रक्षा'। इसमें मलकानी जी ने देशभर की विभिन्न आचार्य परंपराओं, भक्ति आंदोलनों, वेदों में भक्ति की अवधारणा, आदि का बहुत सूक्ष्म व सटीक विश्लेषण किया। मलकानी जी का मानना था कि मंत्र और जप जनमानस को इतना प्रभावित नहीं कर पाए, जितना भक्ति ने किया। उन्होंने यह कहने में भी संकोच नहीं किया कि संतों के सामने दो रास्त थे, वे हिंदुत्व व इस्लाम के बीच सेतु बनते या इस्लाम को चुनौती देते। इसका असर यह हुआ कि भक्ति के रहस्यवाद से इस्लाम कहीं अधिक प्रभावित हुआ।

इस पूरे क्रम में वे गांधी जी से बहुत प्रभावित थे। ढेरोंसंदर्भों के साथ उन्होंने इस लेख में गांधी जी को बार-बार उद्धृत करते हुए अपने ऋषि-मनीषियों की दूर-दृष्टि का बहुत सुंदर विश्लेषण किया है। देश में धर्मपरिवर्तन रोकने में शंकराचार्यों की भूमिका का उल्लेख करते हुए उन्होंने बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों की ओर भी ध्यान दिलाया जो आम मानस पटल से ओझल होने लगे थे। विजयनगर में हिंदू साम्राज्य की स्थापना में ऋंगेरी के शंकराचार्य की विशेष भूमिका का सुंदर विवरण दिया।

मलकानी जी को खूब मालूम था कि हिंदी व अंग्रेजी के पाठकों की रूचि में अंतर है। मार्च 1988 के अंग्रेजी *मंथन* में उन्होंने रशियन रिवोल्यूशन पर भारतीय दृष्टिकोण पाठकों के सामने रखा। इनमें उन्होंने रूस के लोगों, वहां की शिक्षा, कृषि, उद्योग, धर्म, संस्कृति, साहित्य और वहां के नैतिक मूल्यों की भी विस्तार से चर्चा की। उनके इस लेख पर कम्युनिस्ट नेता ईएमएस नंबूदरीपाद ने विस्तृत टीका-टिप्पणी की। उस समय मलकानी जी *मंथन* के संपादक थे। वे चाहते तो उसे संक्षेप में छाप सकते थे, या नजरअंदाज कर सकते थे। लेकिन मलकानी जी ने उन्हें अपने लेख से भी बड़ा स्थान दिया। नानाजी देशमुख और मलकानी जी जैसे विशाल ह्रदय के लोगों के बस की ही बात थी कि नम्बूदरीबाद व एबी वर्धन जैसे धुरंधर वामपंथी भी *मंथन* के मंच पर बराबर का सम्मान पाते थे। एबी वर्धन के पेपर को भी मलकानी जी ने उतना ही सम्मान दिया। इसका एक बड़ा कारण रहा होगा कि इन दोनों नेताओं के लेखों में संदर्भों को बहुत महत्व दिया गया था।

समाज के विभिन्न वर्गों में विभेद मलकानी जी को बहुत नापसंद था। उसके लिए राजनेता के तौर पर उनके प्रयास अलग, *मंथन* के माध्यम से भी उन्होंने इस विभेद को समाप्त करने का बहुत प्रयास किया। जून 1988 के अंक में उन्होंने इस विवाद के कारणों की तह में जाते हुए उसके समाधान प्रस्तुत करने का एक जोरदार प्रयास किया। सूफी कवियों की वाणी और गालिब के शेयरों का सहारा लेकर उन्होंने सांप्रदायिक सौहार्द निर्मित करने का प्रयास किया। कुरान की आयतों के जरिए भी उन्होंने मुसलिम लोगों मानस तक पहुँचने की कोशिश की ताकि वह इसकी भावना को समझे।

स्वतंत्रता दिवस, 1988 को दीनदयाल शोध संस्थान में एक अविस्मरणीय संवाद का आयोजन हुआ। नानाजी देशमुख और के आर मलकानी जी ने भारत और पाकिस्तान के लोगों के बीच एक सेतु निर्माण का यज्ञ शुरु किया हुआ था। इसमें पाकिस्तान के तत्कालीन राजदूत भी शामिल हुए। संपादक

जिन दिनों संघ विचारधारा से जुड़े लोगों को पत्रकार आमतौर पर अपनी बिरादरी से बाहर ही रखा करते थे, उन दिनों भी मलकानी जी की स्वीकार्यता सभी प्रजातियों के पत्रकारों के बीच बराबर थी। उन दिनों एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया का सदस्य होना कोई मामूली बात नहीं थी। सर्वाधिक प्रतिष्ठित संगठन था वह देश के नामी गिरामी संपादकों का। मलकानी जी उसके उपाध्यक्ष भी रहे और उसकी विभिन्न खोजी समितियों के सदस्य भी। अक्तूबर 1987 में *मंथन* में ही छपी उनकी रिपोर्ट का अध्ययन किया जाए तो समझ आता है कि कितने वस्तुपरक व ध्येयनिष्ठ थे वे

से इतर, राष्ट्रीय दायित्व निभाने का मलकानी जी का यह अनुकरणीय प्रयास था। नानाजी के साथ मिल कर उन्होंने ऐसे पत्रकारों के साथ संबंध बनाए थे जो आपसी विश्वास पर टिके थे। विचारधाराओं का भेद था, लेकिन उन्हें दरकिनार करके वे सबको साथ एक साथ बिठाने की कला में भी माहिर थे। इसकी शबद्श: रिपोर्ट मलकानी जी ने *मंथन* में छापी।

राजनीति में धर्म के हस्तक्षेप पर मलकानी जी ने गांधी जी और जिन्ना के दृष्टिकोण का खूबसूरत विश्लेषण किया। अप्रैल 1986 के अंग्रेजी के *मंथन* में उन्होंने विस्तार से बताया कि किस तरह गांधी जी धर्म को नैतिकता और कर्तव्यपरायणता के साथ जोड़ते हैं, और जिन्ना कैसा संकीर्ण दृष्टिकोण रखते हैं। गांधी जी के लिए धर्म, मर्यादा का पालन है तो जिन्ना के लिए सिर्फ इबादत का एक तरीका। गांधी जी ने देश को स्वतंत्रता दिलाने के लिए धर्म का इस्तेमाल किया तो जिन्ना ने सिर्फ अपने निजी स्वार्थ के लिए। इसी लेख में मलकानी जी का मानना था कि हिंदू-मुसलिम समस्या धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक व ऐतिहासिक कारणों से उपजी समस्या है। उनका यह लेख सिर्फ उनके विचारों से ही प्रेरित या प्रभावित नहीं था, बल्कि संदर्भों के साथ अपनी बात रखने में सक्षम था।

मलकानी जी संघ के एक ध्येयनिष्ठ स्वयंसेवक थे। जब संघ के बारे में अंग्रेजी प्रेस एकतरफा आग उगल रही होती थी, तब मलकानी जी ने 1989 में *मंथन* के अप्रैल व मई अंकों का अंग्रेजी में ऐसा प्रभावशाली संयोजन किया कि सभी आलोचकों की जुबान पर ताला लग गया। संघ को मुख्यधारा में लाने का उनका यह अनोखा प्रयास था। नानाजी देशमुख के साथ मिल कर मलकानी जी ने एक पुस्तक छापी - 'हाउ अदर्स लुक ऐट द आरएसएस' - यानी अन्य लोगों की दृष्टि में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। विभिन्न विचारधाराओं के 38 लोगों के लेखों व अन्य दस्तावेजों के माध्यम से उन्होंने अंकों का संयोजन किया। आज भी संघ के बारे में बाहरी लोगों की धारणा पर यह सर्वाधिक पसंद किया जाने वाला संकलन है। संघ व उसकी विचारधारा पर शोध करने वालों के लिए सचमुच यह महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

संपादक के नाते मलकानी जी ने *मंथन* में जिन विषयों को चुना उनकी विविधता की बानगी देखिए ..... हिंदू अर्थशास्त्र की मेटा थ्योरी। क्या मार्क्स और एनजिल्स नस्लवादी थे। रेड इंडियंस ने दुनिया के लिए क्या किया, और श्वेत लोगों ने उनके साथ क्या व्यवहार किया। भारत की राष्ट्रीय एकता में आध्यात्म की भूमिका पर उन्होंने *मंथन* में बहुत शोधपरक निबंध लिखा। विदेश मामलों में उनकी विशेष रूचि थी। चीन की मंशाओं को वे बहुत शुरु में ही भांप गए थे।

गंगा की निर्मलता व अविरलता एक ऐसा विषय था जो लंबे समय से देश के लोगों को उद्वेलित किए हुए है। अक्तूबर 1985 में मलकानी जी ने अपने अग्रलेख के साथ विभिन्न विषय विशेषज्ञों के साथ इस विषय पर *मंथन* का एक बहुआयामी अंक प्रकाशित किया। अगर लेख शोधपरक थे और संदर्भों के साथ तैयार किए गए थे तो उन्हें किसी को भी उसमें स्थान देने में परहेज नहीं होता था। उनके संपादकत्व में *मंथन* में ऐसे बहुत से लेख छपे जो विदेशियों ने लिखे। विषयों की विविधता में *मंथन* ने ढेरों प्रतिमान स्थापित किए। शिक्षा तो एक मूल तत्व है। लेकिन उसके भीतर गहराई तक जाना और प्राचीन व अर्वाचीन दोनों पक्षों पर एक ही मंच पर शोधपूर्ण विचार *मंथन* में ही संभव था। वरना तो सतही बहस तो आज भी सुनने को मिल जाती है। अर्थशास्त्र के स्थूल व सूक्ष्म पक्षों के साथ-साथ पंचवर्षीय योजनाओं का वस्तुपरक विश्लेषण मलकानी जी के कार्यकाल में *मंथन* का वैशिष्ट्य रहा।

फार्म-4

'मंथन' के स्वामित्व तथा अन्य ब्यौरे

प्रकाशन स्थान	:	नई दिल्ली
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
मुद्रक	:	ओसियन ट्रेडिंग को.
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शाहदरा, दिल्ली
प्रकाशक एवं स्वामी	:	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा एवं एकात्म मानवदर्शन अनुसंधाान एवं विकास प्रतिष्ठान
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
संपादक	:	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

मैं डॉ. महेश चन्द्र शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिक से अधिक जानकारी और मेरे विश्वास में ठीक है।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
प्रकाशक

तिथि: 1 मार्च, 2023

के.आर. मलकानी

सांप्रदायिक समन्वय कठिनाइयाँ और उनके हल

सांप्रदायिकता आज भी भारत की एक बड़ी समस्या है और यह समस्या बहुत लंबे समय से चली आ रही है। इस समस्या का एक शोधपरक विवेचन, समाधान की एक ठोस योजना के साथ

भारत में लंबे समय से सांप्रदायिक/धार्मिक समस्या रही है तथा इसके और भी आगे बढ़ने का खतरा है। एक समय पर यह लगा था कि विभाजन से समस्या सुलझ जाएगी, परंतु ऐसा नहीं हुआ। इसके विपरीत विभाजन से यह समस्या न केवल दोगुनी हो गई, बल्कि उलझ भी गई। पहले जिसे हिंदू-मुस्लिम मामला कहा जाता था, अब वह भारत-पाक मामला भी बन गया है।

इस समस्या से न केवल सामाजिक तनाव तथा हिंसा पैदा होती है, बल्कि देश की उन्नति में अवरोध भी आता है। यह समस्या निश्चित ही सुलझनी चाहिए। हम इसे अपने और अन्य देशों के ऐतिहासिक अनुभव के प्रकाश में सुलझा सकते हैं। समस्या के उचित हल के लिए सबसे पहले आवश्यक है कि इसकी प्रकृति का विश्लेषण किया जाए; चाहे, वह धार्मिक हो या राजनीतिक अथवा अन्य।

ये समाधान सद्भाव और आपसी समझ से प्रेरित होने चाहिए। गांधीजी ने इस विधि को अपनाया था, परंतु तीसरी पार्टी (अंग्रेजों) का कुचक्र जारी था, इसलिए सफलता नहीं मिली।

पहले विभाजन के लिए आंदोलन और फिर विभाजन से इतना विद्वेष और घृणा फैली कि प्रेम से समाधान के तरीकों का वर्षों से उपयोग नहीं किया जा सका। पाकिस्तान के लोगों ने भी वास्तविकता को कुछ हद तक पहचान लिया है, इस पुरानी उलझी हुई समस्या पर ठंडे दिमाग से विचार करने और एक न्यायपूर्ण व स्थायी हल खोजने का यह एक बहुत ही उपयुक्त समय है।

मत-मतांतरों से संबंधित व्यक्ति विकास कार्यों में भाग लेते हों अथवा न लेते हों, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस समस्या को स्पष्ट रूप से समझने व बुद्धिमत्तापूर्वक हाथ में लेने से एक ऐसा मित्रतापूर्ण राष्ट्रीय वातावरण बन जाएगा, जिसमें देश बड़ी तेजी के साथ बहुआयामी उन्नति कर सकेगा।

धर्म पर नए हमले

आधुनिक शिक्षित भारत में धर्म को हीनता की दृष्टि से देखा जाने लगा है। यह समझा जाता है कि धर्म, अंधविश्वास और पुरातनपंथी दृष्टिकोण का ही नाम है। जितने भी नए व पुराने राजनीतिक फसाद धर्म के नाम पर हुए, वे राजनीति के खाते में न डालकर धर्म के खाते में डाल दिए गए हैं। इस हास्यास्पद मंच पर सेकुलरवाद को सरकारी भारत का नया धर्म घोषित कर दिया गया है, वहीं धर्म को बुराई समझकर एक कोने में धकेल दिया गया है। यदि धर्मनिरपेक्षता का अर्थ सभी के लिए न्याय, धर्म तथा मत के आधार पर भेदभावरहित व्यवहार आदि हो तो इससे किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, परंतु धर्मनिरपेक्षता को धर्म का विकल्प अथवा सांप्रदायिकता पर परदा डालने वाला मान लेने से तो धर्म और धर्मनिरपेक्षता दोनों के स्वभाव, कार्य तथा कार्यक्षेत्र समझने में भ्रांति पैदा हो जाएगी।

सरकारी स्तर पर धर्म की हँसी उड़ाने के पीछे भारत व यूरोप का इतिहास भी एक कारण है। यूरोप के राजनीतिक मामलों में पोप की प्रमुखता स्थानीय राजकुमार बड़ी ईर्ष्या से देखा करते थे। उन्हें लगता था, मानो रोमन साम्राज्य का युवराज व उत्तराधिकारी वही हैं। नगर व्यापारी भी चर्च द्वारा आरोपित विभिन्न धर्मशुल्कों के प्रति रोषपूर्ण रवैया रखते थे। परिणामतः चर्च की सत्ता सीमित करने व सुधार लाने के लिए ये दोनों वर्ग मार्टिन लूथर के नेतृत्व में एकजुट हो गए। इस प्रक्रिया में धर्म को चुनौती दी गई व उसकी धज्जियाँ उड़ाई गईं। चर्च की सत्ता को यह आक्षेपपूर्ण चुनौती

यद्यपि भारत के परिप्रेक्ष्य में सुसंगत नहीं थी, परंतु शिक्षित भारत में इसे भावहीनता के साथ ग्रहण कर लिया गया। यहाँ हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों ही रोमन कैथोलिक चर्च की तरह संगठित नहीं थे। भारत में अत्याचारों की शुरुआत निरंकुश शासकों से हुई (वे मौका देखकर धर्म का मिथ्या प्रयोग करने से नहीं चूकते थे), न कि हिंदू धर्म अथवा इस्लाम के निरंकुश मुखियाओं से। दोनों ही धर्मों में सामान्यत: सर्वोच्च पद की व्यवस्था नहीं थी। भारतीय इस्लाम में मौलवी व मौलाना तो थे, परंतु खलीफा नहीं थे तथा तुर्की का खलीफा भी केवल तुर्की का ही सुल्तान था-अन्य मुस्लिम देशों के लिए उसकी कोई राजनीतिक भूमिका नहीं थी-मुस्लिम जगत् में भी उसकी धार्मिक भूमिका नाम मात्र की थी। 'मुस्लिम' विजेताओं की लहर में खलीफाओं को धराशायी होते देर नहीं लगी। इसी प्रकार हिंदुओं में शंकराचार्य आदि शुद्ध धार्मिक उच्चपदासीन मार्गदर्शक थे। सार्वजनिक व राजनीतिक जीवन में उनका कोई हस्तक्षेप नहीं था।

पश्चिम में चर्च ने इस बात पर दबाव डाला कि विज्ञान वाले कोई ऐसा काम व बात नहीं करेंगे, जिससे धर्मशास्त्र की प्राथमिकता पर उँगली उठे। इससे लोगों की नजरों में धर्म और गिर गया। (संयुक्त राज्य अमेरिका की बाइबल-पट्टी में इस समय तक भी या तो डार्विन का विकासवादी सिद्धांत पढ़ाया ही नहीं जाता है अथवा बाइबल में एडम व ईव द्वारा उत्पन्न मानव की कथा के साथ पढ़ाया जाता है) चर्च ने कहा कि सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ घूमता है, जब वैज्ञानिकों ने कहा कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है तो वे विधर्मी कहलाए, अत: धर्म न्यायाधिकरण के अनुसार मृत्युदंड के पात्र हो गए। चर्च ने धर्म को विज्ञान के सम्मुख खड़ा करने से इसे विकासशील व महान् वैज्ञानिक समुदाय की दृष्टि में उपहास योग्य बना दिया।

भारत में ऐसी स्थिति नहीं थी। हिंदू धर्म विज्ञान को साथ लेकर चला। विज्ञान ने हिंदू विश्वासों व धारणाओं का अनुमोदन किया। मुसलमानों के लिए भी विज्ञान व धर्म में कभी आपसी विरोध की समस्या खड़ी नहीं हुई। वास्तव में सीरिया से स्पेन तक मुस्लिम देशों में शताब्दियों तक विज्ञान फलता-फूलता रहा, परंतु जड़विहीन भारतीय बुद्धिवादियों ने पश्चिम की धर्म की वैज्ञानिक आलोचना को आँख मूँदकर अपना लिया और उसे भारत के धार्मिक समुदायों पर लागू कर दिया। रही-सही कमी को पूरा किया हिंदू धर्म पर किए गए मिशनरी प्रहार ने। शासक का धर्म उसकी प्रजा की दृष्टि में विशेष सम्मान प्राप्त कर लेता है। उन्हीं आधारहीन बुद्धिवादियों ने हिंदूधर्म के संबंध में की गई मिशनरी आलोचना को कुल मिलाकर सही मान लिया और स्वीकृत कर लिया। तभी तो ब्रह्मसमाज के केशवचंद्र सेन को कहना पड़ा- "दूल्हा (ईसा) आ रहा है।" चीन में सन यात्-सेन तथा च्यांग काई-शेक ने तो ईसाई धर्म का वरण तक कर लिया।

चूँकि हिंदू धर्म, धार्मिक विचार की स्वतंत्रता को मान्यता देता है, इसलिए विदेशी मिशनरियों के लिए इस धर्म पर प्रहार करना आसान हो गया। इस्लाम पर प्रहार करने की उनकी हिम्मत नहीं हुई, क्योंकि मुसलमानों को पक्का यकीन है कि उनका धर्म सच्चा और पूर्ण है। इस्लामी आदेशों के अनुसार अपने धर्म के आलोचक को रास्ते से हटाने में भी उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती।

कुछ हिंदुओं ने ईसाई-धर्म अपना लिया, तो कई ने अपने धर्म के प्रति सुरक्षात्मक व संकोचशील रवैया अपनाकर काम चलाया, फिर धर्म के नाम पर राजनीतिक झगड़े शुरू हो गए। राजनेता अपनी चालाकी के लिए बदनाम रहे हैं। इन सज्जन पुरुषों ने झगड़ों को ऐसा मोड़ दिया कि ये धार्मिक कारणों से हुए नजर आने लगे न कि राजनीतिक अथवा मानव जनित सामान्य ईर्ष्या वृत्ति से। मुस्लिम शासन में भी झगड़ा अत्याचारी और उत्पीड़ित के बीच था न कि मुस्लिम पीर तथा हिंदू संत के बीच। भारत की यह असाधारण सुलभ-दार्शनिकता कबीर ने बड़े अच्छे शब्दों में पिरोई है-"कासी काबा एक है भज मन राम रहीम।" परंतु हाल ही में भारत के बँटवारे की जो माँग उठी, वह मुख्यतया अलीगढ़ के पुराने तथा नए लड़कों की ओर से उठी न कि उलेमा तथा पीरों की ओर से।

इन सब कारणों से अंग्रेजी पढ़े-लिखे 'मैकाले' के अनुयायियों की दृष्टि में धर्म एक रद्दी की टोकरी की वस्तु बन गया। परंतु धर्म इतना निरीह नहीं है कि इसे फाँसी पर चढ़ाने के लिए बदनाम किया जाए। इसके विपरीत यह दर्शन की उच्चतम अवस्था पर पहुँचता है, जब यह कहा जाता है, "ऐसे वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चांडाल में भी समभाव से देखनेवाले ही होते हैं।" (गीता-5:18)। यद्यपि अधिकांश लोग आधुनिकवादियों की छींटाकशी के मुकाबले अपने धर्म की रक्षा नहीं कर पाते, फिर भी मैकाले के अनुयायी धर्मनिरपेक्षवादियों की संतुष्टि के लिए वे अपने जीवन के लिए धर्म की महत्ता को जानते हैं। वे धर्म में विश्वास रखते हैं और धर्म उनकी रक्षा करता है। 'धर्मो रक्षति रक्षित:।' जो धर्म की रक्षा करते हैं, ध र्म उनकी रक्षा करता है।

पश्चिम में चर्च ने इस बात पर दबाव डाला कि विज्ञान वाले कोई ऐसा काम व बात नहीं करेंगे, जिससे धर्मशास्त्र की प्राथमिकता पर उँगली उठे। इससे लोगों की नजरों में धर्म और गिर गया। (संयुक्त राज्य अमेरिका की बाइबल-पट्टी में इस समय तक भी या तो डार्विन का विकासवादी सिद्धांत पढ़ाया ही नहीं जाता है अथवा बाइबल में एडम व ईव द्वारा उत्पन्न मानव की कथा के साथ पढ़ाया जाता है) चर्च ने कहा कि सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ घूमता है, जब वैज्ञानिकों ने कहा कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है तो वे विधर्मी कहलाए, अत: धर्म न्यायाधिकरण के अनुसार मृत्युदंड के पात्र हो गए

धर्म का संपूर्ण महत्त्व :

धर्म का शाब्दिक अर्थ है-'जो (सबकुछ) साथ धारण करता है', 'धृ'। इसी प्रकार लैटिन भाषा के 'रेलिगेयर' रिलीजन का अर्थ है- 'दृढ़ता से बाँधे रखना।' अत: जैसे बालक अपनी माता के साथ चिपटता है,

लोग वैसे ही धर्म को ग्रहण करते हैं। इस दशा में सेकुलरवाद के उच्च पुरोहितों को भी -लोगों के वोट लेने के लिए-धर्म की शर्तें स्वीकार करनी पड़ती हैं। यही कारण था कि जवाहरलाल नेहरू प्राय: कुंभ मेलों में देखे जाते थे, इंदिरा मंदिरों में देव-दर्शन के लिए पहुँचती थीं और राजीव एक लंबा तिलक लगवाने से नहीं चूकते थे।

हालाँकि धर्म राजनेता के अस्त्र से भी बढ़कर कुछ और है। गिब्बन यद्यपि गंभीर नहीं था, परंतु उसने स्पष्टता के साथ लिखा कि जनसाधारण के लिए सभी भगवान सत्य हैं, दर्शनशास्त्रियों के लिए भगवान असत्य हैं तथा दंडाधिकारियों के लिए सभी भगवान आवश्यक हैं। शांति व्यवस्था बनाए रखना दंडाधिकारियों की जिम्मेदारी होती है। लोग परमात्मा के डर से भी सार्वजनिक नैतिकता का पालन करते हैं, परंतु देवता इन अधिकारियों के पुलिसमैन मात्र नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि एक न्यायपूर्ण व नैतिक व्यवस्था होने के कारण धर्म सभ्यता की आत्मा है। यह मानवीय प्रसन्नता और जीवन की विलक्षणता से पैदा होता है। आधुनिक विज्ञान ने नगरों को चमका दिया है तथा विश्व के चारों ओर कई जाल बुन दिए हैं, मानव चाँद पर उतर चुका है, परंतु कोई भी विज्ञान जीवन के ज्ञात तथा अज्ञात रहस्यों की व्याख्या नहीं कर सकता। गगनमंडल उतना ही रहस्यात्मक है, जितना की मानव मस्तिष्क। धर्म उन जिज्ञासाओं को शांत करता है, जो मानव बुद्धि में उत्पन्न होती हैं-

श्री शंकराचार्य ने इसी जिज्ञासा को बड़े सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है-

"कस्त्वं कोऽहं कुतत आयात:,
का मे जननी को मे तात:।"

(अर्थात् तू कौन है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरी माता कौन है और पिता कौन हैं?)

धर्म ब्रह्मांड, ब्रह्मतत्त्व, मानव व मानवता की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है। दर्शनशास्त्रियों को यह खोजने की पूरी स्वतंत्रता है कि ईश्वर ने मानव को बनाया अथवा मानव ने ईश्वर की रचना की, परंतु वे यह भूल जाते हैं कि परमात्मा ही पिता व पुत्र, नाशकर्ता व विनाश तथा खेल व खिलाड़ी दोनों ही स्वयं है। वास्तविकता यह है कि सर्वशक्तिमान, कृपालु और दयालु परमात्मा के बिना मनुष्य खंड-खंड हो जाएगा। परमात्मा के बिना वह अपनी बुद्धि की स्थिरता को खो देगा। अंधकार से भरे हुए जंगल में, शून्य से परिपूर्ण अंतरिक्ष में तथा भटकते हुए मानव मस्तिष्क को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' तथा 'अल-रहमान अल-रहीम' के रूप में परमात्मा का विचार ही आशा और साहस का संचार करता है। उसके विश्वास से दानशीलता का व्यवहार करता हुआ मनुष्य बढ़ता है और जीवित रहता है। अंग्रेजी शब्द गॉड गोथिक 'गुथ' से बना है, जिसका संस्कृत में 'हुत' अर्थ होता है, अर्थात् वह जिसे आहुति दी जाती है। गॉड की अवधारणा के बिना सभ्यता की भी कोई अवधारणा तथा उन्नति का कोई विचार बना नहीं रह सकता है। इसीलिए वॉल्टेयर ने चुटकी ली थी कि "अगर परमात्मा मौजूद नहीं है तो उसका आविष्कार करना आवश्यक है।" इसलिए धर्म उतना ही पुराना है जितना कि मनुष्य अथवा सभ्यता। यह लोगों के लिए अफीम नहीं, बल्कि अमृत है। यह जीवन का फल, पुष्प, स्वाद व सुगंध है। धर्म पर हँसनेवाले लोग अपनी हठवादिता का ही प्रदर्शन करते हैं। वे नहीं जानते हैं कि मानव विकास में धर्म की क्या भूमिका रही है।

सभी यह मानते हैं कि एक मनुष्य को तीन आर (अंग्रेजी वर्णमाला का एक अक्षर) रीडिंग (पढ़ना), राइटिंग (लिखना) तथा रिथमेटिक (अंकगणित) अवश्य सीखने चाहिए, परंतु अगर मनुष्य चौथे आर-रिलीजन की भावना से भरा हुआ न हो तो वह एक सच्चा मानव नहीं बन सकता। अरबी शब्द 'इनसान' का अर्थ है-'सभी का मित्र' (इंस अर्थात् सहानुभूति) और वेद कहता है-मित्रस्य चक्षुषा पश्येम, "(अखिल विश्व को) मित्रता की दृष्टि से देखें।"

एक सच्चा, धार्मिक व्यक्ति परमात्मा को सब जगह, सब प्राणियों, सब वस्तुओं में देखता है। एक अंग्रेजी कवि के शब्दों में, वह-

"मुखरित होता वृक्षों में,
बहते स्रोतों में ग्रंथ है।"
"पत्थर में स्थित उपदेष्टा
व सब वस्तुओं में शिव है!"

वह जीवन को स्थिरता और पूर्णता से देखता है। उसका जीवन के प्रति समग्र व सर्वांगीण दृष्टिकोण होता है। धर्म का अनुसरण करनेवाला व्यक्ति स्वयं भी शांत रहता है और विश्व के साथ भी शांति स्थापित करता है।

ईरान के मनस्वी हफीज ने युगों पहले कहा था-

"श्री हफीज अगर तुम परमात्मा के साथ एक होना चाहते हो तो ऊँचे व नीचे एक तथा सभी के साथ मित्रता रखो, मुसलमान से अल्लाह-अल्लाह व ब्राह्मण, अर्थात् हिंदू से राम-राम कहकर मिलो।"

सभी धर्मों की आवश्यक एकता

हिंदुओं की यह सामान्य धारणा रही है कि इस्लाम कोई धर्म विशेष नहीं है, यही बात मुसलमान हिंदू धर्म के बारे में कहते रहते हैं, परंतु ये दोनों धारणाएँ बिल्कुल भी सत्य नहीं हैं। गीता के अनुसार-

"अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थित:।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च "

(हे अर्जुन! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबकी आत्मा हूँ तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूँ।)

इसी प्रकार कुरान भी कहता है-वह ही आदि तथा वह ही अंत है, वह ही बाहर व भीतर भी स्थित है, प्रकट तथा अप्रकट, स्वामी, रक्षक व सर्वज्ञ भी। इस्लाम ही एक मात्र ऐसा मजहब नहीं है, जिसमें (अल्लाह/परमात्मा) को एक बताया गया हो। वेद कहता है-'एकोऽयं द्वितीयो नास्ति।' अल्लाह सिर्फ मुसलमानों (रब-उल-मुसलमीन) का ही परमपिता नहीं; वह रब-उल-अलीमीन, सभी मनुष्यों का परमात्मा है।

मुहम्मद ने कहा, "सभी प्राणी भगवान का परिवार हैं और जो अपने परिवार का सबसे अधिक हित करता है, वही उसको सर्वाधिक प्यारा है।"

हिंदू ही अकेले नहीं हैं, जो परमात्मा की प्राप्ति के अनेक मार्ग बताते हैं। हदीस में इस्लाम के पैगंबर कहते हैं-

"परमात्मा की प्राप्ति के उतने ही मार्ग हैं, जितनी आत्माएँ; उतने ही जितने कि आदम के बेटे की साँसें।"

कुरान में यह भी बताया गया है, "धर्म के मामले में कोई जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। आपके लिए आपका विश्वास मुबारक है; मेरे लिये मेरा विश्वास।"

कुरान व्याख्या करती है,

"हमने प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा तक

पहुँचने के लिए एक विधि व एक मार्ग बताया है। अगर परमात्मा चाहता तो वह तुम सब को एक व्यक्ति बना देता। परंतु उसने ऐसा नहीं किया। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उसके लिये निर्धारित मार्ग द्वारा अच्छे कर्म करने दो। किसी को भी दूसरे व्यक्ति की हँसी न उड़ाने दो; हो सकता है, वह उनसे अच्छा हो।"

दूसरे शब्दों में कुरान के अनुसार परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य अथवा राष्ट्र को उसके लिए विशेष रूप से उपयुक्त उसका अपना धर्म दे दिया है। कुरान कहता है-सब तुमसे सुरक्षित अनुभव करें, वही सर्वोत्तम धर्म है-उच्चतम इस्लाम। इसमें सभी तेरी जुबान और हाथों से सुरक्षित महसूस करें। लोक स्तर पर भारत में अधिकतर सूफीवाद ही इस्लाम है। ऐसे मामलों में सूफी तो अधिक स्पष्ट रहे हैं। उदाहरण के लिए रूमी की मसनवी को कुरान (अरबी) का सार उसी तरह से कहा जाता है, जैसे कि गीता को वेदों का और रूमी ने कहा, "आत्मा विवेक व ज्ञान से संबंधित है, इसे हिंदू अथवा मुस्लिम होने से क्या करना है?"

एक अन्य स्थान पर रूमी लिखता है- "मेरा परम श्रद्धेय दूसरी बार गया और लबादे को बदलकर यज्ञोपवीत डाल लाया। उसके विवेक का भंडार नब्बे वर्ष में भरा था, उसने अविश्वासियों के आगे रहस्य खोल दिया तथा बदले में उनसे विश्वास रहित विश्वास ले लिया।"

शबीस्तरी कहता है, *"अगर मुस्लिम को मूर्ति का अर्थ पता लग जाए तो मूर्तिपूजा में वह सच्चा विश्वास करेगा।"* सूफी संन्यासी की ही तरह मोक्ष की कामना करता है। वह कहता है-

"दुनियां को छोड़ो, परलोक को छोड़ो, (इष्ट) देव को छोड़ो तथा मोक्ष की कामना ही को छोड़ो, अर्थात् मोक्ष के अभिमान से ग्रसित न रहो।"

फारसी के महान् सूफी संत अत्तार का कहना है-"आस्तिक को उसके विश्वास में तथा नास्तिक को उसके अविश्वास में आनंद लेने दो। अत्तार इतना ही चाहता है कि उसे प्रभु के प्रेम के लिए दर्द की एक बूँद मिले।"

सूफी संत कहते हैं, *"अपनी आँखों, कानों, होंठों, इंद्रियों को बाहरी चीजों से हटाओ, तब परमात्मा अवश्य दीखेंगे।"*

यहाँ गीता की ही ध्वनि है, "जो पुरुष निश्चय करके अंतरात्मा में ही सुखवाला है और आत्मा में ही आराम वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञान वाला है, ऐसा वह सच्चिदानंद घन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकाकी भाव हुआ सांख्ययोगी शांत ब्रह्म को प्राप्त होता है-

योऽन्त सूखोऽन्तरा रामस्तथान्तर्ज्योति रेव यः।
सयोगी ब्रह्मनिर्वाण ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।

सूफियों की इश्कमिजाजी (लौकिक प्रेम) का इश्क हकीकी (अलौकिक प्रेम) में परिवर्तन होना हिंदू स्रोतों में भी वर्णित है, यथा-"जैसे युवती यौवन में आनंदित होती है और यौवन युवती में इसी तरह हे प्रभु, मेरी बुद्धि तुझ में आनंद अनुभव करे।"

दक्षिण के आलवर व नयनार भक्तों ने लौकिक व अलौकिक प्रेम के गीत गाये। अंडाल पाञ्चजन्य शंख से ईर्ष्या करते हैं, क्योंकि इसने श्रीकृष्ण के होंठों पर एकाधिकार किया हुआ है, गीत गोविंद लौकिक व अलौकिक प्रेम का गीत है, विद्यापति व चंडीदास जैसे भक्त सुधबुध खोकर कृष्ण से गोपियों के समान प्रेम करते थे।

वास्तव में धर्मों की इस एकता के अंतर्गत धार्मिक विचारों तथा धार्मिक संस्थाओं की ही एकता नहीं आती, बल्कि इसमें धार्मिक कहावतें व धार्मिक व्यवहार भी शामिल हैं। मैक्समूलर के अनुसार कई रोमन कैथोलिक संस्कारों का जन्म बुद्धत्व से हुआ है। हिंदुओं के विष्णु सहस्रनाम की तरह मुस्लिम खुदा के भी हजार नाम हैं।

हिंदुओं के चार वर्णों की तरह इस्लाम में भी मनुष्य चार जमातों में बँटा हुआ है। कुरान ने उनको इस प्रकार सूचीबद्ध किया है-(1) उल-उल-इल्म (विप्र), (2) उल-उल-अम्र (आदेश जारी करनेवाले, अर्थात् क्षत्रिय योद्धा), (3) जुर्रा (व्यापारी) तथा (4) मुजद-वार (मजदूर) तथा हिंदुओं के 'धर्म, अर्थ, काम' मुस्लिम के 'दीन, दौलत, दुनिया' बन गए।

यहाँ तक कि मक्का के तीर्थयात्री भी हिंदू तीर्थयात्रियों की याद कराते हैं। हाजी अपने शरीर पर एक बिना सिला कपड़ा लपेटते हैं, बार-बार स्नान करते हैं, प्रायश्चित के लिए कई शपथें लेते हैं, सिर पर उस्तरा फिरवाते हैं और काबा की परिक्रमा करते हैं। काबा यहूदियों के अब्राहम द्वारा बनाया गया था। इसका शाब्दिक अर्थ होता है 'क्यूब', जिसका अर्थ है, जो मूर्तिमान है। मुस्लिम ताबीज हिंदू का 'यंत्र' होता है। इसके अवशेष मोहनजोदड़ो में भी मिले हैं। ईसाइयों व मुसलमानों की 'आमीन' में 'ॐ' की ध्वनि गूँजती है

यहाँ तक कि मक्का के तीर्थयात्री भी हिंदू तीर्थयात्रियों की याद कराते हैं। हाजी अपने शरीर पर एक बिना सिला कपड़ा लपेटते हैं, बार-बार स्नान करते हैं, प्रायश्चित के लिए कई शपथें लेते हैं, सिर पर उस्तरा फिरवाते हैं और काबा की परिक्रमा करते हैं। काबा यहूदियों के अब्राहम द्वारा बनाया गया था। इसका शाब्दिक अर्थ होता है 'क्यूब', जिसका अर्थ है, जो मूर्तिमान है। मुस्लिम ताबीज हिंदू का 'यंत्र' होता है। इसके अवशेष मोहनजोदड़ो में भी मिले हैं। ईसाइयों व मुसलमानों की 'आमीन' में 'ॐ' की ध्वनि गूँजती है। मूर्ति के लिए बुत शब्द का प्रयोग बुद्ध मूर्तियों के प्रचलन के बाद किया जाने लगा। कश्मीरी मुसलमानों को बुत से अपने बौद्ध अतीत की याद आती है। ध्यान चीन में 'चान' व जापान में 'जेन' बन गया। फारस की खाड़ी का ही मूर्ज फारसी देवता अहूर माजदा का छोटा रूप है, जो संस्कृत के 'असुर' व 'महायोद्धा' शब्दों की याद कराता है। हिंदू ब्रह्म फारसी 'वह्म' के समान है तथा हिब्रू के यूहोवा अथवा जुहोवा फोनिशियंस का जीआओ अथवा अरबी का हेय्य अथवा याहिया तथा सामवेद के ओ हाऊ और हाऊ-हाऊ के समान है। क्रॉस को देखकर स्वास्तिक की याद आती है। सभी धर्म भगवान का नाम जपने के लिए माला का सहारा लेते हैं।

धार्मिक अंतर कैसे उत्पन्न हुए

अतः प्रश्न उठता है, जब धार्मिक विचार और व्यवहार में इतनी अधिक समानता है तो धार्मिक मतभेद और धार्मिक झगड़े क्यों होते हैं? इसका कारण यह है कि जहाँ जीवन के रहस्यों को समझने के लिए मनुष्य धर्म का सहारा लेता है, जीवन की शर्तें, समय व स्थान के अनुसार बदल जाती हैं। अतः धार्मिक कहावतें भी बदल जाती हैं। उदाहरण के लिए भारत एक आर्थिक बहुलता के इतिहास की भूमि है, जहाँ संपदा का संग्रह और कला प्रफुल्लन सदैव विकसित होता रहा है। इससे कई व्यक्तियों को चिंतन, मनन व ध्यान करने की जिज्ञासा, समय व सुविधा प्राप्त हुई है। विभिन्न प्रकार के वन और उन पर आनेवाले वसंत का यहाँ के धार्मिक चिंतन की समृद्धि पर स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। दूसरी ओर, धार्मिक चिंतन और अनुभव में हिंदू धर्म की समानता करते हुए अरब एक सीधे-सादे विश्वास को जन्म नहीं दे सका। इसका प्रमुख कारण रहा यहाँ की कमजोर अर्थव्यवस्था और मरुस्थल की भूमिका। भूमि क्षेत्रों और धन को हथियाने के बाद ही अरब कला, विज्ञान, संस्कृति आधुनिकीकरण दर्शनशास्त्र व विधिशास्त्र के विभिन्न विचारों को ग्रहण कर सके।

यूनानी साम्राज्य के विखंडित होने के बाद ही ईसाइयों का विकास हुआ। इस समय राजनीतिक व नैतिक अंतराल पैदा हो गया था। इसलिए यह जरूरी हो गया कि चर्च कुछ ऐसे कार्य करे, जो राज्य द्वारा किये जाते थे। अतः चर्च के पोप (अर्थात् पापा अथवा फादर) में यूनानी सम्राट् की चमक-दमक पैदा हो गई। मुकुट व रेशमी परिधान उसी के अंग थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास व भूगोल धर्म को इसके बीजकोष सहित रूपांतरित कर सकते हैं। धर्मों में पाई जानेवाली विभिन्नता तथा अंतर का यह एक कारण है।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। एक समाज का केवल एक धर्म ही नहीं होता, इसके रीति-रिवाज पर्व नियम तथा व्यवहार भी होते हैं। शताब्दियों से अपनाए जाने के कारण ये पुष्ट हो जाते हैं। ये समाज की जीवन प्रणाली के आवश्यक अंग बन जाते हैं, जो कि इसे बहुत प्रिय हो जाते हैं। इनमें से कुछ रीति-रिवाजों व पर्वों का आंशिक धार्मिक गौरव निर्मित हो जाता है। इसलिए कई बार यह कहना मुश्किल हो जाता है कि अमुक समाज का धर्म कहाँ थमा और रीति-रिवाज कहाँ से आरंभ हुआ। यह एक सांस्कृतिक परंपरा में विकसित होकर समाज को व्यक्तित्व व उत्तराधिकारगत पूँजी प्रदान करता है, परंतु जब दो विभिन्न प्रकार के समाज एक-दूसरे के आमने-सामने आते हैं तो वहाँ से धार्मिक संघर्ष का जन्म होता है।

मनुष्य की परिभाषा एक सामाजिक, विचारशील प्राणी, एक पाचक प्राणी तथा एक हँसमुख प्राणी कहकर की जाती है। मनुष्य को एक भ्रमणशील प्राणी भी कहा जा सकता है। मनुष्यों के झुंड शताब्दियों से खाने, सोने, व्यापार तथा शुद्ध साहसपूर्ण कार्य करने के लिए पूरी पृथ्वी पर घूमते रहे हैं। इसलिए विभिन्न समाज एक-दूसरे के सामने आए। अगर व्यापार का उद्देश्य हो तो आंतरिक क्रियाएँ शांतिपूर्ण व परस्पर सहयोग तथा लाभ देनेवाली होती हैं, परंतु जब उद्देश्य लूटना, मारना, जलाना व बलात्कार हो तो दोनों में से एक समाज का खात्मा हो सकता है। ऐसे में संघर्ष कटुतापूर्ण हो जाता है और लंबा खिंचता है।

ऐसे अनेक मामले हुए हैं, जहाँ भूखे खानाबदोश कबीलों ने स्थापित भू-भागों का सफाया कर दिया। उदाहरण के लिए, जैसे गोथ्स व वंडाल्स ने यूनान को तथा मंगोलों ने भारत, रूस व चीन को कुचल डाला।

सातवीं शताब्दी के बाद रकाब का आविष्कार हो गया था, फिर तो इन आक्रमणों के आकार व आवृत्ति में वृद्धि हो गई। अब घोड़े की पीठ पर सुरक्षित होकर बैठा जा सकता था और इस पीठ की ऊँचाई से अधिक कुशलता से लड़ा व भागा जा सकता था। रकाब के आविष्कार से पूर्व यह संभव नहीं था।

जहाँ आक्रमणकारी कबीले क्रूर थे, वहाँ विनाश ज्यादा होता था, परंतु चूँकि उनकी अपनी कोई संस्कृति नहीं थी, इसीलिए वे पराजित समाज की संस्कृति को बहुत शीघ्रता से अपना लेते थे। स्थानीय लोग विजेताओं को सांस्कृतिक व्यवहार में जीत लेते थे तथा कई बार तो विजेता उस संस्कृति के रक्षक तक बन जाते थे, जिस संस्कृति को उन्होंने ग्रहण कर लिया होता था, परंतु जहाँ आक्रणकारी कबीले अधिक निर्दयी नहीं होते थे अथवा निर्धारित विश्वासों वाला उनका अपना पालक धर्म होता था। तो वहाँ आपसी लेन-देन समान हो जाता था अथवा बड़ा कठिन होता था। जहाँ प्रत्येक समाज स्वयं में या अपनी संस्कृति में गर्व रखता हो तो संघर्षशील समाजों में सांस्कृतिक झगड़े उत्पन्न हो जाते हैं। ये झगड़े मूल रूप से आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक व धार्मिक वहीं तक होते हैं, जहाँ धर्म उनकी राजनीति का एक भाग हो। हितों के टकराव में अधिक-से-अधिक व्यक्तियों का गंभीरता के साथ प्रयोग करने के लिए आर्थिक, राजनीतिक अथवा सामाजिक मामलों को न उठाकर वास्तव में धार्मिक कारकों को उभारा जाता है।

उदाहरण के लिए, जिस कथित सलीब पर ईसा को लटकाया गया था, उसे अरब भूमि से वापस लेने के लिए धर्मयुद्धों का आह्वान किया गया। क्रू सारोपण और धर्मयुद्ध के बीच हजार वर्षों से भी अधिक का अंतर था। क्या लकड़ी का सलीब इतने वर्ष तक सुरक्षित रहा होगा? धर्मयुद्ध का वास्तविक उद्देश्य समृद्ध पश्चिमी एशिया की भूमियों

जहाँ आक्रमणकारी कबीले क्रूर थे, वहाँ विनाश ज्यादा होता था, परंतु चूँकि उनकी अपनी कोई संस्कृति नहीं थी, इसीलिए वे पराजित समाज की संस्कृति को बहुत शीघ्रता से अपना लेते थे। स्थानीय लोग विजेताओं को सांस्कृतिक व्यवहार में जीत लेते थे तथा कई बार तो विजेता उस संस्कृति के रक्षक तक बन जाते थे, जिस संस्कृति को उन्होंने ग्रहण कर लिया होता था। परंतु जहाँ आक्रणकारी कबीले अधिक निर्दयी नहीं होते थे अथवा निर्धारित विश्वासों वाला उनका अपना पालक धर्म होता था। तो वहाँ आपसी लेन-देन समान हो जाता था अथवा बड़ा कठिन होता था

को लूटना तथा पश्चिमी यूरोप की फालतू आबादी को सीरिया, फिलीस्तीन व लेबनान के उपजाऊ शिखरों पर बसाना था। एक धर्मयुद्ध तो केवल बालकों द्वारा संचालित किया गया। पोप ने उन्हें कहा कि वे अपने लिये खाना और भूमि की तलाश करें। यह एक समृद्ध स्थान रहने व आश्रय के लिए ईसामसीह के नाम पर एक सामान्य पुकार थी।

भारत पर आक्रमण करने से पहले तैमूर ने अपने सेनापतियों की एक बैठक बुलाई, उनको बताया कि भारत व चीन दोनों नास्तिक 'काफिर' हैं तथा उनसे पूछा गया कि किस देश पर आक्रमण करना चाहिए। उसके बाद न किसी ने धर्म अथवा कुफ्र का नाम लिया और न किसी ने चीन का उल्लेख किया। एक के बाद दूसरे वक्ता ने बताया कि भारत में इतनी बड़ी-बड़ी नदियाँ है, जिन्हें बाँधा नहीं जा सकता, इसके जंगल सिंहों से भरपूर हैं, इसके सिपाही बहादुर व इसके हाथी घोड़ा और घुड़सवार दोनों को ही उठाकर दूर फेंक देनेवाले हैं। इतना सबकुछ कह चुकने के बाद भी वे सब भारत पर आक्रमण करना चाहते थे। राजकुमार सुल्तान अहमद ने इसका कारण बताया है-"पूरा भारत देश स्वर्ण और रत्नों-कपड़ा निर्मित करने वाले तथा सुगंधित पौधों तथा गन्ने से भरपूर है। पूरा देश ही सुहावना तथा आनंदप्रद है।" इस प्रकार लगभग एक लाख तातर (मंगोल) भूखे भेड़ियों की तरह भारत पर टूट पड़े। तैमूर ने कहा, *"मुसलमानों के लिए युद्ध में लूट-खसोट करना उतना ही उचित है, जितना कि माता का दूध।"* चूँकि यह सारी लूट-खसोट धर्म के नाम पर की गई थी, इसलिए इससे संबंधित धर्म बहुत बदनाम हुआ। भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमण के गवाह अल-बरूनी ने उस समय लिखा कि महमूद ने देश की समृद्धि को पूरी तरह नष्ट कर दिया तथा आश्चर्यजनक कारनामों से हिंदुओं को ऐसे बिखेर दिया, जैसे मिट्टी के कण बिखर जाते हैं। उसके कारनामे पौराणिक गाथाओं की तरह लोगों की जबान पर चढ़ गए। विस्तारित खँडहरों के अवशेषों ने सभी मुस्लिमों के प्रति चिरकालिक विमुखता पोषित करने में मदद दी।

लोगों में विभाजन का कारण

भारत को इस्लाम से ऐतराज नहीं था। शिवाजी के समकालीन संत तुकाराम ने यहाँ तक कहा, "सबसे पहले अल्लाह का नाम लेना मत भूलो।" हिंदुत्व अपनी परिभाषा के द्वारा ही सब धार्मिक व्यवहारों व विचारों को वैधानिक मानता है। गालिब ने कहा है, "ऐसी आजादी और कहाँ मिलेगी कि 'मैं खुदा हूँ कहो, परंतु मौत की सजा न मिले।"

भारत धर्म के नाम पर लूट-खसोट को स्वीकार नहीं कर सकता, अत: जब आक्रमणकारियों ने इस्लाम के नाम पर आक्रमण किया तो उन्होंने भारत में इस्लाम को बदनाम कर दिया। धर्मांतरित व्यक्तियों को अरबों ने 'मवाली', अर्थात् एजेंट या मुवक्किल कहना शुरू कर दिया तथा हिंदुओं ने भी उन्हें देशद्रोही समझना आरंभ कर दिया।

मोहम्मद गोरी के आने से पहले भारत में, विशेषकर दिल्ली में ही हजारों मुसलमान शांतिपूर्वक रहते थे। इनमें गोरी का भाई हुसैन शाह भी शामिल था। स्थानीय हिंदुओं को इन मुसलमानों से कोई शिकायत नहीं थी। चंदबरदाई के रासो के अनुसार वास्तव में उन्होंने हिंदुओं का साथ दिया और उनमें से कई हुसैन शाह सहित पृथ्वीराज के लिए लड़ते हुए मारे गए, परंतु जैसे ही आक्रमणकारियों ने भूमि पर कब्जा किया तथा हिंदुओं को धर्मांतरित करने के लिए तलवार, भूमि अथवा पदों का प्रयोग किया तो हिंदुओं की दृष्टि में इस्लाम के धर्म की ग्रहणता समाप्त हो गई। यह एक राजनीतिक आक्रमण का मामला बन गया।

सौभाग्य से यह कठोर स्थिति अधिक समय तक जारी नहीं रह सकी। मुसलमानों के कबीलों व वंशों के बीच आपसी लड़ाइयाँ शुरू हो गईं। वे हिंदू राजाओं से मित्रता करने के लिए एक-दूसरे से होड़ करने लगे। हुमायूँ कबीर के अनुसार मुस्लिमों के बीच आपसी लड़ाइयाँ, हिंदू व मुस्लिमों के बीच हुई लड़ाइयों की तुलना में ज्यादा हैं।

इसके अतिरिक्त यद्यपि इस्लाम ने शुरुआत एकाधिकार प्रवृत्ति से की, परंतु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं बनी रह सकी। मानव मस्तिष्क में कोई ऐसी वस्तु है, जो नीरस तथा निर्जीव समानता को स्वीकार नहीं करती। यह सही है कि हिंदुओं में संप्रदाय तथा उप-संप्रदाय होते हैं। मुस्लिम मिल्लत ने भी अपने आपको न केवल शिया व सुन्नियों में, बल्कि लगभग आधा दर्जन विधि प्रणालियों वाले 84 फिरकों में विभक्त कर लिया। ईसाई न केवल रोमन कैथोलिक, आर्थोडॉक्स ग्रीक चर्च; कोप्टिक ईसाई तथा सीरियन ईसाई में, बल्कि विभिन्न किस्मों के प्रोटेस्टेंट संप्रदायों में बँट गए। ये प्रेबीटेरयंस तथा एपिस्कोपालियंस से जिहोवाज, विटनेसिस तथा सेवंथ डे एडवेंटिस्ट्स तक अनेक श्रेणियों में विभक्त हो गए। यहाँ तक कि कम संख्या वाला सिख समुदाय भी नामधारी और निरंकारी, निर्मल और उदासीन, मजहबी और निहंग, राधास्वामी व सिंधी सिखों में विभाजित हो गया।

मुगलों ने दक्कन के बहमनी राजशाही पर न केवल इसलिए आक्रमण किया कि पूरे भारत पर दिल्ली की सर्वोच्च सत्ता थी, बल्कि इसलिए भी किया कि वहाँ शिया हुकूमत थी। इसके बदले बहमनी सल्तनत ने साथी शिया देश ईरान के साथ मित्रता कर ली, जिसने बदले में भारत के लिए केंद्रीय एशिया के द्वार कंधार पर, मुगलों के नियंत्रण को चुनौती दी। दिल्ली-दक्कनी सुन्नी-शिया झगड़े का ही यह परिणाम था कि शिवाजी के नेतृत्व में मराठों का उदय हो गया। इसी तरह पंजाब में मराठा-अब्दाली संघर्ष हुआ, जिसके परिमाणस्वरूप दोनों ही कमजोर हुए और सिखों को उभरने का मौका मिला। नादिरशाह ने दिल्ली को लूटा और सिखों ने नादिरशाह को। (वे तख्त-ए-ताउस को इसलिए नहीं ले सके, क्योंकि उसकी रक्षा बड़ी मुस्तैदी से की गई थी) 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु, 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई तथा 1857 ई. की क्रांति के मध्य की अवधि में इन क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं तथा आंतरिक क्रियाओं ने एक ऐसे समरूप भारतीय समाज को जन्म दिया, जिसमें उभरते हुए तत्त्व हिंदू समाज को प्रभावित कर रहे थे और ये तत्त्व अपनी विदेशी पहचान को खोकर प्रक्रिया में भारतीय हो गए थे।

यह क्रमिक एकरूपता अनेक कारणों से या तो रुक गई अथवा आंशिक पलटा खा गई। 1857 ई. की हिंदू-मुस्लिम संयुक्त काररवाई ने अंग्रेजों को प्रेरित किया कि वे 'फूट डालो और शासन करो' की नीति आरंभ करें। सेना में हिंदू-मुस्लिम पृथक् इकाइयों से आरंभ करके पृथक् मतदाता व

महत्त्व तथा आरक्षण तक और विश्व के मुसलमानों तथा खिलाफतवादियों के सहयोग से इसकी परिणति देश के बँटवारे के रूप में हुई। दूसरी ओर मिशनरी अनुवाद, अध्ययनों तथा हिंदूशास्त्रों के पुनः प्रवर्तन से हिंदुओं को इस्लाम पूर्व इतिहास के प्रति गौरव वापस मिल गया।

भारतीय जनजीवन की शताब्दियों पुरानी जिस एकता को 1857 ई. में काम में लाया गया था, वह अब पश्चिमीकरण की आँधी से स्थानापन्न कर दी गई है। मौजूदा शताब्दी के आरंभ में जिस अरबी-फारसी को हिंदू पढ़ा करते थे, अब उसे मुसलमानों ने भी पढ़ना छोड़ दिया है। हालात इतने बदल चुके हैं कि कुछ समय पूर्व तक मुसलमान होली, रक्षाबंधन तथा दीपावली पर्वों में भाग लिया करते थे, परंतु आधुनिक कट्टरवादियों के प्रभाव से अब वे इन पर्वों से पीछे हट गए हैं। क्षेत्रीय भाषाओं व संस्कृति तथा अंग्रेजी भाषा व पश्चिमी संस्कृति द्वारा पोषित समानताओं के बावजूद दोनों धार्मिक समाजों के विशेष गुण उस हालत में भी अलग से दिखाई देते हैं।

क्षेत्रीय संस्कृति एक क्षेत्र के सभी लोगों को अंशतः एकता के सूत्र में पिरो देती है, परंतु यहाँ भी धार्मिक मतभेद आड़े आ रहे हैं। सामान्यतः पश्चिमीकरण न पर्याप्त है और न ही एक ग्राह्य एकता प्रदान करनेवाला; लोगों को आंशिक रूप से एकबद्ध करने के लिए यह एक आंशिक कारक हो सकता है। पश्चिमीकरण उनके सांस्कृतिक मतभेदों को समीकृत न करके उनसे कन्नी काट जाता है। इसलिए मूल प्रश्न यह है कि सभी के लिए धार्मिक स्वतंत्रता तथा देश के लिए सांस्कृतिक एकता अथवा सद्भाव कैसे आश्वस्त किया जाए, ताकि सभी लोग शांति और सद्भाव में जी सकें और देश उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके?

भारत ने सदैव ही धार्मिक स्वतंत्रता के सिद्धांत में विश्वास किया है और उसके अनुसार काम किया है। इस स्वतंत्रता को न केवल मान्यता, बल्कि सम्मान भी मिलना चाहिए। इस्लाम खुदा की एकता और मोहम्मद साहब की पैगंबरता में विश्वास करता है। यह विश्वास नमाज, रोजा, जकात तथा हज से अनुमोदित है। मुसलमानों को पूरी छूट होनी चाहिए कि वे अपने धर्म के अनुसार व्यवहार करें। चीनी परंपरा में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के धर्म की प्रशंसा करता है।

किसी को भी मोहम्मद अथवा उनके अनेक विवाहों के प्रति छींटाकशी नहीं करनी चाहिए। प्रसंगवश शिवाजी के लगभग सात रानियाँ थीं। किसी समय मोहम्मद की भी इतनी बीवियाँ रही होंगी। हिंदुओं के लिए मोहम्मद कोई धार्मिक अवतार नहीं हैं, परंतु हिंदू उनको अपने लोगों में एकता पैदा करनेवाला व मुक्ति दिलानेवाला समझकर नेपोलियन अथवा अरब के लेनिन की तरह महान् मानते हुए मान्यता व सम्मान दे सकते हैं। राम और कृष्ण मुसलमानों के धार्मिक नेता नहीं हैं, परंतु निस्संदेह वे पूरे भारत के दिव्य नायक हैं। यहाँ तक कि इंडोनेशिया के लोग भी राम को प्रथम श्रेणी का नायक समझते हैं

किसी को भी अन्य के किसी धार्मिक पहलू की न हँसी उड़ानी चाहिए और न ही उसके प्रति अपशब्दों का प्रयोग करना चाहिए। न ही हिंदू व मुसलमानों को एक-दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयत्न करने चाहिए। कुछ मुसलमान हिंदुओं को 'काफिर' अथवा 'बनिया' कहकर संबोधित करते हैं। इसी प्रकार मुसलमानों को हरियाणा में 'गड़िया', महाराष्ट्र में 'लौंडिया', बंगाल में 'नीरे' तथा सिंधी में 'झट' आदि कहकर चिढ़ाया जाता है। इस तरह का घटिया अड़ियलपन अवश्य बंद होना चाहिए।

किसी को भी मोहम्मद अथवा उनके अनेक विवाहों के प्रति छींटाकशी नहीं करनी चाहिए। प्रसंगवश शिवाजी के लगभग सात रानियाँ थीं। किसी समय मोहम्मद की भी इतनी बीवियाँ रही होंगी। हिंदुओं के लिए मोहम्मद कोई धार्मिक अवतार नहीं हैं, परंतु हिंदू उनको अपने लोगों में एकता पैदा करनेवाला व मुक्ति दिलानेवाला समझकर नेपोलियन अथवा अरब के लेनिन की तरह महान् मानते हुए मान्यता व सम्मान दे सकते हैं। राम और कृष्ण मुसलमानों के धार्मिक नेता नहीं हैं, परंतु निस्संदेह वे पूरे भारत के दिव्य नायक हैं। यहाँ तक कि इंडोनेशिया के लोग भी राम को प्रथम श्रेणी का नायक समझते हैं। अनेक मुसलमानों ने कृष्ण लीला पर अपनी कलम व कूची चलाई है। मुस्लिम संगीताचार्य कृष्ण का यशोगान करते रहे हैं। सौभाग्य से दूरदर्शन पर दिखाई गई रामायण की शृंखला से राम का परिचय गैर-हिंदुओं से भी हुआ और वे सभी के दिल व दिमाग पर छा गए, अगर मुस्लिम व ईसाई पसंद करें तो मुस्लिम व ईसाई कथानकों पर भी दूरदर्शन की कड़ियाँ दिखाई जा सकती हैं। उदाहरण के लिए हिंदू व मुसलमान दोनों के ज्ञानवर्धन व प्रसन्नता के लिए भारतीय दूरदर्शन पर हजयात्रा की फिल्म दिखाई जा सकती है।

विभिन्न रीति-रिवाजों का सामंजस्य

यह सब विवेकपूर्ण रहेगा। समस्या उन रीति-रिवाजों व व्यवहारों के बारे में पैदा होती है, जिनका धर्म से कोई लेना-देना नहीं और जो वास्तव में धार्मिक न होकर धार्मिक होने की तरह लगते हैं। एक राज्य की एकता और अखंडता के लिए एक विशेष प्रकार की सांस्कृतिक एकता अनिवार्य है, इसलिए समन्वय और सामंजस्य की बहुत आवश्यकता है। विभिन्नताओं को सहने के लिए प्रत्येक राज्य की शक्ति अलग-अलग होती है। अगर किसी राज्य में विभिन्नताएँ इतनी अधिक हैं कि उनसे विभाजन, झगड़े व हिंसा पैदा होती है तो कभी-न-कभी सहनशक्ति की सीमा पार हो जाएगी और देश टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। इसलिए इस सीमा का कभी उल्लंघन नहीं होने देना चाहिए।

कई मुसलमान मुसलमान-आक्रमणकारियों व आतताइयों को इस्लाम का संवाहक समझकर स्वागतयोग्य समझते हैं। निस्संदेह इनमें से कइयों ने तलवार के द्वारा इस्लाम फैलाया, परंतु यह काम न केवल गैर-इस्लामी था, बल्कि इससे इस्लाम की भी बदनामी हुई। भारतीय मुसलमानों को चाहिए कि वे अपने आपको मोहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मोहम्मद गोरी, अलाउद्दीन खिलजी तथा औरंगजेब की यादों से अलग रखें। उन्हें

उन ऐतिहासिक मंदिरों, जिन्हें इन धर्मांध आततायियों ने बलपूर्वक तथा गैर-इस्लामी तरीके से मस्जिदों में परिवर्तित किया था, को हिंदुओं को लौटाने में जरा भी संकोच नहीं करना चाहिए। इस प्रतीकात्मक सहयोग से हिंदू-मुस्लिम एकता पर मुहर लगेगी और राष्ट्रीय समन्वय पुष्ट होगा। सौ वर्ष पूर्व अंग्रेजों ने गजनी की जामा मस्जिद के सजावटी दरवाजों को उतारा और यह कहकर भारत ले आए कि ये वही दरवाजे हैं, जो सोमनाथ मंदिर में लगे हुए थे। हिंदू इन दरवाजों को विजय चिह्न के रूप में सही, स्वीकार कर सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। दरवाजों का परीक्षण किया गया और यह कहकर कि ये दरवाजे सोमनाथ के नहीं हो सकते, गजनी को लौटा दिए गए। सन् 1857 के बाद अंग्रेजों ने दिल्ली की जामा मस्जिद को एक अस्तबल में बदल दिया था। उस समय हिंदुओं ने तत्कालीन अंग्रेजी कमान अधिकारी को विरोध प्रकट किया और मुसलमानों को मस्जिद वापिस कराई। सच्चाई पवित्र होती है। ऐतिहासिक सत्यता और ऐतिहासिक न्याय दोनों गुटों में न्यायपूर्ण शांति के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इस मामले में सिंधी मुसलमानों ने एक श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने मोहम्मद बिन कासिम को खलनायक और उसके द्वारा उत्पीड़ित राजा दाहिर सेन को नायक घोषित कर दिया। सभी भारतीयों-हिंदुओं, मुसलमानों व ईसाइयों को चाहिए कि वे दाहिर सेन, अनंगपाल और पृथ्वीराज को राष्ट्रीय नायक घोषित करें, क्योंकि ये विदेशी आक्रमण के विरुद्ध अपने देश की रक्षा करते हुए मारे गए।

परंतु इसके साथ-साथ एक औसत हिंदू को अपने दिमाग से यह विचार भी निकाल देना चाहिए कि मुसलमानों को राष्ट्रीय नायक घोषित नहीं किया जा सकता। कुछ तो अकबर पर ही एतराज उठाते हैं। वे आरोप लगाते हैं कि उसने एक हिंदू को अपनी बीवी बनाया। उनको मालूम नहीं है कि यह प्रस्ताव अकबर का नहीं, बल्कि जोधाबाई के पिता राजा भारमल का था। उनको यह भी मालूम नहीं था कि जोधाबाई आजीवन मुगल महलों में हिंदू रीति-रिवाजों के साथ रहीं, मुगलों ने अपनी बेटियाँ राजपूतों को देने से कभी इनकार नहीं किया, बल्कि राजपूत

किसी समय तुर्की साम्राज्य के एक बड़े भाग रहे बुल्गारिया में मुस्लिम अल्पसंख्यक पर्याप्त संख्या में रहते हैं। हाल ही में फैसला किया गया कि सभी बुल्गारी बच्चों के बुल्गारी नाम हों तथा इस्लाम के नाम पर अरबी नाम न रखने दिए जाएँ। यूरोप में भी मुस्लिम बहुतायत वाला एक राज्य अल्बानिया है। यहाँ भी हाल ही में निर्णय लिया गया कि सभी अल्बानियन बच्चों के इलीरियन नाम रखे जाएँ, न कि अरबी/इस्लामी नाम

ही अनेक कारणों से उन्हें लेने से इनकार करते रहे। जब पेशवा बाजीराव एक मुस्लिम नर्तकी मस्तानी को अपनी रानी बनाकर महलों में ले गए, तो मराठा महासंघ की राजधानी पुणे में एक सामाजिक-राजनीतिक भूचाल आ गया।

अकबर के अलावा कबीर व चिश्ती जैसे संत, अबुल फजल व सफदरजंग जैसे राजनीतिज्ञ, दारा व खुसरो जैसे विद्वान्, जायसी, रहीम, बुल्ले शाह, अब्दुल लतीफ, लल्लन फकीर तथा हब्बा खातून जैसे कवि भी हैं, जिन्हें अपनाने में कोई मुश्किल नहीं होनी चाहिए। विद्यालय की पुस्तकों में इनकी गाथाएँ आ सकती हैं। इनके स्मारक के रूप में सड़कों के नाम रखे जा सकते हैं।

विदेशी लगने वाले नाम अलगाववाद को प्रोत्साहन देते हैं। (वेस्टइंडीज आदि में स्कूल में दाखिला लेने के लिए गैर-ईसाइयों को भी ईसाई नाम रखना पड़ता था।) प्रश्न है : नाम का धर्म से क्या संबंध है? इंडोनेशिया में मुसलमान भी सुकर्णो तथा सुहार्तो जैसे संस्कृत नाम रखते हैं। चीन में मुसलमानों के चीनी नाम हैं। थाईलैंड में चाहे परिवार हिंदू हो, बौद्ध, मुस्लिम अथवा ईसाई हो, नवजात शिशु का नाम उन्हीं संस्कृत नामों में से रखा जा सकता है, जो मंदिर की सूची में होते हैं। हाल ही में बैंकॉक में एक भारतीय परिवार ने अपने नवजात शिशु का नाम 'वरुण' रखा, परंतु यह नाम मंदिर की सूची में नहीं था, इसलिए थाईलैंड ने इसे मान्यता नहीं दी। जब बताया गया कि यह नया नाम भी संस्कृत का है तो इसे मंदिर सूची में शामिल करने का निर्णय लिया गया और नाम रखने की अनुमति दे दी गई।

किसी समय तुर्की साम्राज्य के एक बड़े भाग रहे बुल्गारिया में मुस्लिम अल्पसंख्यक पर्याप्त संख्या में रहते हैं। हाल ही में फैसला किया गया कि सभी बुल्गारी बच्चों के बुल्गारी नाम हों तथा इस्लाम के नाम पर अरबी नाम न रखने दिए जाएँ। यूरोप में भी मुस्लिम बहुतायत वाला एक राज्य अल्बानिया है। यहाँ भी हाल ही में निर्णय लिया गया कि सभी अल्बानियन बच्चों के इलीरियन नाम रखे जाएँ, न कि अरबी/इस्लामी नाम।

शेक्सपियर ने कविता की धुन में यथार्थ को नजरअंदाज करते हुए कहा, "नाम में क्या रखा है? एक गुलाब का कुछ भी नाम रख दिया जाए, इससे उसकी खुशबू में कोई अंतर नहीं आएगा।" परंतु वास्तविकता कुछ और ही है। नाम में इतना कुछ होता है, जितना हम अनुभव नहीं कर सकते। अपने जैसे नाम वालों से हम सहानूभूति रखते हैं, परंतु विदेशी नाम वालों से हमारी सहानुभूति कम होती है। अत: मुस्लिम भारतीयों को कम-से-कम अनिल, सुनील, अशोक, गुल, शिशिर, वसंत, अमर, आनंद, सोनू, मिट्ठू, गंगा, जमुना, सिंधु व हिंद जैसे धर्म निरपेक्ष नाम रखने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह जानकर अचंभा होगा कि मोहम्मद के अरब में महिलाओं के लिए 'हिंद' नाम बड़ा लोकप्रिय था। पैगंबर की एक पत्नी का नाम भी हिंद था।

मेरे एक मैसूर मुसलमान मित्र थे, जिनका नाम श्री मेहकरी था। वे समाजशास्त्र के विद्वान् थे। अब वे कराची में हैं और माता-पिता ने उनका नाम गुलाम मुहम्मद रख दिया है। कुछ समय बाद उन्हें पता लगा कि अरब में भी कोई अपने आपको मोहम्मद अथवा अली अथवा हुसैन का गुलाम नहीं कहता। अब उसने अपना नाम बदलकर 'गुलाब मोतिया मेहकरी' रख लिया है। अब सिंध में लड़कियों के नामों में दो नाम बड़े लोकप्रिय हैं एक 'सिंधु' दूसरा 'मारुई' ('रेगिस्तान कन्या' के लिए संस्कृत शब्द)।

सीता की तरह मारुई भी एक लोकनायिका का नाम है, जिसने अपने अपहरणकर्ता के विरुद्ध हार नहीं मानी थी। भारतीय ईसाइयों में भारतीय नाम बहुत सामान्य हैं। ये नाम भारतीय मुसलमानों द्वारा भी अपनाए जा सकते हैं। (अरब देशों में ईसाई अरब नाम रखते हैं, यूनानी नाम नहीं।)

कभी कुछ समय पूर्व तक कई हिंदू खानचंद, खुशीराम, खूबचंद तथा दौलतराम जैसे फारसी आधारित नाम रखते थे। इस व्यवहार को पुनर्जीवित किया जा सकता है और हिंदुओं द्वारा इकबाल कृष्ण, इनायत राम व कबीर जैसे अरबी मिश्रित नाम ग्रहण किए जा सकते हैं। अगर हम जैकी, टोनी तथा डॉली जैसे पश्चिमी ईसाई नाम रख सकते हैं तो कुछ सुंदर अरबी-फारसी नाम क्यों नहीं? एक प्रकार के सामान्य नाम रखने से दोनों धार्मिक समुदायों के बीच एक मजबूत मनोवैज्ञानिक सेतु का निर्माण होगा।

भारत में कुछ मुस्लिम रीति-रिवाज गैर-इस्लामी हैं। मुस्लिम शासकों ने इन्हें अपने हिंदू प्रतिवादियों का सफाया करने के लिए प्रयुक्त किया था, इसलिए ये हिंदू-विरोधी हैं। इनमें से एक गोहत्या व दूसरा मस्जिद के सामने संगीत का है। दूसरा मामला उच्चतम न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से सुलझा दिया गया है तथा कुरान के प्रशस्तिपूर्ण संदर्भों के अनुसार मुसलमानों को गौरक्षा के उपायों का विरोध नहीं करना चाहिए। कुरान के प्रशंसनीय संदर्भ के अनुसार, "गाय का गोश्त मर्ज है और उसका दूध दवा है।" किसी भी जिम्मेदार मुसलमान को व्यवसाय की स्वतंत्रता के अधिकार के नाम पर कसाइयों के मामलों की पैरवी नहीं करनी चाहिए। एक और बात, गोहत्या पर पूर्ण प्रतिबंध लग जाने के बाद भी वे अन्य पशुओं की हत्या करने के लिए स्वतंत्र रहेंगे। इसके अलावा अगर उपरोक्त अधिकार को उसके तर्कसंगत निष्कर्ष तक पहुँचाया जाए तो जमींदारी उन्मूलन भी गैर-संवैधानिक होना चाहिए, क्योंकि इससे जमींदारों को उनकी भूमि से वंचित किया गया।

हाल ही में कुछ वर्षों तक सभी लोग अपने स्थानीय सामाजिक अथवा धार्मिक रीति-रिवाजों के अनुसार पूरे मुँह पर बाल रखा करते थे। इससे उनकी पहचान बनी रहती थी। इससे विभिन्नता तो पैदा होती थी, परंतु अलगाव भी पैदा होता था। सौभाग्य से अथवा जैसे भी चिकना चेहरा अथवा छोटी-छोटी मूँछें अब सभी के लिए फैशन बन गया है। पैंट तेजी से धोती, पायजामा, लुंगी तथा सलवार का स्थान ले रही है, परंतु हिंदू अब भी सलवार को तिरछी नजरों से देखते हैं और मुसलमानों को धोती नहीं सुहाती। कुछ साड़ी को हिंदू पहनावा ही मानते हैं।

परंतु जैसा हम जानते हैं, वास्तविकता यह है कि साड़ी का चलन लगभग बीते 200 वर्ष में हुआ है। अजंता अथवा एलोरा गुफाओं के भित्ती चित्रों में साड़ी दिखाई नहीं देती। सलवार का भी ज्यादा उल्लेख नहीं होता है, यह सिली हुई धोती की तरह नजर आती है। आज देश के अधिकांश भागों में हिंदू महिलाएँ मुस्लिम सलवार-कमीज पसंद करती हैं तथा साड़ी पूरे ही हिंदुस्तान प्रायद्वीप में हिंदू, मुस्लिम व ईसाई महिलाओं में एक समान लोकप्रिय है। रोचक तथ्य यह है कि सर्वोत्तम साड़ियाँ मुस्लिम कारीगरों द्वारा तैयार की जाती हैं। कई सर्वोत्कृष्ट मंदिर भी तो मुसलमान कारीगरों द्वारा निर्मित किए गए हैं।

कई हिंदू खान शब्द को मुस्लिम समझते हैं, परंतु यह केंद्रीय एशिया का एक शब्द है, जिसे 'सरदार' की तरह मुखिया के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पठानों का पगड़ी पर गुंबद जैसा कूल्हा भी 'मुस्लिम' अथवा 'विदेशी' नहीं है। अजंता भित्तिचित्रों में एक पूजक ने इसे पहना हुआ है।

मुसलमान हरे झंडे को इस्लामिक समझते हैं और चाँद-तारा को एक इस्लामिक प्रतीक। वास्तव में साम्राज्यवादी ईरान हरे रंग का प्रयोग करता था। कई युद्धों में मोहम्मद ने विभिन्न रंग के झंडों को शामिल किया। इनमें भगवा रंग भी शामिल था, परंतु वह हरे रंग के झंडे को कभी लेकर नहीं चला। इसलिए हरे झंडे में कुछ भी इस्लामिक नहीं है। मुसलमानों व धर्मनिरपेक्षतावादियों को कांग्रेस फ्लैग कमेटी रिपोर्ट, 1934 की सिफारिश के अनुसार अतीत काल से चले आ रहे भगवा ध्वज को भारत का राष्ट्रीय ध्वज मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

इसी प्रकार बाल चंद्रमा पूरी मानवता के लिए सुंदर है। शिव की जटाओं और ओंकार के शीर्ष पर इसका स्थान सुरक्षित है। इसमें कुछ भी इस्लामिक नहीं है। यह एक सार्वभौमिक प्रतीक है और यह सभी के द्वारा खुलकर प्रयोग में लाया जाना चाहिए।

आज मुसलमान सुन्नत को इस्लामिक समझते हैं और हिंदुओं के लिए यह बीभत्स है। शारीरिक कमजोरी, विकृति और अंगछेदन को हिंदू बुरा और अशुभ मानते हैं। बलात् धर्म, परिवर्तन कराए गए लोगों को यह बहुत बुरा लगा। अतः वे हिंदू धर्म में वापस आ गए।

इस रिवाज का इतिहास भी बड़ा रोचक है। यह इस्लामिक नहीं है, बल्कि प्राचीन निदान है। अरब या यहूदी इसका प्रयोग करते थे। यह स्वच्छता की आसानी के लिए आरंभ किया गया अथवा यौन शक्ति बढ़ाने के लिए इस बारे में समाजशास्त्री एकमत नहीं हैं, परंतु ऐसा मालूम होता है कि मुस्लिम आक्रमणकारी अधिक-से-अधिक लोगों को जल्दी-से-जल्दी इस्लाम में लाना चाहते थे। चूँकि हिंदू इसे पसंद नहीं करते थे, इसलिए इस पर जोर नहीं दिया गया, परंतु जब लूट को आपस में बाँटने का समय आता था तो हिस्सा माँगनेवालों की संख्या को कम-से-कम रखने के लिए सुन्नत पर जोर दिया जाता था।

आज मुसलमान सुन्नत को इस्लामिक समझते हैं और हिंदुओं के लिए यह बीभत्स है। शारीरिक कमजोरी, विकृति और अंगछेदन को हिंदू बुरा और अशुभ मानते हैं। बलात् धर्म, परिवर्तन कराए गए लोगों को यह बहुत बुरा लगा। अतः वे हिंदू धर्म में वापस आ गए। इस रिवाज का इतिहास भी बड़ा रोचक है। यह इस्लामिक नहीं है, बल्कि प्राचीन निदान है। अरब या यहूदी इसका प्रयोग करते थे। यह स्वच्छता की आसानी के लिए आरंभ किया गया अथवा यौन शक्ति बढ़ाने के लिए इस बारे में समाजशास्त्री एकमत नहीं हैं

यह जानना और रोचक लगता है कि मुगल सम्राट् अकबर से बहादुरशाह जफर तक सभी मुगल बादशाह गैर-सुन्नत वाले मुस्लिम थे। कई बड़ी उम्र के मुसलमानों को पाकिस्तान पहुँचकर सुन्नत करानी पड़ी। दूसरी ओर पश्चिम में अब कई बालकों को सुन्नत करानी पड़ती है।

भारत सदा से ही स्वतंत्र विचारधारा, अभिव्यक्ति व जीवन पद्धति का देश रहा है। इतिहास के इस परिपेक्ष्य में हिंदू, मुसलमान व ईसाई आदि सभी के लिए यह संभव होना चाहिए कि वे एक अच्छी बुद्धि, परस्पर विश्वास और एक परमात्मा की प्रतिमूर्ति होने की भावना रखते हुए आपस में शांति और सद्भाव के साथ मिलकर रहें-

1. अंग्रेजों ने भारत का इतिहास एक साम्राज्यवादी दृष्टि से लिखा था। भारतीय लेखक भी उपकरणात्मक प्रयोग करके इसी को घसीटते रहे हैं। सबसे पहले आवश्यक है कि इस इतिहास को भारतीय दृष्टिकोण से लिखकर स्थानापन्न किया जाए। यह लोकोन्मुख होना चाहिए, न कि राजाओं पर केंद्रित। इस प्रकार का तथ्यपूर्ण व संतुलित इतिहास भारतीय लोगों के आपसी संबंधों में सामंजस्य पैदा करेगा।
2. सभी स्कूलों में नैतिक शिक्षा पर बल देते हुए महान् संतों की जीवनियों व शिक्षाओं की जानकारी दी जाए।
3. सभी नागरिकों के जीवन, अंग संपत्ति तथा सम्मान को सुरक्षित रखा जाए। सामाजिक हिंसा की घटनाओं की तुरंत जाँच की जाए, रिपोर्ट प्रकाशित की जाए, कसूरवार को दंड दिया जाए तथा पीड़ितों के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की जाए।
4. अप्रासंगिक अल्पसंख्यक आयोग के स्थान पर एक मानवाधिकार आयोग की स्थापना की जाए, जो राष्ट्रीय राज्य व जिलों स्तरों पर शिकायतों को सुने और जाति, विचार अथवा भाषा के आधार पर होनेवाले भेदभावों के विरुद्ध समुचित काररवाई करे।
5. मुसलमानों को मुगलों से भी अधिक इस्लामिक होने की जरूरत नहीं है। उन मुस्लिम शासकों की तरह इन्हें भी दशहरा, दीवाली, बसंत तथा होली पर्वों में भाग लेना चाहिए। जिस प्रकार ईसाई देशों में गैर-ईसाई क्रिसमस तथा मुस्लिम देशों में गैर-मुसलमान ईद मनाते हैं, उसी प्रकार हिंदू भूमि में गैर-हिंदुओं को हिंदू पर्व मनाने चाहिए।
6. मुसलमानों को पाकिस्तान के मुकाबले अधिक इस्लामिक होने की आवश्यकता नहीं है। अगर वे एक समान नागरिक विधि के लिए तैयार नहीं हैं तो कम-से-कम उन्हें पारिवारिक कानूनों में ऐसे संशोधनों की स्वीकृति देनी चाहिए, जैसा कि पाकिस्तान में हुआ है, उदाहरण के लिए बहुविवाह पर प्रतिबंध।
7. सभी संगठित सामूहिक धर्मांतरणों पर प्रतिबंध लगाया जाए।
8. जिस राजनीतिक दल की सदस्यता एक ही समुदाय तक सीमित हो, उस पर प्रतिबंध लगाया जाए। परंतु सभी अल्पसंख्यक हितों की रक्षा के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जाए, जैसा कि संविधान सभा के मुस्लिम सदस्यों ने माँग की थी।
9. किसी भी धार्मिक नेता अथवा संगठन को भारतीय मूल के व्यक्तियों के अलावा अन्य किसी विदेशी से राशियाँ लेने की छूट नहीं मिलनी चाहिए, जैसे भारत से बाहर काम करनेवाले धार्मिक नेता हिंदू विचारों के प्रचार के लिए भारत से धन नहीं लेते, उसी प्रकार भारत में कार्यरत मुस्लिम तथा ईसाई धार्मिक नेताओं अथवा संस्थाओं को अरब अथवा अमेरिका आदि से विदेशी धन लेने की छूट नहीं मिलनी चाहिए।
10. भारतीय संविधान को एक सच्ची संघीय भावना के साथ व्यवहार में लाना चाहिए। ऐसा होने से भारतीय संघ से बाहर, परंतु हिंदुस्तान प्रायद्वीप के भीतर के देश सम्मानजनक व स्वाधीनता की शर्तों पर भारतीय राज्य के साथ संयुक्त होने में नहीं झिझकेंगे; आखिरकार हैं तो हम सब एक ही।
11. संविधान की धारा 30 को इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए कि कोई भी 'अल्पसंख्यक' अथवा 'बहुसंख्यक' समुदाय अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्था चला सके, मगर विद्यार्थियों के दाखिले, स्टाफ की नियुक्ति तथा शिक्षा के स्तर के बारे में सामान्य नियमों के अंतर्गत कार्य करें।
12. इन सबसे अधिक हिंदू-मुस्लिम व ईसाइयों को एक-दूसरे के धर्म का आदर करना सीखना चाहिए। गांधीजी ने ठीक ही कहा था, "हिंदुत्व में जितना सम्मानित स्थान मोहम्मद, जरथ्रुस्त व मूसा के लिए है, उसी तरह स्थान ईसा के लिए है।"

अगर भारतवासी इस दिशा में कार्य करें तो इस भूमि व यहाँ के लोगों के मस्तिष्क में अधिक शांति विद्यमान रह सकती है। विश्व शांति के लिए यह एक महान् योगदान होगा। इस प्रकार के सकारात्मक राष्ट्रीय समन्वय से भारत विश्व के राष्ट्रों के बीच अग्रिम पंक्ति का देश बनकर नई विश्व व्यवस्था में कीमती योगदान कर सकता है तथा मानवीय गुणों के माध्यम से मानवता के लक्ष्य तक पहुँच सकता है। अल्पसंख्यक समस्या का न्यायपूर्ण व उचित समाधान ही वह सहारा है, जिस पर भारत तथा विश्व का भविष्य टिका है और निर्भर करता है। ईश्वर हमारी सहायता करे

अगर भारतवासी इस दिशा में कार्य करें तो इस भूमि व यहाँ के लोगों के मस्तिष्क में अधिक शांति विद्यमान रह सकती है। विश्व शांति के लिए यह एक महान् योगदान होगा। इस प्रकार के सकारात्मक राष्ट्रीय समन्वय से भारत विश्व के राष्ट्रों के बीच अग्रिम पंक्ति का देश बनकर नई विश्व व्यवस्था में कीमती योगदान कर सकता है तथा मानवीय गुणों के माध्यम से मानवता के लक्ष्य तक पहुँच सकता है। अल्पसंख्यक समस्या का न्यायपूर्ण व उचित समाधान ही वह सहारा है, जिस पर भारत तथा विश्व का भविष्य टिका है और निर्भर करता है। ईश्वर हमारी सहायता करे।

-मंथन, अगस्त 1988 (पृ. 19-24)

मध्यप्रदेश शासन

आज़ादी का अमृत महोत्सव

मध्यप्रदेश पेसा नियम

जनजातीय समुदाय को जल, जंगल, जमीन, मजदूरों, महिलाओं व संस्कृति संरक्षण के मिले अधिकार

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

मध्यप्रदेश सरकार ने दिये आर्थिक उन्नति के साथ सांस्कृतिक संरक्षण के अधिकार

अनुसूचित क्षेत्र के 89 विकासखंडों में हुए लागू

सामाजिक समरसता के साथ जनजातीय वर्ग को मिले उनके अधिकार

जमीन के अधिकार

- गांव की जमीन और वन क्षेत्र के नक्शे, खसरा बी-1 पटवारी और बीटगार्ड कराएंगे उपलब्ध, नहीं लगाने होंगे तहसील के चक्कर
- राजस्व अभिलेखों की त्रुटियों के सुधार की अनुशंसा का अधिकार
- भू-अर्जन, खनिज सर्वे, पट्टा और नीलामी हेतु ग्राम सभा की सहमति और अनुशंसा
- गलत तरीके से जमीन खरीदने/कब्जा करने पर ग्राम सभा का हस्तक्षेप, नहीं कर सकेगा कोई छल-कपट
- ग्राम सभा वापस दिलवा सकती है कब्जे वाली जमीन

जंगल के अधिकार

- लघु वनोपजों एवं तेंदूपत्ता के संग्रहण और विपणन का अधिकार, अब जनजातीय समुदाय तय करेगा अपनी लघु वनोपजों का मूल्य, मिलेगी उचित कीमत
- एक निश्चित दर से कम रेट पर नहीं बिकेगी वनोपज

मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने केसला विकासखण्ड से 89 जनजातीय विकासखण्डों में पेसा जागरूकता अभियान की शुरुआत की

पेसा नियम पर मुख्यमंत्री जी के उद्बोधन को सुनने हेतु स्कैन करें

मध्यप्रदेश शासन

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी/2022

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

माफिया के कब्ज़े से छुड़ाई 23 हजार एकड़ जमीन

बनेंगे गरीबों के लिये घर

भोपाल के नीलबड़ से हुई शुरुआत

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2022

प्रतिसाद

केवल रतन मलकानी का 'सांप्रदायिक समन्वयः कठिनाइयाँ और उनके हल' शीर्षक शोधपत्र देश भर में सौ से अधिक बुद्धिजीवियों को भेजा गया था। इस पर उनमें से अधिकतर का प्रतिसाद भी आया। अब यहाँ से शुरू होते हैं बुद्धिजीवियों से आए प्रतिसाद

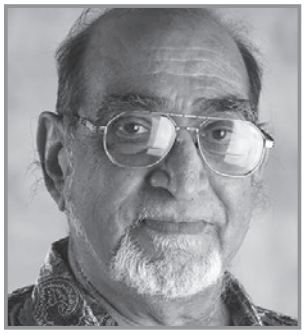

असगर अली इंजीनियर

हिंदू-मुस्लिम समस्या पर पारस्परिक सहयोग का दृष्टिकोण

हिंदू-मुस्लिम वार्ता को बढ़ावा देने के लिए एक दस्तावेज

भारत में हिंदू-मुस्लिम समस्या समय के साथ बढ़ती ही गई है। इस परिप्रेक्ष्य में इस्लामी शिक्षाओं और सामाजिक व्यवहारों पर एक अंतर्दृष्टि

यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि स्वतंत्रता, प्राप्ति के अनेक वर्षों बाद भी हिंदू-मुस्लिम समस्या का कोई निदान नहीं निकल पाया है। इस परिस्थिति के लिए कई राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक आर्थिक कारण जिम्मेदार हैं। यह देखकर खेद होता है कि देश में दिन-प्रति-दिन राजनीतिक क्रियाओं का सांप्रदायीकरण हो रहा है। ऐसे वातावरण में सांप्रदायिक व जातिवाद संबंधी समस्याओं के बढ़ने पर आश्यचर्य नहीं होना चाहिए।

आमतौर पर ऐसा माना जाता है कि राजनेता, आर्थिक संसाधन प्रतिस्पर्धा व रोजगार के खोजी लोग, अपनी स्वार्थ की पूर्ति हेतु धर्म का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे में विषाक्त हुए वातावरण के लिए धर्म ही दोषी दिखाई देने लगता है, परंतु सत्य कुछ और ही होता है। चूँकि भाईचारे से उत्पन्न मधुरता को पसंद किया जाता है, अतः हिंदू व मुस्लिम दोनों संप्रदायों के बीच अर्थपूर्ण सहयोग की भावना पैदा करना अति आवश्यक है। अतः इस लेख में समस्या या संघर्ष को पंथ के पहलुओं से देखते हुए विशेष रूप से इस्लाम पर आधारित करके सांप्रदायिक संघर्षों का इस्लामिक दृष्टि से विचार किया गया है।

दोनों ओर की धर्मांधता तथा कट्टरता के कारण इस्लाम को बहुत गलत समझा गया है। अन्य धर्मों, विशेषकर हिंदू धर्म के प्रति इसे असहनशील, आक्रामक और विस्तारवादी समझा जाता है। झगड़े की स्थिति में जब भी हमारा मुकाबला एक विचारधारा से होता है तो सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारणों से हम पक्षपाती हो जाते हैं। राजनीतिक संघर्ष की स्थिति में इस्लाम व हिंदुत्व ने एक-दूसरे का मुकाबला व एक-दूसरे को पछाड़ने की कोशिश की है। अतः दोनों ही ओर के राजनीतिक अभिजात-वर्ग में एक-दूसरे के धर्म के प्रति पक्षपातपूर्ण विचार विकसित हो गए, परंतु एक स्तर ऐसा भी था, जहाँ दोनों ओर के अभिजात वर्ग में राजनीतिक सहयोग पनप रहा था। दूसरी ओर, लोक स्तर पर सूफीवाद व लोक-इस्लाम लोकप्रियता प्राप्त कर रहे थे, जो किसी बैर को नहीं फैलाते, यह एक विशेष इनका गुण था। इसकी चर्चा हम आगे अलग से करेंगे।

"सर्वप्रथम, इस्लामिक उपदेश का विश्लेषण करते हुए यह देखा जाना चाहिए कि धर्म के मामलों में इस्लाम बहुवाद को प्रोत्साहन देता है अथवा नहीं। इससे यह जानने में सहायता मिलेगी कि अन्य धर्मों के साथ यह शांतिपूर्ण सहअस्तित्व व्यवहार का उल्लेख करते है अथवा नहीं।" कुरान में स्पष्टता से कहा गया है कि 'अगर अल्लाह चाहते तो तुम्हें एक ही जैसे कौम का बना देते, परंतु उन्होंने तुम्हें जो कुछ दिया, वह उसकी परीक्षा ले सकते हैं, इसलिए पुण्यकार्यों में

प्रतिस्पर्धा करो।' (कुरान 5:48)

इस आयत को पढ़ने के बाद यह संदेह नहीं करना चाहिए कि इस्लाम कर्मयोग को निरुत्साहित करता है अथवा अपनी श्रेष्ठता थोपना चाहता है। यह स्पष्ट करता है कि हर एक के लिए एक दिशा है, जिधर को (नमाज में) वह अपना मुँह करता है और कि अगर अल्लाह चाहता तो वह तुमको मात्र एक जैसे लोग बना देता, परंतु उसने ऐसा नहीं किया, वह देखना चाहता था कि क्या अनेक धर्मों एवं विश्वासों के बीच मनुष्य शांति से रह सकता है तथा सामंजस्यपूर्ण जीवन बिताने के लिए यह आवश्यक है कि हम पुण्य कार्यों में प्रतिस्पर्धा करें।

पवित्र कुरान बार-बार कहता है कि प्रत्येक जन-समुदाय के लिए हमने नैष्ठिक-कार्यों की नियुक्ति की है, वे इनका पालन भी करते हैं, अत: इस मामले में के संबंध में आपस में विवाद न करे और खुदा के लिए अपवचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए (कुरान 22:67)। एक अन्य आयत में कहा गया है कि "प्रत्येक समुदाय के लिए नैष्ठिक कार्यों की नियुक्ति किए हुए हैं, इसलिए उन्हें खुदा को याद करना चाहिए, अल्लाह ने अपने हाथों से उनके लिए चौपाए बनाई हैं और ये उनके मालिक हैं (कुरान 22:34)।"

एक अन्य आयत में भी यही विचार इन शब्दों में वर्णित किया गया है, "सभी के लिए एक दिशा का निर्धारण किया गया है, जिधर को (नमाज में) वह अपना मुख करते हैं, (तो दिशा भेद की परवाह न करके) वहाँ से उन्हें भलाई की प्राप्ति होगी। तुम कहीं भी हो, अल्लाह तुम सबको खींच बुलाएगा। अल्लाह हर चीज पर शक्तिशाली है। (कुरान 2:148) यह मक्का के एक अध्याय में भी (109) पवित्र ग्रंथ में विस्तार से कहा है-

"कहते हैं श्रद्धा विहीन, जिसका तुम भजन करते हो, उसका भजन मैं नहीं करता और जिसका मैं भजन करता हूँ, उसका भजन तुम नहीं करते और जिसका भजन तुमने किया है, उसका भजन मैं नहीं करूँगा और न ही तुम उसका भजन करोगे, जिसका भजन मैंने किया है, मुझे अपनी प्रणाली पर चलने दो-तुम अपने धर्म पर स्थित रहो।"

कुरान में ऐसी बहुत सी आयतें मिलती हैं, जिनमें धर्म के मामले में जबरदस्ती का अनुमोदन नहीं किया गया है। यह स्पष्ट रूप से घोषित करता है कि "इस पंथ में कोई बाध्यता नहीं है।" (2:256)

ऐसा माना जाता है कि कुरान में इसका भी विचार है कि मुसलमानों को यह अधिकार है कि वे दूसरों के धार्मिक स्थानों को तोड़ें और वहाँ मस्जिदें खड़ी कर दें। हो सकता है, कुछ अविज्ञ मुसलमान ऐसा ही विश्वास करते हों, परंतु कुरान में बिल्कुल इसके विपरीत कहा गया है। इसके संबंध में कहा गया है, अगर अल्लाह एक को दूसरे लोगों द्वारा जाँच नहीं किया गया होता तो भक्तिध ाम, गिरजागृह, उपासनाश्रम तथा मस्जिदें, जिनमें अल्लाह के नाम का कीर्तन होता है, ढहकर भूमिसात् हो जाते (22:40)। उपरोक्त आयत से स्पष्ट है कि मस्जिद अथवा उपासना गृह अथवा गिरजागृह में अल्लाह का नाम स्मरण होता है तथा अल्लाह एक प्रकार के लोगों को दूसरों से अलग करके इन सभी पूजागृहों की रक्षा करता है, अर्थात् जिन्होंने इन स्थानों की रक्षा नहीं की, अल्लाह ने उनको रक्षा करनेवालों से तितर-बितर कर दिया। इसलिए न केवल पूजागृहों के गिराने का विरोध किया गया है, बल्कि रक्षा न करने को भी अच्छा नहीं समझा गया है। कोई भी मुस्लिम किसी पूजागृह को गिराता है अथवा गिराने का समर्थन करता है, वह स्पष्टतया कुरान के आदेशों के विरुद्ध काम कर रहा है। अल्लाह ऐसे लोगों को पृथक् कर उन्हें दंड देता है, क्योंकि पूजा के इन सभी स्थानों में उसका नाम स्मरण किया जाता है।

दूसरे खलीफा हजरत उमर जब फिलिस्तीन गए तो उन्होंने वहाँ के गिरजागृह में प्रार्थना नहीं की। जब फिलस्तीन के आर्कबिशप ने इसका कारण पूछा तो खलीफा ने कहा कि कहीं ऐसा न हो कि बाद में मुसलमान लोग यह कहकर इस स्थान पर दावा करें कि खलीफा ने इस स्थान पर इबादत की थी। अत: उन्होंने ऐसे उपाय किए, जिससे गिरजागृह मस्जिदों में न बदले जा सकें। इस प्रकार कुरान और पैगंबर के खलीफा का व्यवहार किसी भी पंथ से संबंधित उपासना-गृह को गिराने के विरुद्ध था। परंतु यह मानना पड़ेगा कि व्यवहार में इस आदर्श की रक्षा नहीं हो सकी। कुछ मुसलमानों ने राजनीतिक बैर के कारण न केवल गैर-मुस्लिम पूजा गृहों को उजाड़ा, बल्कि अपने पवित्रतम स्थान काबा को भी नहीं छोड़ा। इस्लाम के प्रारंभिक इतिहास में उम्मैद खलीफा याजिद ने काबा को इसीलिए जलाया कि उस पर उनके राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी अब्दुल्ला जुबैर का कब्जा था। (परंतु ताबरी का कहना है कि आग अचानक लगी थी)। मामला जो भी हो, यह सत्य है कि काबा को याजिद की सेना ने घेरा और वहाँ युद्ध हुआ। (तारीख ताबरी खंड 7, पृ. 14 खुर्शीद अहमद फरीक रचित तारीख-ए-इस्लाम (दिल्ली 1978), पृ. 318-320)।

कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि इस्लाम उन लोगों का सिर कलम करने में विश्वास करता है, जो इस्लाम में विश्वास नहीं रखते। इस आरोप का कुछ जवाब तो उपरोक्त आयत में दे दिया गया है। जब पंथ के मामले में कोई और जबरदस्ती नहीं की जानी तो तलवार की सहायता से पंथ-परिवर्तन करवाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जहाँ तक 'काफिर' शब्द का संबंध है, उसे बहुत गलत समझा गया है। इसलिए आवश्यक

इस आयत को पढ़ने के बाद यह संदेह नहीं करना चाहिए कि इस्लाम कर्मयोग को निरुत्साहित करता है अथवा अपनी श्रेष्ठता थोपना चाहता है। यह स्पष्ट करता है कि हर एक के लिए एक दिशा है, जिधर को वह अपना मुँह करता है और कि अगर अल्लाह चाहता तो वह तुमको मात्र एक जैसे लोग बना देता, परंतु उसने ऐसा नहीं किया, वह देखना चाहता था कि क्या अनेक धर्मों एवं विश्वासों के बीच मनुष्य शांति से रह सकता है तथा सामंजस्यपूर्ण जीवन बिताने के लिए यह आवश्यक है कि हम पुण्य कार्यों में प्रतिस्पर्धा करें

है कि इसे सही संदर्भ में समझा जाए। काफिर का शाब्दिक अर्थ है 'अविश्वासी'। परमात्मा द्वारा उद्घाटित सत्य में जो भी व्यक्ति अविश्वास करता है वह काफिर है। यहाँ कुरान का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है कि इससे पूर्व के पैगंबरों द्वारा उद्घाटित सत्य भी अल्लाह की ओर से थे तथा अल्लाह ने सभी देशों में वहाँ की भाषा में पैगंबर भेजे तथा कुरान घोषित करता है कि प्रत्येक देश के लिए एक पैगंबर होता है। जब भी पैगंबर आता है, न्यायपूर्ण निर्णय लिए जाते हैं तथा किसी के साथ अत्याचार नहीं होता (10:47)।

इस प्रकार प्रत्येक देश को पैगंबर भेजे गए। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि लोगों के आपसी मतभेद न्यायपूर्ण ढंग से सुलझ जाएँ व उनके (लोगों के) साथ कोई अन्याय न हो। अत: जो लोग किसी एक अथवा अन्य पैगंबर (पैगंबर जो भी हो परमात्मा का दूत होना चाहिए) में विश्वास करते हैं और नैतिकता के अनुसार आचरण करते हों, विश्वासी हैं। कुरान न केवल सभी पैगंबरों में विश्वास रखने के लिए कहता है, परंतु भेदभावरहित आदर करने के लिए भी कहता है। कुरान कहता है कि हम खुदा के पैगंबरों में से किसी एक को जुदा नहीं समझते। (कुरान 2:285) कुरान यह भी चाहता है एक आस्तिक उसके सभी पैगंबरों को स्वीकार करें। इनमें वे भी शामिल हैं, जो पहले हुए तथा दूसरे देशों को भेजे गए। इनमें भेदभाव बरतने की आज्ञा भी नहीं दी गई। इस प्रकार कुरान कहता है कि जो अल्लाह तथा उसके दूत में श्रद्धा रखते हैं और अल्लाह व उसके दूत के बीच बुद्धि से काम लेना चाहते हैं। साथ ही वे कहते हैं-"जो लोग अल्लाह और उसके पैगंबरों से घिरे हुए हैं और अल्लाह व उसके पैगंबरों में भेद करते हैं, साथ ही वह किसी को मानते हैं, किसी को मनाने से इनकार कर ईमान के बीच में कोई राह निकालें तो ऐसे लोग बेशक काफिर हैं और काफिरों के लिए हमने जिल्लत की सजा तैयार कर रखी है।" (4-150:151)

इस प्रकार वास्तविक अविश्वासी (काफीरुन हक्कन) तो वही हुए, जो भगवान द्वारा भेजे गए सभी दूतों को स्वीकार नहीं करते व उनमें भेदभाव करते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि कुरान में सभी पैगंबरों का नाम नहीं लिखा गया है। कुरान स्वयं भी इसे स्पष्ट करता है "और कितने पैगंबर हैं जिनका हाल हम पहले तुमसे बयान कर चुके हैं और कितने पैगंबर हैं, जिनका हाल हमने तुमसे बयान नहीं किया।" (6:164) अत: इस प्रमाण एवं उपरोक्त वर्णित अन्य आयतों के प्रकाश में अब्दुर रहीम जान-ए-जनन ने निष्कर्ष निकाला कि परमात्मा ने हिंदुओं के लिए भी अवतार भेजे तथा आदम की ब्रह्म से तुलना की तथा वेदों को परमात्मा की वाणी घोषित किया। यह निश्चित है कि हिंदुओं को काफिर कह बदनाम करना कुरान की भावना के अनुरूप नहीं है। कुछ सांप्रदायिक मुसलमानों ने ऐसा किया है।

उलेमाओं ने कभी भी हिंदुओं को एकमत से काफिर कहकर अस्वीकृत नहीं किया। जब पैगंबर ने स्वयं बहरीन व उम्मान पारसियों के साथ संधि की तो उन्हें अहल-अल-किताब (पुस्तक के लोग) कहकर मान्यता प्रदान की, जबकि कुरान में उनको ऐसा नहीं कहा गया था। इसी तरह तीसरे खलीफा हजरत उस्मान ने उत्तरी अमरीका के बर्बर आदिवासियों को किताब के लोग कहकर स्वीकार किया (देखें बयहाकी खंड 9, पृ. 161 तथा बालधुरी फतह अल-बल्दान, पृ. 232, लेखक-खुर्शीद अहमद फरीक, देखें, पृ. 116)। यद्यपि संदेह है कि उनके पास कोई पुस्तक भी थी। इब्न खालादून ने उत्तरी अफ्रीका के बर्बरों को आततायी व सर्वाधिक असभ्य लोग कहा था, परंतु उनको अहल-अल-किताब कहकर अपनाया गया, फिर हिंदू तो बहुत ही सभ्य और सुसंस्कृत थे। इनके दर्शन, आध्यात्मिक विचार तथा भौतिक विज्ञान बहुत उन्नत अवस्था में थे। अत: इनको अपनाए जाने में क्या आपत्ति हो सकती थी। वास्तव में अरब के लोग भारत की उपलब्धियों से बहुत प्रभावित थे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार मसूदी भारत के बारे में लिखता है कि -

अतीतकाल में जब अन्य राष्ट्र विभिन्न कबीलों में बँटे हुए थे (अर्थात् जब अन्य सभ्यताएँ कबीला स्तर पर थीं) तब भारत के कुछ कुलीन, निष्ठावान, विवेक व ज्ञान-संपन्न लोग आम जनता को एक मजबूत केंद्रीय सरकार के अंतर्गत लाने का प्रयत्न कर रहे थे। पहले उन्होंने एक केंद्रीय प्राधिकरण की स्थापना की, फिर शासन की व्यवस्था बनाई। उन्होंने एक तपस्वी ब्राह्मण को अपना सर्वोच्च शासक नियुक्त किया, यह भारत का विवेकशील पुरुषों के उत्थान का युग था, जिसमें प्रजावर्ग ने जीवन के सभी पहलुओं में उन्नति की। इन्होंने खानों से लोहा निकाला, तलवारें तथा अन्य शस्त्र व महल बनाए, स्वर्गादि लोकों, नक्षत्रों व सूर्य की गति का अध्ययन किया

"अतीतकाल में जब अन्य राष्ट्र विभिन्न कबीलों में बँटे हुए थे (अर्थात् जब अन्य सभ्यताएँ कबीला स्तर पर थीं) तब भारत के कुछ कुलीन, निष्ठावान, विवेक व ज्ञान-संपन्न लोग आम जनता को एक मजबूत केंद्रीय सरकार के अंतर्गत लाने का प्रयत्न कर रहे थे। पहले उन्होंने एक केंद्रीय प्राधिकरण की स्थापना की, फिर शासन की व्यवस्था बनाई। उन्होंने एक तपस्वी ब्राह्मण को अपना सर्वोच्च शासक नियुक्त किया, यह भारत का विवेकशील पुरुषों के उत्थान का युग था, जिसमें प्रजावर्ग ने जीवन के सभी पहलुओं में उन्नति की। इन्होंने खानों से लोहा निकाला, तलवारें तथा अन्य शस्त्र व महल बनाए, स्वर्गादि लोकों, नक्षत्रों व सूर्य की गति का अध्ययन किया। (मुहम्मद जाकी, अरब एकाउंट ऑफ इंडिया, दिल्ली 1981)

अब्बासिद कालखंड के दौरान एक प्रतिभा-संपन्न निबंधकार जाहिज ने भारत की उपलब्धियों से प्रभावित हो, इसकी बहुत प्रशंसा की। उसने कहा, "भारत के निवासी ज्योतिष व औषध विज्ञान में बहुत आगे हैं। उनकी एक विशेष लिपि हैं, इसलिए भैषज्य में उनकी दृष्टि पैनी है। वृक्ष छाल की कला, मूर्ति गढ़ने, रंगीन तसवीरें बनाने तथा स्थापत्य कला में वे श्रेष्ठ हैं। इनका संगीत भी मनमोहक है। इनके एक वाद्य का नाम

कांका है, जिसकी तारें एक कद्दू के तंबूरे पर बँधी होती हैं। इसकी तारों को छेड़ने से संगीत की ध्वनि निकलती है। इनके पास काव्य और वाणी संपदा का भरपूर भंडार है। ये औषधि, दर्शन और नीति शास्त्र के मर्मज्ञ हैं। कलेलाह वा दिमनाह (पंचतंत्र का अनुवाद) नामक पुस्तक हमें उन्हीं से प्राप्त हुई हैं। उनके पास अदम्य साहस, सहजभाव व अन्य गुण बहुतायात में मौजूद है, जबकि चीनियों में भी इतने गुण नहीं हैं। वे शौच-अशौच का विशेष खयाल रखते हैं। ये देखने में सुंदर, लंबे-तगड़े व सुगंध के शौकीन हैं। राजाओं के लिए पारदर्शी इत्र इसी भूमि से आता है। उच्च विचारों की धारा भारत से अरब की ओर प्रवाहित हुई। (जाहिज, फक्रस सौदां अलाल बेदान, पृ. 80-81, आई.सी., 1932, 624-625 (सी. एफ. मुहम्मद जाकी ओ.पी.सी. आई. टी., पृ. 24।

बारहवीं शताब्दी में तुलनात्मक धर्मों के एक विद्वान अब्दुल करीम शहरस्तानी ने स्वीकार किया कि भारत एक महान राष्ट्र व एक महान (धार्मिक) समुदाय है (उम्मात-ए-कबीरा वा मिल्लत-ए-अजीमा,) परंतु वहाँ के विचार व विचारधाराएँ विभिन्न हैं। (शहरस्तानी अलमिलत वा अल निहाल, खंड 3, पृ. 236-37)

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारंभिक अरब व गैर-अरब मुस्लिम इतिहासकारों ने भारतवासियों तथा भारतीय वस्तुओं की बहुत प्रशंसा की है। उन्होंने यहाँ के धर्म, तत्त्व मीमांसा एवं नीति ज्ञान को बहुत पसंद किया। 14वीं शताब्दी के प्रारंभ में एक सुप्रसिद्ध विद्वान मुहम्मद शबिस्तानी ने अपनी पुस्तक गुलशनी-ई-राज में तो मूर्तिपूजा तक का समर्थन किया है। वह कहता है, "मूर्ति इस ब्रह्मांड में प्रेम एवं एकता की प्रतीक है तथा यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ है, सेवा का व्रत लेना। चूँकि आस्तिक व नास्तिक दोनों ही प्रकार के मनुष्य विद्यमान हैं, अत: मूर्तिपूजा में परमात्मा की एकता के दर्शन किए जा सकते हैं। वस्तुएँ भावना का प्रकटीकरण होती हैं, इसलिए उनमें से कम-से-कम एक वस्तु तो मूर्ति होनी ही चाहिए। अगर मुसलमान को यह पता लग जाए कि मूर्ति क्या होती है तो वह अपने धर्म से भटक नहीं सकता। उसके धर्म की नजर में मूर्ति में बाहरी कर्मकांड के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। अत: धर्म का वास्ता देकर काफिर शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। अगर आप भी मूर्ति में छिपी वास्तविकता को नहीं देखेंगे तो नियम के मुताबिक आपको भी कोई मुस्लिम नहीं कहेगा। (डॉ. ताराचंद द हिंदू मुस्लिम प्रॉब्लम, पृ. 34-35, बी. पांडे इस्लाम ऐंड इंडियन कल्चर (पटना 1978) पृष्ठ : 9-10)

जैसा कि पहले बताया गया है तीसरे खलीफा उस्मान ने उत्तरी अफ्रीका वालों को अहल-अल-किताब (पुस्तक के अनुयायी) कहकर उन्हें गले से लगाया। ये लोग शताब्दी से ज्यादा कुछ नहीं थे, फिर हिंदुओं को काफिर कहकर तिरस्कृत कैसे किया जा सकता था। जब हिंदुओं से मुहम्मद बिन कासिम का वास्ता पड़ा तो उसने उलेमाओं से इनका धार्मिक महत्त्व पूछा। वे एकमत से कोई निर्णय नहीं ले सके। उनमें से अधिकांश ने इन्हें अहल-अल-किताब कहकर मान्यता दी। अत: उसके द्वारा उलेमाओं से पूछनेवाली बात से स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता।

यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि प्रारंभिक अरब इतिहासकारों ने हिंदुओं एवं उनकी बौद्धिक उपलब्धियों की बड़ी प्रशंसा की है। बाद के उलेमा इनके प्रतिकूल हो गए और इन्हें काफिर कहकर दोषी ठहराने लगे। दृष्टिकोण में यह परिवर्तन कैसे आया? इसको समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि अन्य लोगों के प्रति हमारा दृष्टिकोण प्राय: हमारे सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टिकोण द्वारा निर्धारित होता है। प्रारंभिक अरब इतिहासकारों को भारतवासियों के साथ संपर्क रखकर बहुत लाभ हुआ था। उन्होंने यहाँ से बहुत कुछ सीखा। अत: वे भारत व इसकी वस्तुओं की बहुत प्रशंसा करते थे। बौद्धिक उपलब्धियों के विकास में उनका स्तर नीचा था, अत: वे भारत की बड़ी प्रशंसा करते थे, परंतु बाद के उलेमाओं को मध्य एशियाई मुस्लिम अभिजात वर्ग का संरक्षण मिल गया। भारत का अभिजात वर्ग भी विद्वानों को संरक्षण दिया करता था। हो सकता है यह भारत की देखादेखी हुआ हो। धीरे-धीरे राजनीतिक-शत्रुता धार्मिक शत्रुता में बदल गई। बहुत से उलेमाओं ने हिंदुओं को काफिर कहना शुरू कर दिया।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उलेमाओं की अपेक्षा सूफियों ने हिंदुओं को बिल्कुल ही भिन्न दृष्टि से देखा। सूफी सत्ता के महत्त्वाकांक्षी नहीं थे। इसके विपरीत उन्होंने सत्ता से दूर रहकर अपने आपको आध्यात्मिक अभ्यास में व्यस्त रखा। उन्हें हिंदू योगियों के आध्यात्मिक व्यवहार में बहुत कुछ समानांतर नजर आया। एक बार सल्तनत युग के महान सूफी संत निजामुद्दीन औलिया ने अपने शिष्य अमीर खुसरो के साथ यमुना तट पर घूमते हुए देखा कि कुछ हिंदू स्त्रियाँ स्नान कर रही हैं और सूर्य को जल दे रही हैं। वह तुरंत बोल उठे-हर कौम रा दीने वा गिबला गहे (प्रत्येक समुदाय के लिए उसका अपना धर्म व प्रार्थना पद्धति है।) यह कहना गलत है कि सूफियों का 'फाना की अल्लाह' सिद्धांत पूर्ववर्ती बौद्ध सिद्धांत 'निर्वाण' से ही लिया गया है।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि अपने विचारों व उपदेशों के प्रचार के लिए सूफी-संतों ने स्थानीय हिंदू मुहावरों व शब्दों का प्रयोग करने में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं की। यहाँ तक कि महाराष्ट्र के एक सूफी संत शेख मुहम्मद ने सूफीवाद पर

यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि प्रारंभिक अरब इतिहासकारों ने हिंदुओं एवं उनकी बौद्धिक उपलब्धियों की बड़ी प्रशंसा की है। बाद के उलेमा इनके प्रतिकूल हो गए और इन्हें काफिर कहकर दोषी ठहराने लगे। दृष्टिकोण में यह परिवर्तन कैसे आया? इसको समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि अन्य लोगों के प्रति हमारा दृष्टिकोण प्राय: हमारे सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टिकोण द्वारा निर्धारित होता है। प्रारंभिक अरब इतिहासकारों को भारतवासियों के साथ संपर्क रखकर बहुत लाभ हुआ था। उन्होंने यहाँ से बहुत कुछ सीखा। अत: वे भारत व इसकी वस्तुओं की बहुत प्रशंसा करते थे

लिखी अपनी पुस्तक का नाम 'योग-संग्रह' रख डाला। उसने अरबी के स्थान पर मराठी भाषा व संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया। उसने दिल (हृदय) को अंत:करण, जहालियत को तमोगुण तथा कमालियत को सद्‌गुण कहा। वास्तव में उसने उसी शब्दावली का प्रयोग किया, जो पतंजलि, शंकर तथा वेदांत के ग्रंथ व्याख्याकारों द्वारा प्रयुक्त की गई। (देखें असगर अली इंजीनियर कृत 'सेमीनार ऑन सूफीज्म एंड कम्युनल हारमनी'-ए रिपोटार्ज, अकेजनल पेपर नं. 4, अप्रैल 1988, इंस्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक स्टडीज, बंबई)

शेख मुहम्मद ही एकमात्र उदाहरण अथवा अपवाद नहीं हैं। उसकी तरह सोचने वाले और भी कई सूफी संत थे। वास्तव में उनकी दिलचस्पी अध्यात्म में थी। वे जानते थे कि इसके बाहरी रूप अलग-अलग हैं, लेकिन आंतरिक नहीं। उन्हें हिंदू व्यवहारों तथा धार्मिक शब्दावली से परहेज नहीं था। गुजरात के कुछ सूफियों ने तो पैगंबर को कृष्ण तक कह डाला और उनकी प्रशंसा में कविताएँ रचीं। (देखें, ख्वाजा हसन निजामी रचित फातिमी दावत-ए-इस्लाम) इसी प्रकार वाहदत अल-वजूद (एकेश्वरवाद) का सिद्धांत सर्वेश्वरवादी होने के कारण पर्याप्त रूप से विश्वव्यापी हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार पूरा ब्रह्मांड परमात्मा से उत्पन्न हुआ है तथा उसकी प्रभुता को दरशाता है। अत: यह प्रश्न पैदा ही नहीं होता कि जो इस विचार में विश्वास रखता है, उसे भाई बना लिया जाए और जो अन्य बाहरी विचार रखता है, उसे तिरस्कृत किया जाए। बहादत-ए-लवजूद सिद्धांत में विश्वास रखने वाले सूफी सभी के साथ घुल-मिल गए।

आज जो कटुता पैदा हो रही है, उसका मुख्य कारण है अतीत के लिए आग्रह, जैसा कि पहले बताया जा चुका है ग्राह्यता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक शत्रुता पंथ विरोध में परिवर्तित हो गई। हम इतिहास को अत्यधिक सरलीकृत करते हैं। इसमें हिंदू व मुसलमानों के गंभीर विद्यार्थी होने के नाते हमें याद रखना चाहिए कि अंतर-समूह अथवा अंतर-सांप्रदायिक संबंध अस्पष्टता, जटिलता तथा पारस्परिक आदान-प्रदान से प्रभावित होते हैं। यहाँ हम इस प्रश्न पर विस्तार से विचार नहीं कर रहे हैं। इसके बारे में अन्यत्र बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ हम इस बात पर जोर दे रहे हैं कि ऐतिहासिक घटनाओं की जाँच-पड़ताल, उनमें छिपी समृद्धि, गंभीरता, जटिलता, तथा अस्पष्टता पर दृष्टि रखते हुए की जानी चाहिए।

आज जो कटुता पैदा हो रही है, उसका मुख्य कारण है अतीत के लिए आग्रह, जैसा कि पहले बताया जा चुका है ग्राह्यता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक शत्रुता पंथ विरोध में परिवर्तित हो गई। हम इतिहास को अत्यधिक सरलीकृत करते हैं। इसमें हिंदू व मुसलमानों के गंभीर विद्यार्थी होने के नाते हमें याद रखना चाहिए कि अंतर-समूह अथवा अंतर-सांप्रदायिक संबंध अस्पष्टता, जटिलता तथा पारस्परिक आदान-प्रदान से प्रभावित होते हैं। यहाँ हम इस प्रश्न पर विस्तार से विचार नहीं कर रहे हैं। इसके बारे में अन्यत्र बहुत कुछ लिखा जा चुका है

हमें याद रखना चाहिए कि मानवीय व्यवहार किसी एक कारक से नियंत्रित नहीं होता, चाहे यह कारक कितना भी महत्त्वपूर्ण न हो। धर्म एक महत्त्वपूर्ण कारक होता है, परंतु राजा तो क्या सत्ता के खेल से दूर साधारण मनुष्यों का बर्ताव भी मात्र इस एक कारक से निर्धारित नहीं होता। अगर हम अत्यधिक सरलीकृत विधि का त्याग करके विभिन्न ऐतिहासिक व वर्तमान घटनाओं को उनकी पेचीदगी तथा संदिग्धता की दृष्टि से समझने का प्रयत्न करें तो हमें वास्तविक कारणों का पता लगेगा, जिससे धार्मिक झगड़ों की संभावनाएँ कम हो जाएँगी। इससे आपसी समझ भी बढ़ेगी।

आइए, हम इस बात पर ध्यान दें कि आधुनिक घटनाओं की व्याख्या में हमारे बीच कितना मतभेद विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए, ब्लू-स्टार ऑपरेशन की घटना को लें। क्या इंदिरा गांधी ने किसी राजनीतिक उद्देश्य से इसके लिए आदेश दिया था अथवा इसलिए करवाया था कि वे सिखों से दुश्मनी रखती थीं या चुनाव जीतने के लिए वे हिंदू कट्टरता को बढ़ावा देना चाहती थीं? क्या वे सांप्रदायिक हो गई थीं अथवा उन्होंने यह समझ लिया था कि देश की एकता में दिलचस्पी रखनेवाली वही एकमात्र नेता हैं? इन प्रश्नों के उत्तर में हम जो भी राय जाहिर करेंगे, वह हमारे राजनीतिक हितों अथवा प्राथमिकताओं पर आधारित होगी। बहस जारी है। सिखों में भी इस बारे में सहमति नहीं है।

जब समकालीन घटनाओं पर इतना मतभेद है तो अतीत की घटनाओं पर हमारे विचार कैसे सुनिश्चित हो सकते हैं। ऐसे हालात में भी हम भूतकालिक घटनाओं की अपनी जानकारी पर बहुत इतराते और निश्चितता व्यक्त करते हैं। इस प्रक्रिया में ऐतिहासिक अभिनेताओं के योगदान एवं जटिलताओं की संभावनाओं को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया जाता है। ये ऐतिहासिक अभिनेता न तो कट्टर धार्मिक थे, न ही उदारता से भरे हुए। ये निश्चित रूप से ऐसे विचारों से प्रभावित नहीं होते हैं। हमें इन तथ्यों को नजरों से ओझल नहीं करना चाहिए, इन विचारों से सहमत होने पर इतिहास व ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति हमारे अवबोधन में परिवर्तन आ जाएगा। यह बहुत आवश्यक हो गया है कि हम अपने देश को सांप्रदायिक तनाव से मुक्त रखें।

एक परिवर्तनशील समाज जटिल समस्याओं को जन्म देता है; जातीय समस्या भी उनमें से एक है। अंग्रेजों के निकलने के बाद भारत के विभिन्न समुदायों, विशेषकर हिंदू व मुसलमानों के सामाजिक आर्थिक ढाँचे तथा उसके परिणामस्वरूप राजनीतिक संबंधों में तेजी के परिवर्तन आना आरंभ हुआ। किसी भी बहुवादी-समाज में जब परिवर्तन आता है तो उसे नियंत्रण करने योग्य अथवा अनियंत्रित सांप्रदायिक अथवा जातीय तनाव से मुक्त रखना कठिन होता है। जब सामंतवादी एकतंत्र-व्यवस्था पूँजीवादी प्रजातांत्रिक संबंधों में परिवर्तित होती है तो सांप्रदायिक प्रतिक्रियाएँ चुस्त हो जाती हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जब

सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण कुछ तेजी से आरंभ हुआ तो ये प्रतिक्रियाएँ भी गंभीर होती चली गईं। हमारे सामाजिक व राजनीतिक क्षितिज में नई शक्तियाँ व नए संबंध उभरने लगे, फिर रूपांतरण को भी जटिलता, उपयोगिता व अस्पष्टता से अलग रखकर समझने की जरूरत है। उसमें अत्यधिक सरलीकरण से बचना आवश्यक है।

तीसरी दुनिया के अधिकांश देश किसी-न-किसी अंश में जातीय अथवा सांप्रदायिक समस्याओं में ग्रस्त हैं। जिन देशों को एकता व मित्रता का मॉडल समझा जाता था। वे अब जातीय व सांप्रदायिक झगड़ों से टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। एक दशक पहले किसने सोचा था कि प्रशांत महासागर के शांतिपूर्ण फिजी द्वीप में जातीय विद्वेष का लावा फूट पड़ेगा। फिजी के भारतीयों व मूलवासियों में लड़ाई शुरू हो गई। इसमें संदेह नहीं है कि यह झगड़ा आर्थिक व राजनीतिक कारणों से हुआ। फिजी-भारतीयों द्वारा समर्थित डॉ. तिमोकी बवदारा की संयुक्त सरकार के चुनाव से झगड़ा आरंभ हो गया। इस चुनाव से मूलवासियों में असंतोष फैल गया। उन्हें महसूस हुआ कि सत्ता की राजनीतिक व आर्थिक दौड़ में वे पिछड़ गए हैं। अपने असंतोष को व्यक्त करने के लिए मूलवासियों ने प्रजातंत्र का गला घोंट दिया। उन्होंने सैनिक तानाशाही के माध्यम से सत्ता को छीना।

श्रीलंका का तमिल-सिंहली झगड़ा भी वहाँ के सामाजिक-आर्थिक संतुलन में परिवर्तन के परिणाम से पैदा हुआ है। सिंहालियों ने सोचा कि तमिल एक विशेषाधिकार प्राप्त अल्पसंख्यक समुदाय है तथा शांति के अनुयायी बौद्ध-भिक्षु तमिल-विरोधी आंदोलन में शामिल हो हिंसा पर उतर आए। हाल ही के कुछ वर्ष पूर्व तक इन देशों में जातीय विद्वेष की कल्पना भी नहीं होती थी, परंतु विकास-प्रक्रिया से संघर्ष की उत्पत्ति हुई। मतभेद का प्रकटयीकरण सांप्रदायिक व जातीय रंग ले लेता है। विश्व के अन्य देशों में भी ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं।

भारत में हिंदू-मुस्लिम समस्या भी इसी किस्म की एक समस्या है। वास्तव में हिंदू-मुस्लिम समस्या के मूल में 'धर्म' नहीं है। यह झगड़ा सेक्यूलर रंगमंच की देन है, परंतु दुर्भाग्य से इसे धार्मिक शब्दावली में व्यक्त किया जाता है; इससे यह समस्या धार्मिक नजर आने लगती है। हमें इस समस्या का निदान इसके भुक्त-भोगियों की दृष्टि से करना है, न कि अभिनेताओं की दृष्टि से। धार्मिक समस्या के भी कई पहलू होते हैं, उनमें सांस्कृतिक पहलू कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता।

हमारे हिंदू भाई शिकायत करते हैं कि मुसलमान राष्ट्रीय मुख्यधारा के अंग नहीं बनना चाहते। इसमें कुछ सच्चाई है, परंतु पूरी नहीं। अगर हम इसे उत्तरी-भारत के मुस्लिम अभिजात वर्ग की दृष्टि से देखें तो यह शिकायत सही नजर आती है, परंतु उत्तर भारतीय ग्रामीण मुसलमान अथवा भारत के दक्षिण व पूर्वी भागों के सामान्य मुसलमान की दृष्टि से देखें तो यह सच नहीं है।

वास्तव में सांप्रदायिक समस्या के गुरुत्वाकर्षण का केंद्र हिंदी पट्टी (गुजरात व महाराष्ट्र सहित) में है। इस पट्टी का शहरी अभिजात वर्ग अलग पहचान पर जोर देता है। भारतीय-इस्लामिक संस्कृति के बारे में इसका एक निश्चित मत है। इस पट्टी का शहरी मुस्लिम मध्यम वर्ग अपनी भारतीय-इस्लामिक पहचान पर गर्व करता है। 19वीं शताब्दी के बाद से हिंदू-मुसलमान संघर्ष शुरू हुआ, अलीगढ़ आंदोलन का केंद्र रहा। इन सबसे ऊपर यह मुस्लिम-शक्ति का केंद्र रहा। इस पट्टी में, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में वे मुसलमान रहते हैं, जो पूर्वकालीन शासक वर्ग के वंशज हैं। पाकिस्तान के लिए लड़ाई मुख्यत: इसी पट्टी में लड़ी गई।

इसलिए कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इस पट्टी में अलग पहचान की भावनाएँ विद्यमान रहती हैं। पट्टी के हिंदू भी मुसलमानों के पृथकतावादी दृष्टिकोण पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। उनका यह अनुभव कहता है कि मुसलमान मुख्यधारा के अंग बनना ही नहीं चाहते, स्वाभाविक ही है। कुछ भी हो, समस्या पेचीदा है और भ्रमपूर्ण भी। इसकी जड़ धर्म में हो यह आवश्यक नहीं। पृथकतावाद की जड़ें राजनीति में हैं, धर्म में नहीं।

इस पृथकतावाद की जड़ें खोजनी हों तो आइए, हम इतिहास की ओर मुड़ें। जब सम्राट् अकबर ने हिंदुओं के लिए उदारनीति अपनाई तो केंद्रीय एशिया क्षेत्र के मुसलमान दरबारियों में असंतोष फैल गया। इस असंतोष को पुष्ट करने के लिए उन्हें एक नक्शबंदी सूफी तत्त्वज्ञ मुजहिद सरहिंदी का सहारा मिल गया। वास्तव में यह सबकुछ पंजाब के नक्शबंदी व्यवस्था के बाकी बिल्लाह से शुरू हुआ। हुए 1563 में पैदा हुए और 1603 में दिल्ली में ही मृत्यु को प्राप्त हुए। (विल्फर्ड कांटवेल स्मिथ-ऑन अंडरस्टैंडिंग इस्लाम, दिल्ली-1985, पृ. 177) बाकी बिल्लाह ने प्रभावशाली मुसलमानों से संपर्क आरंभ कर दिया व महान उदारवादी सूफी विद्वान अबुल फजल से प्रभावित सरहिंदी को मतांतरित कर दिया।

मुजहिद अल्फ थानी ने सरहिंदी में अनेक मुसलमान नवाबों को पत्र (मक्तूबात) लिखे, जिनमें इस्लामी मान्यताओं का महत्त्व बतलाया गया व शहंशाह की गैर-इस्लामी नीतियों का विरोध किया गया। उसे उन दरबारियों का समर्थन मिलना आरंभ हो गया, जो सत्ता में हिंदू दरबारियों की भागीदारी पसंद नहीं करते थे। खींचतान जारी रही। महान उदारवादी दाराशिकोह को उत्तराधिकार से अलग करने के लिए औरंगजेब को मुस्लिम दरबारियों के समर्थन की आवश्यकता पड़ी। मुसलमान दरबारियों ने औरंगजेब का साथ दिया। अत: वह जीत गया। नेतृत्व प्राप्त करने

मुजहिद अल्फ थानी ने सरहिंदी में अनेक मुसलमान नवाबों को पत्र लिखे, जिनमें इस्लामी मान्यताओं का महत्त्व बतलाया गया व शहंशाह की गैर-इस्लामी नीतियों का विरोध किया गया। उसे उन दरबारियों का समर्थन मिलना आरंभ हो गया, जो सत्ता में हिंदू दरबारियों की भागीदारी पसंद नहीं करते थे। खींचतान जारी रही। महान उदारवादी दाराशिकोह को उत्तराधिकार से अलग करने के लिए औरंगजेब को मुस्लिम दरबारियों के समर्थन की आवश्यकता पड़ी। मुसलमान दरबारियों ने औरंगजेब का साथ दिया

के लिए शाहवली अल्लाह ने भी मुस्लिम दरबारियों का समर्थन जुटाने की कोशिश की, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली।

यद्यपि केंद्रीय एशियन अभिजात वर्ग की पहचान समाप्त हो चुकी है, परंतु एक नई भारतीय-इस्लामिक पहचान उभरकर सामने आई है, जो इस्लामिक है और भारतीय भी। इस तथ्य को मान्यता दी जानी चाहिए, क्योंकि इसका उस प्रश्न से संबंध है, जिस पर हम विचार कर रहे हैं। इस तादात्म्य में इस्लामिक व भारतीय दोनों प्रकार के तत्त्व विद्यमान हैं। कुछ हालात में यह अपने इस्लामिक होने पर गर्व करता है और कुछ विशेष में भारतीय। यह विभिन्नता हालात व सत्ता के लिए संघर्ष पर निर्भर करती है।

अंग्रेजों के जाने के बाद सत्ता के लिए संघर्ष के नए चरण का सूत्रपात हुआ। उत्तर भारत का शहरी मुस्लिम अभिजात वर्ग इस संघर्ष का सूत्रधार था। उसने अपने एक्य के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया। यह इसलिए हुआ कि संघर्ष हिंदू मुस्लिम अभिजात वर्ग के बीच था। इतना आग्रह आशा के अनुरूप था। राजनीतिक संघर्ष में मुस्लिम जनता को अपने साथ रखने के लिए मुस्लिम अभिजात वर्ग ने मुस्लिम समानता को जाग्रत करने की कोशिश की। इस्लाम सर्वसाधारण में हिंदुत्व के मजबूत तत्त्व विद्यमान हैं। नामों, परंपरा, पहरावे तथा अन्य सांस्कृतिक तत्त्वों पर हिंदू-प्रभाव बहुत गहरा था। मुस्लिम अभिजात वर्ग ने धार्मिक कारणों से नहीं, बल्कि राजनीतिक कारणों से मुस्लिम सर्वसाधारण पर दबाव डाला कि वह स्थानीय हिंदू रीति-रिवाजों से अलग हो जाएँ। दूसरी ओर देवबंदी उलेमाओं ने इस आंदोलन को धार्मिक कारणों से चलाया। उन्होंने सोचा कि जब तक शुद्ध इस्लाम का पालन नहीं होगा, मुसलमानों के बीच आई गिरावट को रोका नहीं जा सकेगा। उनके इस विचार से सहमत होना न होना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है।

इस समय हम धर्म संबंधी दृष्टिकोण पर विचार नहीं कर रहे हैं। हमारे चिंतन का मुख्य विषय राजनीतिक विचारधारा है। 19वीं शताब्दी के बंगाल में पृथक्करण की बढ़ती हुई माँग का विश्लेषण करते हुए रफीउद्दीन ने कहा-इस्लामीकरण के आंदोलन से ऐसे परिवर्तनों को धक्का लगा। संचार व्यवस्था में सुधार होने से ग्रामीण मुसलमानों द्वारा शहरी मुसलमानों के निकट आने, इस्लामिक व पश्चिमी शिक्षा के प्रसार में वृद्धि होने, विभिन्न सामाजिक व राजनीतिक कारणों से उत्पन्न सांप्रदायिक तनाव जैसे कारकों से सर्वसाधारण मुसलमानों अपने हिंदू पड़ोसी से अलग हो गया। (रफीउद्दीन अहमद दि बंगाल मुस्लिम 1871-1906, ए कबेस्ट फॉर आइडेंटिटी, दिल्ली-1981, पृ. 107)

रफीउद्दीन उन परिवर्तनों का वर्णन करते हैं, जो बंगाली मुसलमानों में पृथक्कीकरण को भरने के साथ शुरू हुए। उन्होंने देखा कि 19वीं शताब्दी के सातवें दशक अथवा इससे भी पूर्व के नसीहतनामों में परम पिता परमात्मा को प्राय: 'श्री श्री हक, श्री श्री ईश्वर, श्री श्री करीम' कहकर संबोधित किया जाता था। अब श्री श्री जैसे आदरसूचक गैर-इस्लामिक शब्दों को 'अल्लाह अकबर' अथवा 'अल्लाह गनी' जैसे अरबी व फारसी शब्दों से बदल दिया गया। इसी प्रकार व्यक्तिवाचक संबोधन में प्रयुक्त 'श्री, श्रीयुत तथा श्रील श्रीयुत' जैसी शब्दावली के स्थान पर 'जनाब, मुंशी तथा मौलवी' जैसे आदरसूचक शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। यहाँ तक कि नसीहतनामों के शीर्षक में भी बदलाव आया

रफीउद्दीन उन परिवर्तनों का वर्णन करते हैं, जो बंगाली मुसलमानों में पृथक्कीकरण को भरने के साथ शुरू हुए। उन्होंने देखा कि 19वीं शताब्दी के सातवें दशक अथवा इससे भी पूर्व के नसीहतनामों में परम पिता परमात्मा को प्राय: 'श्री श्री हक, श्री श्री ईश्वर, श्री श्री करीम' कहकर संबोधित किया जाता था। अब श्री श्री जैसे आदरसूचक गैर-इस्लामिक शब्दों को 'अल्लाह अकबर' अथवा 'अल्लाह गनी' जैसे अरबी व फारसी शब्दों से बदल दिया गया। इसी प्रकार व्यक्तिवाचक संबोधन में प्रयुक्त 'श्री, श्रीयुत तथा श्रील श्रीयुत' जैसी शब्दावली के स्थान पर 'जनाब, मुंशी तथा मौलवी' जैसे आदरसूचक शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। यहाँ तक कि नसीहतनामों के शीर्षक में भी बदलाव आया। बंगाली शीर्षकों के स्थान पर 'तारीखे मोहम्मदिया', 'अकबर - अली - मरीफात', 'बेदार अल-गफलीन' जैसे अरबी शीर्षक प्रयुक्त होने लगे। इस प्रतीकात्मक परिवर्तन में इस्लामीकरण आंदोलन की मनोवृत्ति के दर्शन किए जा सकते हैं। इससे यह भी प्रदर्शित होता है, किस प्रकार बहुदेववाद विरोधी आंदोलन सांस्कृतिक पृथकवाद में परिवर्तित हो गया। (रफीउद्दीन अहमद दी बंगाल मुस्लिम, पृ. 109)

इसी प्रकार की प्रक्रियाएँ राजस्थान और हरियाणा में रहनेवाले मुस्लिम समुदायों में देखी जा सकती थीं। (इस संदर्भ में देखें प्रताप अग्रवाल द्वारा रचित 'स्टडी ऑफ मेओ मुस्लिम') यद्यपि यह मुस्लिम समुदाय आत्मसात् स्वीकार कर चुके थे कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदू व मुसलमानों के बीच जैसे-जैसे संघर्ष बढ़ रहा था, यह संधर्ष बँटवारे के समय तक इस्लामीकरण तथा सांस्कृतिक पृथक्कीकरण की भावना लेकर अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गई थी। बँटवारे के समय गुजरात के खोजा मुसलमानों ने अपने हिंदू नाम व रीति-रिवाजों को छोड़ दिया। (बँटवारे से पूर्व खोजा मुसलमान गणेश पूजा में भाग लिया करते थे, परंतु जब आगा खाँ ने इस्लामीकरण आरंभ किया तो यह सौहार्द मुस्लिमों द्वारा छोड़ दिया गया।)

यह परमावश्यक है कि इस सांस्कृतिक पृथक्कीकरण तथा इस्लामीकरण को मुस्लिम धर्मांधता का आंतरिक भाग न समझकर एक ऐसी सामाजिक प्रतिक्रिया समझा जाए, जो दो समुदायों के अभिजात वर्ग के राजनीतिक संघर्ष के परिणाम स्वरूप पैदा हुई है। इसकी उत्पत्ति में राजनीतिक चेतना का भी योगदान है। परंतु यह कहना बहुत मुश्किल है कि सांस्कृतिक व धार्मिक चेतना राजनीतिक चेतना से पूर्व घटित होती है अथवा बाद में इसको समझना अत्यंत जटिल है। अनुभवों में देखने में आया है कि दोनों समुदायों के

बीच उत्पन्न राजनीतिक संघर्ष ने धार्मिक -सांस्कृतिक पृथकवाद को जन्म दिया।

इस संदर्भ में प्रायः इंडोनेशिया का उदाहरण दिया जाता है। वहाँ के मुसलमान हिंदू संस्कृति से बहुत प्रभावित हैं, उनके राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रतीक हिंदू हैं। यहाँ तक कि उनका राष्ट्रीय नृत्य रामायण पर आधारित है। कई मामलों में उनके नाम हिंदू नामों से मेल खाते हैं। यह सबकुछ सत्य है। इंडोनेशिया में मुसलमान अधिक संख्या में हैं, फिर भी हिंदू और मुसलमानों में कोई झगड़ा नहीं है। वहाँ हिंदू प्रभुत्व का भी कोई खतरा नहीं है, जैसे कि ऊपर बताया जा चुका है। अलग पहचान के तत्त्वों का एकत्रीकरण न केवल एक सामाजिक-राजनीतिक, बल्कि एक धार्मिक व सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है तथा पृथक्कीकरण के ज्ञान का प्रयोग शहरी अभिजात वर्ग से प्रारंभ होता है, न कि ग्रामीण सर्वसाधारण से।

जैसा कि 19वीं शताब्दी के बंगाल के उदाहरण से स्पष्ट है कि वहाँ के मुसलमान इंडोनेशिया के मुसलमानों की तरह आत्मसात् हो चुके थे, परंतु शिक्षा के प्रसार व दोनों समुदायों के अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक संघर्ष में तेजी आने से विचारों में परिवर्तन आना आरंभ हो गया। इसी तरह आज भी उत्तर भारत के शहरी अभिजात वर्ग में सांस्कृतिक पृथक्कीकरण की भावना पहले से अधिक प्रबल होती जा रही है संप्रदायीकरण की प्रक्रिया में तेजी आने से अलगाववाद की भावना जोर पकड़ रही है। परंतु इन हालात में भी ग्रामीण क्षेत्रों में हिंदू व मुसलमान एक-दूसरे के अधिक निकट आ रहे हैं। इनके बातचीत, पहनावा व सामाजिक परिवेश बहुत कुछ एक जैसे हैं। अनेक मानव विज्ञानीय तथा अनुभवजन्य अध्ययनों ने भी यही निष्कर्ष निकाला है। (इम्तियाज अहमद 'कास्ट ऐंड सोशल स्ट्रेटिफिकेशन अमंग मुस्लिम इन इंडिया', दिल्ली-1978)

राजनीतिक प्रक्रियाएँ अथवा मजबूरियाँ कुछ भी हों, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक प्रत्यक्षीकरण की उच्चतम अवस्था में भी मुस्लिम अभिजात वर्ग की पहचान भारत इस्लामिक ही कही जाएगी। भारत के मुसलमान सांस्कृतिक व सामाजिक अर्थों में भारतीयता से अलग नहीं हो सकते। उनकी सामाजिक नैतिकता जितनी इस्लामिक है, उतनी ही भारतीय भी। उनका मुसलमान होना उनके भारतीय होने को निगल नहीं सकता। इस्लामी विश्व में उन्हें भारतीय मुसलमान कहकर संबोधित किया जाता है।

इसके अतिरिक्त तमिलनाडु, केरल, असम, कश्मीर तथा पश्चिम बंगाल (कोलकाता के बिहारी मुसलमानों को छोड़कर) जैसे भारत के दक्षिणी तथा उत्तर-पूर्वी भागों में न केवल ग्रामीण इलाकों में बल्कि शहरी क्षेत्रों में भी हिंदू-मुसलमानों ने आश्चर्यजनक सांस्कृतिक समरूपता स्थापित की है। उनके सामाजिक रीति-रिवाज, सांस्कृतिक व्यवहार तथा भाषा लगभग एक जैसे हैं। केरल में विवाहोत्सव को 'मंगलम' कहा जाता है और वह हिंदू संस्कार की तरह स्वभावतः एकमात्र प्रधान (केरल में विशेषकर) संस्कार है। कश्मीर में सूफी संतों को ऋषि (नूरुद्दीन ऋषि आदि) संज्ञा देकर सम्मानित किया जाता है। हिंदू व मुसलमान दोनों ही इन विषयों में श्रद्धा रखते हैं। कश्मीर में सूफी कवयित्री लालेश्वरी (लाल देवी नाम से प्रसिद्ध) को सर्वसाधारण का सम्मान प्राप्त है। यह नूरुद्दीन ऋषि (नंद ऋषि) की समकालीन हैं। उक्त देवी शिवभक्त थीं। इन्होंने लोकप्रिय भाषा में कविताओं की रचना की। कश्मीरी सहमत में परमात्मा की एकता (तौहीद) के दृढ़ तत्त्व मौजूद हैं।

अतः देखा जा सकता है कि उत्तर भारत के शहरी मुसलमानों के एक छोटे से वर्ग में ही सांस्कृतिक अलगाववाद की भावना मौजूद है, इसलिए इसका बढ़ा- चढ़ाकर वर्णन नहीं करना चाहिए। पहले बताया भी जा चुका है कि सांप्रदायिक भावनाओं को उत्तेजित करने से ही सांस्कृतिक पृथक्कीकरण को बढ़ावा मिलता है अन्यथा नहीं। चुनाव-प्रक्रिया तथा राजनीतिक अवसरवादिता ने पूरे भारत में सांप्रदायिकता के विष को फैलाया है। सांस्कृतिक पृथक्कीकरण को रोकने के लिए पृथक्कीकरण पर आक्रमण न कर सांप्रदायिकता पर प्रहार करना चाहिए, जिससे हिंदू व मुसलमान में आपसी समझ व सद्भाव की वृद्धि हो। इस समस्या के सोद्देश्य निवारण के लिए, हमारी राय में दो पहलुओं को मान्यता देना बहुत जरूरी है। सर्वप्रथम, हमें इस सत्य को मान्यता देनी चाहिए, जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होगा व्यक्ति अपने आप को अन्य समुदायों जाति से अलग समझना शुरू कर देगा। ऐसा सभी जातियों और समुदायों के साथ होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। यहाँ तक कि शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ दलितों में भी जातीयता की भावना उत्पन्न हो रही है। इससे बचने का कोई रास्ता वहीं है, परंतु इसे सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

समस्या का दूसरा पहलू समुदाय के नेतृत्व व अभिजात वर्ग से संबंधित है, अपने हितों की रक्षा के लिए यह सदैव ही दो समुदायों के बीच खींचतान के हालात पैदा करके रखता है। इस प्रक्रिया को समाप्त किया जाना बहुत आवश्यक है। टकराव को सहयोग में परिवर्तित किए जाने की आवश्यकता है। खंडन-मंडन के जगह आपसी बातचीत को प्रमुखता दी जानी चाहिए।

हमें इस सत्य को भी स्वीकार करना चाहिए कि भारत में धर्मनिरपेक्ष तथा प्रजातांत्रिक मार्ग को चुना है। हमारा समाज अनेकत्ववादी है। आधुनिक संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता के बिना प्रजातंत्र स्थिर नहीं रह सकता तथा एक वास्तविक सांस्कृतिक व धार्मिक अनेकत्व के बिना धर्मनिरपेक्षता

हमें इस सत्य को भी स्वीकार करना चाहिए कि भारत में धर्मनिरपेक्ष तथा प्रजातांत्रिक मार्ग को चुना है। हमारा समाज अनेकत्ववादी है। आधुनिक संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता के बिना प्रजातंत्र स्थिर नहीं रह सकता तथा एक वास्तविक सांस्कृतिक व धार्मिक अनेकत्व के बिना धर्मनिरपेक्षता स्थिर नहीं रह सकती। अनेकत्ववाद की शक्तियों को मजबूत बनाने के लिए हमें सभी धर्मों तथा संस्कृतियों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करनी होगी। सहनशीलता की बात कहने मात्र से काम नहीं चलेगा। एक दृष्टि से सहनशीलता एक सकारात्मक गुण है

स्थिर नहीं रह सकती। अनेकत्ववाद की शक्तियों को मजबूत बनाने के लिए (जिस पर धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातंत्र निर्भर है) हमें सभी धर्मों तथा संस्कृतियों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करनी होगी। सहनशीलता की बात कहने मात्र से काम नहीं चलेगा। एक दृष्टि से सहनशीलता एक सकारात्मक गुण है। चूँकि इसका अभिप्राय होता है कि एक वस्तु अस्तित्व में है, इसलिए हम उसे सहन करें। हमें इस दृष्टिकोण से आगे बढ़ना चाहिए। अन्य धर्मों के प्रति सम्मान की भावना पैदा करनी चाहिए, क्योंकि सम्मान एक सकारात्मक गुण है। मुसलमानों को चाहिए कि वे हिंदुत्व के प्रति उतना ही आदर रखें, जितना अपने धर्म इस्लाम के प्रति रखते हैं। इसी तरह हिंदुओं को चाहिए कि वे इस्लाम को संदेह की दृष्टि से न देखें। यह सही है कि हिंदुत्व सिद्धांतवादी नहीं है, परंतु वे सिद्धांतवादी बन जाते हैं। हमें दर्शन से कोई शिकायत नहीं है, परंतु व्यवहार चिंता उत्पन्न करता है। कुरान की उपरोक्त आयतों से सिद्ध किया गया है कि धार्मिक दृष्टि से इस्लाम भी कम सहिष्णु है, परंतु व्यवहार में मुसलमान बहुत कम सहिष्णु होते हैं।

दोनों ही समुदायों के प्रमुख सदस्यों को अपने-अपने समुदायों की आलोचना अवश्य करनी चाहिए। हमारी कोशिश यही रहती है कि दोष दूसरे पर फेंको और अपनी गलतियों को पूरी तरह नजरअंदाज करो। यह एक सामान्य मनोविज्ञान है, हम सभी इस से ग्रसित हैं। हमारे में से कुछ को आगे आना चाहिए और अपनी आलोचना को खुलकर स्वीकार करना चाहिए। यह निसंदेह श्रेष्ठ होगा कि हम सांप्रदायवाद को बुरा समझें। इसे अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक संप्रदायवाद की नकली श्रेणियों में विभाजित करने का कोई लाभ नहीं है। एक से दूसरे को पोषण मिलता है। हमने यह अच्छी तरह देखा है। अगर किसी उदाहरण की जरूरत हो तो शाहबानो तथा विवादित ढाँचा (बाबरी मस्जिद) आंदोलनों को देखा जा सकता है। इन आंदोलनों में मुस्लिम संप्रदायवाद आक्रामक बनकर सामने आया, जिससे हिंदू संप्रदायवाद को बढ़ावा मिला। ऐसा लगने लगा कि दोनों समुदाय एक-दूसरे के पूरी तरह दुश्मन हैं।

हिंदू व मुसलमान, दोनों को मानना चाहिए कि आपसी झगड़े का खेल निहित स्वार्थों द्वारा रचा जाता है और वे (सर्वसाधारण) इसका शिकार बन रहे हैं। अधिकांश नगरों, शहरों तथा गाँवों में सर्वसाधारण शांतिपूर्वक रह रहा है। अगर ऊपर से उपद्रव न कराया जाए तो उनके बीच कोई झगड़ा नहीं है। आम आदमी धार्मिक अधिक व संप्रदायवादी कम होता है, जबकि अभिजात वर्ग संप्रदायवादी अधिक व धार्मिक कम होता है। वैसे भी आम आदमी को तो रोटी के लिए किए जानेवाले संघर्ष से ही फुर्सत नहीं मिलती; झगड़ालू स्वभाव वालों को आम आदमी पर पड़नेवाली विपत्तियों से क्या वास्ता। वे बाबरी मस्जिद व राम जन्म-भूमि जैसे रसहीन भावोत्तेजक मसलों को उघाड़ते हैं व आम आदमी की समस्याओं संबंधी आंदोलनों में रुचि नहीं दरशाते। अगर सांप्रदायिक तनाव कम करना है तो प्राथमिकताओं को उनका उचित व सही स्थान देना आवश्यक है।

धार्मिक-सांस्कृतिक मामलों में मुस्लिम बुद्धिजीवी भी छुई-मुई की तरह अत्यधिक संवेदनशील हो गए हैं। उनकी धार्मिक-सांस्कृतिक भावनाएँ सुदृढ़ हैं, परंतु उन्हें अनावश्यक आवेश के वशीभूत नहीं होना चाहिए। उन्हें बहुसंख्यक समाज की सहिष्णुता का समादार करना चाहिए और समझना चाहिए कि एक अनेकत्ववादी प्रजातंत्र में कोई न कोई खींचतान होती ही रहती है। उन्हें अधिक प्रतिक्रिया जताने की जरूरत नहीं है। इससे तो हालात और बिगड़ जाते हैं। दिमाग को खुला रखने तथा दूसरे को अपना बनाने से समस्या सुलझाने में अधिक सहायता मिलेगी।

हिंदू को भी यह महसूस करना चाहिए कि सांप्रदायिक शांति व सहयोग की भावना से ही देश की उन्नति संभव है। अल्पसंख्यकों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने से देश की अखंडता को खतरा पैदा हो सकता है, परंतु सांप्रदायिकता को भड़काने से तो यह काम और आसान हो जाएगा। बहुसंख्यक समाज को चाहिए कि अल्पसंख्यकों को अपने साथ लेकर चलने का प्रयत्न करें तथा उनकी सांस्कृतिक-धार्मिक भावनाओं के प्रति आदर दरशाएँ। (यद्यपि संस्कृति का मामला अधिक जटिलतापूर्ण है और प्राय: दोनों समुदायों में एक समान है; विशेषकर क्षेत्रीय स्तर पर तो है ही ऐसे मामलों में अल्पसंख्यकों का भावनात्मक होना स्वाभाविक है।)

मुसलमानों को भी महसूस करना चाहिए कि उनके व्यष्टित्व से स्वदेश का तत्त्व बड़ा महत्त्वपूर्ण है तथा इस पर जोर न देना भी उचित नहीं है। सच्ची धार्मिकता तथा वास्तविक विश्वास तुच्छ मानसिकता से कहीं ज्यादा ऊँचे हैं। स्थानीय परंपराओं की अवहेलना करके इनका अंत:शोषण नहीं किया जा सकता। वास्तव में विश्व का कोई भी मुस्लिम समुदाय शुद्ध मुस्लिम समुदाय नहीं है। ऐतिहासिकता की दृष्टि से वह एक पौराणिक गाथा की तरह ही है। उन्हें अपना व्यक्तित्व अतीत पर आधारित नहीं रखना चाहिए। अगर वे वर्तमान विश्व में अपना जीवन अर्थपूर्ण बनाना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि अपनी व्यष्टि चेतना में वर्तमान व भविष्य का भी प्रवेश कराएँ। अत: उन्हें एक कदम आगे ले जानेवाली व्यष्टि के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए, न कि पीछे लौट आनेवाली। इसका अर्थ है कि उन्हें परिवर्तन स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए और सामंतवादी अतीत को छोड़ देना चाहिए। मुसलमानों ने सामांतवादी मूल्यों को इतना अपना लिया है कि वह अपने आप को इनसे मुक्त ही नहीं कर पाते, परंतु कभी न कभी तो यह करना ही पड़ेगा। सामंतवाद और इस्लाम में समानता बहुत कम है।

हिंदू और मुसलमानों में आपसी सहयोग बढ़ाने के लिए कुछ प्रयोगात्मक सुझाव दिए जा सकते हैं। इनको भी कहना आसान व करना मुश्किल है, परंतु हमें यह याद रखना चाहिए कि अच्छा कार्य व संकल्प के सामने कुछ भी मुश्किल नहीं है। नित्य प्रति उठनेवाली समस्याओं से हमें निराश नहीं होना चाहिए। समस्याओं को पैदा होना ही है। आखिरकार हम जुटे तो राष्ट्र निर्माण के कार्य में हैं। यह एक बहुत बड़ा कार्य है। यूरोप में उक्त प्रक्रिया कुछ आसान थी। वहाँ के समुदाय एक धर्म एक भाषा पर आधारित थे। औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया भी प्रगतिशील अवस्था में थी, परंतु हमारा समाज बहुभाषी व मत-मतांतरवादी है और औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया भी बहुत धीमी है।

–*मंथन*, दिसंबर, 1988 (पृ. 15-31)

प्रतिसाद

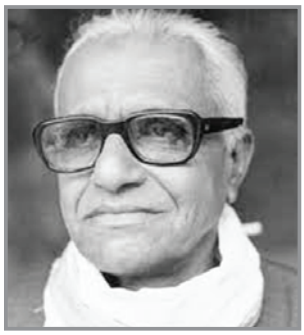

एच.वी. शेषाद्रि

अंग्रेजी शरारत से भी एक कदम आगे है हिंदू-मुस्लिम समस्या

मलकानी जी के शोधपत्र का एक यथार्थवादी विश्लेषण तथा सांप्रदायिकता की समस्या पर स्पष्ट राय

जिस विषय का आपने चयन किया है, वह मेरे जैसे व्यक्ति के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है। आपने तर्क, सामान्य समझदारी और लेन-देन की जिस भावना के स्तर पर शोध प्रस्तुत किया है, वह निस्संदेह आकर्षक है।

कुछ विशेष मुद्दों पर टिप्पणी करना अधिक अनुपयुक्त नहीं होगा। पेज संख्या 1 पर कहा गया है कि "यह हर सद्भाव आपसी समझ से प्रेरित होना चाहिए, गांधीजी ने इस विधि को अपनाया था, परंतु तीसरी पार्टी (अंग्रेजों) का कुचक्र जारी था, इसलिए सफलता नहीं मिली।"

परंतु सचाई यह है कि अंग्रेजों के जाने के बाद भी अल्पसंख्यक समस्या समाप्त नहीं हुई। बँटवारे की भयानक क्षति चुकाने से समस्या पर परदा पड़ जाएगा, यह आशा भी झूठी साबित हो गई। यह सब दरशाता है कि कुछ और शक्तिशाली कारक भी इसके लिए जिम्मेदार थे।

एक अन्य पृ. 24 पर कहा गया है-"सभी अल्पसंख्यक हितों की रक्षा के लिए अनुपातीय-प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जाए, जैसी कि संविधान-सभा के मुस्लिम सदस्यों ने माँग की थी।"

यहाँ भी इतिहास साक्षी है कि अंग्रेजों द्वारा लागू किया गया सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का शरारतपूर्ण सिद्धांत अंततः बँटवारे में परिणत पृथकतावाद की जड़ में मौजूद था।

आपके शोध में सर्वसाधारण स्तर तक भावनात्मक एकता लाने के लिए भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका का कोई जिक्र नहीं है। इस पहलू के संबंध में हमीद दलवई के कार्यकाल का प्रमुख स्तंभ यही था कि भारतीय मुसलमानों को अपनी धार्मिक नातेदारी के बावजूद अन्यों की तरह स्थानीय भाषाओं को अपनाना चाहिए।

अब कुछ सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत हैं। अनुभव बताता है कि सामान्य हालात में औसत मुसलमान व ईसाई हिंदू सामाजिक व सांस्कृतिक मुख्यधारा में खुशी-खुशी सम्मिलित हो सकते हैं, परंतु इसके साथ एक बड़ी 'अगर' लगी है-वह है, अगर उन्हें सांप्रदायिक तथा पृथक् मुट्ठी में जकड़कर रखनेवाले सांप्रदायिक तथा धार्मिक नेतृत्व से मुक्त रखा जाए। दुर्भाग्य से अनेक राष्ट्रीय राजनीतिक दल भी सामूहिक मुस्लिम वोटों पर नजर रखते हुए उन्हें दुष्प्रेरित करते हैं। पृथकतावादी मुस्लिम नेतृत्व तथा देश के सामान्य राजनीतिक नेतृत्व का यह अपवित्र गठबंधन रुकावट के लिए प्रमुख रोड़े हैं। एक तरीके से यह आंशिक रूप में पूर्व वर्षों की मुस्लिम लीग व अंग्रेज धुरी की स्थिति से मिलती-जुलती स्थिति है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियों का अल्पसंख्यक उन्माद नहीं उतरेगा, तब तक मौजूदा मुस्लिम कट्टरपंथी नेतृत्व संपोषण बंद नहीं होगा और आम लोगों पर उनकी पकड़ ढीली नहीं होगी।

अनुभव यह भी सिखाता है कि जहाँ भी हिंदू पर्याप्त रूप से संगठित हुए और अपने जातिवाद, छुआछूत जैसे अंदरूनी भेदभाव को समाप्त किया, स्थानीय मुसलमानों ने मुख्यधारा में आना शुरू कर दिया। दूसरी ओर, जहाँ हिंदू कमजोर और छोटे-छोटे समूहों में बँटे होते हैं, मुसलमान स्थिति का शोषण करते व राजनीतिज्ञ उन्हें दुष्प्रेरित करते हैं। यहाँ श्री सी. अच्युत मेनन की यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मुस्लिम समुदाय का सुधार बहुसंख्यक समाज, अर्थात् हिंदुओं की

जिम्मेदारी है।

अब जहाँ तक मुस्लिम चिंतन का संबंध है, एक नए राज्य पाकिस्तान को आक्रामक मुस्लिम पृथकतावाद का सफल प्रतीक प्रायोजित किया जा रहा है। घटनाचक्र के हृदयपटल पर अस्थिरता पैदा करने वाला यह एक अन्य तत्त्व है।

अगर इस देश की सभी संतानों के बीच हृदयों की बंधनकारी एकता स्थापित करनी हो तो कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारक भी मौजूद हैं, जिनकी गहराई में जाने की आवश्यकता है। आपने कई उपयोगी सुझाव दिए हैं। इन सुझावों को व्यवहार में लाने के लिए इन कारकों के संपर्क में आना ही पड़ेगा।

-*मंथन*, अप्रैल-1989 (पृ. 9-10)

प्रतिसाद

न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर (रिटा.)

मैं एक अलग एजेंडा तैयार करूँगा

कई कारणों से अल्पसंख्यक समस्या पर आपके लंबे परिपत्र को पढ़ने का समय नहीं निकाल सका। मैं अपने इलाज के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सालय में था। वहीं आपका परिपत्र पढ़ने का समय मिला। इतना कहा जा सकता है कि यह दिलचस्प, कई जगह प्रभावकारी, दिशाबोधक व कुल मिलाकर ज्ञानवर्धक है। विभिन्न विश्वासों व अंधविश्वासों वाले भिन्न समुदायों के सामंजस्यपूर्ण निर्वाह के लिए मजबूत दलीलें दी गई हैं।

यद्यपि कई स्थलों पर प्रकट किए गए विचारों से मैं सहमत नहीं हूँ, सामान्यतया आपका विश्लेषण मुझे अच्छा लगा। हिंदू-मुसलमानों व ईसाइयों के धर्म कुछ भी कहते हों, परंतु उनके मिलकर रहने की यथेष्ट संभावनाएँ मौजूद हैं। भारत में पंथनिरपेक्षता की अनिवार्यता का अर्थ सभी धर्मों का एक साथ विरोध करना नहीं है, बल्कि सांसारिक मामलों में दखलंदाजी किए बगैर प्रत्येक धर्म का मित्रतापूर्ण 'सहअस्तित्व' है। आपने कार्यक्रम की जो रूपरेखा प्रस्तुत की है, कुछ आकर्षक तो है, परंतु मैं इससे पूरी तरह सहमत नहीं हो सकता। अवसर मिले तो मैं एक अन्य कार्यक्रम तैयार कर सकता हूँ। इसमें विश्व में उदीयमान कानूनी व्यवस्था में मान्यता प्राप्त मानव अधिकारों को मूलाधिकार के रूप में स्थापित किया जाएगा। इस प्रकार किसी भी धर्म के लिए मानवतावाद, संवेदनशीलता तथा समाजवादी व अन्य आधारभूत अधिकारों का परित्याग मुश्किल हो जाएगा, जैसे आधुनिक नागरिक संहिता को गढ़ा जाना आवश्यक है, वैसे ही महिलाओं के लिए न्याय शामिल करना भी जरूरी है। इसमें आधुनिक अवधारणाएँ शामिल की जाएँगी, जो कुछ इस्लामिक, कुछ हिंदू, कुछ आधुनिक व कुछ पंथनिरपेक्ष होंगी। मैंने इस विषय पर अपने लेखों में विचार किया है। मैं इस बात से सहमत हूँ कि सामूहिक धर्मांतरण नियंत्रित करने के लिए सरकार विशुद्ध सार्वजनिक कानून-व्यवस्था व धर्मनिरपेक्षता की दृष्टि से कार्य करें। राजनीतिक पार्टियों को भी सांप्रदायिक पार्टी बनने से रोका जाए। इसके लिए सावधानीपूर्वक मानदंड तैयार करने की जरूरत है। गुप्त रूप से परिचालन करके विनाश पैदा करने वाले विदेशी धन पर नजर रखी जाए, विशेषकर जब वह धर्म को प्रभावित करता हो।

कुल मिलाकर आप द्वारा प्रस्तावित विचार-विमर्श का मैं स्वागत करता हूँ। आशा है, आमंत्रित विशेषज्ञ एक संरचनात्मक फार्मूला तैयार करेंगे।

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 24-25)

भारत में पंथनिरपेक्षता की अनिवार्यता का अर्थ सभी धर्मों का एक साथ विरोध करना नहीं है, बल्कि सांसारिक मामलों में दखलंदाजी किए बगैर प्रत्येक धर्म का मित्रतापूर्ण सहअस्तित्व है

प्रतिसाद

समस्या सुलझाई जाए आपसी समझ व प्रेम से

मुफ्ती शमसुद्दीन अहमद

मलकानी जी के शोध पत्र में उठाए गए मुद्दों का एक सूक्ष्म विवेचन तथा उन पर तार्किक राय

दीनदयाल शोध संस्थान के उपाध्यक्ष श्री के.आर. मल्कानी द्वारा रचित 'सांप्रदायिक समन्वय : कठिनाइयाँ और उनके हल' शीर्षांकित परिपत्र पर प्रार्थित टिप्पणी/सुझाव के संदर्भ में मेरा उत्तर इस प्रकार है-

सर्वप्रथम सहपत्र में वर्णित-'समस्या को आपसी समझ व प्रेम से सुलझने' की भावना की मैं प्रशंसा करता हूँ। जहाँ तक उद्देश्य का संबंध है, वहाँ दो भिन्न राय नहीं हो सकती, अर्थात् अल्पसंख्यक समस्या का न्याय पर आधारित समाधान केवल प्रेम तथा सही समझ द्वारा ही संभव है।

आगे बढ़ने से पूर्व, पूरी तरह यह महसूस किया जाना चाहिए कि यह विषय जटिल व संवेदनशील है। इसमें उत्ताधिकार की वंशावली तथा धार्मिक-ग्राह्यता के प्रति रिक्त संदेह व बेसमझी भी शामिल हो गई है। अत: गैरसमझी पैदा न होने देने अथवा दूसरों की भावना पर चोट न लगने देने के लिए पूरी सावधानी का पालन करना आवश्यक है, नहीं तो उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। इनसे भी ऊपर, न्याय तथा निष्कपटता अत्यंत आवश्यक हैं, क्योंकि इनके बिना यह प्रयास व्यर्थ साबित हो जाएगा। ऊँचे उपदेशों, दार्शनिक विचारों राजनीतिक जोड़-तोड़ आदि की कोई कमी नहीं है, परंतु निष्ठा व न्याय का अभाव है।

इसके अतिरिक्त सभी संबंधितों को ध्यान में रखकर हम सब समान हैं, इसका विचार करना चाहिए तथा किसी को भी दूसरे से अपनी शर्तें आरोपित नहीं करनी चाहिए। वास्तव में हम एक बड़े परिवार के सदस्य हैं, हमारा कर्तव्य जुड़ा हुआ है। हम एक ही नाव में बैठे हैं, अत: हम एक साथ ही तैरें अथवा डूबेंगे।

अब मैं इन सुझावों की ओर आता हूँ, जो परिपत्र में दिए गए हैं-

जहाँ तक पश्चिम के 'सेक्यूलरिज्म', इसकी ऐतिहासिक भूमिका तथा विश्लेषण का संबंध है, व्यापक रूप में इससे कोई मतभेद नहीं है। चर्च व वैज्ञानिक चिंतन के आपसी संघर्ष में ध र्म विरोधी रुखों को प्रोत्साहन मिला। वास्तव में ऐसा संघर्ष पैदा ही नहीं होना चाहिए था, विज्ञान का कार्यक्षेत्र धर्म के कार्यक्षेत्र से बिल्कुल अलग है। इतना होने के बावजूद कुछ प्रतिबद्धताएँ हैं। उदाहरण के लिए, लेखक ने इस्लाम का हवाला देते हुए बताया, "वे (मुसलमान) इस्लामी आदेशों के अनुसार इस्लाम के आलोचकों को समाप्त करने में बिल्कुल नहीं हिचकिचाते।" (पृ.... अंतिम पैरा) यह इस्लाम की सही तसवीर नहीं है। इस्लाम स्वस्थ आलोचना का स्वागत करता है, परंतु अपमानजनक भाषा का प्रयोग करना तथा/अथवा पैगंबर या पवित्र कुरान को गाली देना एक बिल्कुल ही अलग बात है।

हिंदू व मुसलमानों की लड़ाइयाँ हिंदुत्व इस्लाम की लड़ाइयाँ नहीं थीं। यद्यपि शैली व्यंजनापूर्ण है, परंतु यह सही कहा गया है, "मुस्लिम शासन के दौरान भी संघर्ष उत्पीडित व उत्पीड़क के बीच था। मुस्लिम पीर व हिंदू संत के बीच नहीं।" (पेज संख्या...) वास्तव में ये लड़ाइयाँ तो मुसलमानों के भारत आने से पूर्व भी मौजूद थीं। उपनिवेशवादी शासन के साथ लिखा गया इतिहास अभिप्रेरित है। अत: हमें इसे अधिक स्पष्ट करते हुए विसंगतियों को निकाल देना चाहिए। वास्तव में युद्ध दो शासकों के बीच सत्ता, धन और भूमि के लिए होता था। कई बार युद्ध करनेवाले अलग-अलग धर्म के होते थे, परंतु कई बार एक धर्म के भी होते थे। यह बात स्पष्टता से बताई जानी चाहिए, क्योंकि दोनों समुदाय के बीच कटुता का यह एक प्रमुख कारण है। ये सभी

लड़ाइयाँ राजनीति से हुई-चाहे मुसलमान और मुसलमान अथवा हिंदू व हिंदू के बीच अथवा मुसलमान व हिंदुओं के बीच हों।

यह स्वीकार कर लिये जाने पर कि इन लड़ाइयों का धर्म से कोई संबंध नहीं था तो इस अध्याय को सदा के लिए बंद कर दिया जाना चाहिए। किसी शासक को यह नहीं कहना चाहिए कि वह अन्य समुदाय को तिरस्कृत करे। मुसलमानों को यह सुझाव देना कि तुम मुहम्मद बिन कासिम, मुहम्मद गोरी, बाबर अथवा औरंगजेब आदि को याद ही न करो, क्योंकि यह न केवल अनुपयोगी है, बल्कि आगे के कार्य के लिए नुकसानदेह भी। यह सलाह तो हिंदुओं को हेमू, राणा साँगा अथवा शिवाजी के लिए भी दी जा सकती है, क्योंकि इन सभी ने दिल्ली की हुकूमत के खिलाफ लड़ाइयाँ लड़ीं। इन सभी ने अपने क्षेत्रों, राज्यों की रक्षा अथवा विस्तार के लिए युद्ध किए। वास्तव में इतिहास-वर्णित प्रत्येक युद्ध की व्यवस्था करना अनुपयोगी है, क्योंकि ऐसा करने से परिस्थितियाँ भड़केंगी, जिससे राष्ट्रीय एकता, सामंजस्य की हानि होगी। अत: इतिहास के शेर को सोते रहने देना ही श्रेयस्कर है। इससे वातावरण मैत्रीपूर्ण व भविष्य उज्ज्वल होने में सहायता मिलेगी।

भारतीय (सिद्धांत व व्यवहार के) संदर्भ में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए, जैसा कि इस लेख में किया भी गया है कि धर्म निरपेक्षवाद का अर्थ है-'सभी के लिए न्याय तथा धर्म अथवा विश्वास आदि को कारण न बनाकर भेदभावरहित व्यवहार' (पृष्ठ)। मौजूदा हालात हमारी पवित्र-घोषणाओं के अनुरूप नहीं हैं।

इस्लाम के बारे में जो कुछ बताया जाता है और उदाहरण दिए जाते हैं, हमेशा ही सही नहीं होते, अत: जो कुछ भी इस्लाम के बारे में बताया जाए, वह इसके स्रोतों-पवित्र कुरान व हदीस-के मुताबिक होना चाहिए। कवियों, सूफियों व संतों का सम्मान भी अवश्य करना चाहिए, परंतु किसी भी प्रामाणिक निष्कर्ष के लिए वे मानक अथवा तराजू नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त जब भी कुरान का हवाला दिया जाए, तो विद्वान् लेखक का कर्तव्य है कि वह अपने विचारों का आधार सही सूचना व समझ को बनाए। उदाहरण के लिए, एक जगह आपने कहा है-"इस्लाम में हिंदुओं के चार वर्णों की तरह लोगों के चार वर्ग हैं-

(1) उल-उल-इल्म (ज्ञानवान), (2) उल-उल-अम्र (शासक अर्थात् क्षत्रिय योद्धा), (3) जर्रा (व्यापारी); (4) मुजादर (मजदूर)।" यह बिल्कुल गलत है। इस्लाम में हिंदुत्व की तरह कोई जाति (अथवा वर्ग) प्रणाली (वर्णाश्रम) नहीं है। चूँकि यहाँ इस बात पर विस्तार से विचार व्यक्त करने की गुंजाइश नहीं है, इसलिए विद्वान् लेखक से अनुरोध है कि वे अपनी सूचना में सुधार करें। इस तरह जैसा कि आपने एक और उदाहरण दिया है कि "गऊ का मांस जहर तथा गऊ का दूध औषधि होता है, परंतु पवित्र कुरान में कहीं नहीं लिखा है। साथ ही आप एक अन्य दूसरी जानकारी को भी सही करें कि पैगंबर (उन्हें शांति प्राप्त हो) की किसी भी पत्नी का नाम हिंद नहीं था।

इधर-उधर से अन्य समानताएँ भी एकत्र की गई हैं, परंतु उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। धार्मिक लोगों की (विधमयों के विरुद्ध) एकता के लिए ईश्वर में विश्वास, मानवीय कृत्यों के नैतिक प्रभाव, सत्य, न्याय, प्रेम, सभी प्राणियों के प्रति स्नेह, ईमानदारी, नैतिक मूल्य, अन्य प्राणियों के जीवन, संपत्ति, धर्म और संस्कृति के प्रति सम्मान आदि समान धार्मिक उपदेश आवश्यकता से अधिक पर्याप्त हैं।

राष्ट्रीय नायकों का प्रश्न उठाया गया है, परंतु सही दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं किया गया। अशोक, हर्षवर्धन, समुद्रगुप्त आदि की तरह मुगलों (बाबर से औरंगजेब तक) ने भी भारत को मजबूत व एकीकृत किया और इस देश को सुंदर कला, साहित्य और वैभवशाली संस्कृति दी। औरंगजेब (कई लोग जिसकी नीतियों के कुछ पहलुओं से मतभेद रखते हैं) के समय में तो भारत का नक्शा इतना बड़ा था, जितना कि इतिहास में कभी नहीं हुआ। धार्मिक संबद्धता के अलावा भारत के राष्ट्रीय दृष्टिकोण से क्या दिल्ली के मुगल साम्राज्य पर शिवाजी के आक्रमण को उचित ठहराया जा सकता है? कृपया बिना किसी पक्षपात तथा पूर्वग्रह के मूल स्थिति का जायजा लें।

अब श्री रामचंद्रजी और श्रीकृष्णजी के प्रश्न पर आते हैं। इसका जिक्र आपने किया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, इन्हें हिंदुत्व का 'धार्मिक नेता' कहा जा सकता है। वे ऐसे ही हैं, जैसे बुद्धों के लिए महात्मा बुद्ध और जैनियों के लिए महावीरजी। उन्हें भारत का राष्ट्रीय नेता नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसमें तो अन्यों के अलावा हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई व पारसी भी शामिल हैं। इसलिए निस्संदेह मौलाना मुहम्मद अली, महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा हाल ही के इतिहास निर्माता बहादुरशाह जफर, झाँसी की रानी आदि हमारे राष्ट्रीय नेता कहे जाने योग्य हैं।

एक और बात, जिसका स्पष्टीकरण आवश्यक है, वह है पैगंबर मुहम्मद (उन्हें शाति प्राप्त हो) की स्थिति। सर्वप्रथम, मुझे इस तरीके पर गंभीर एतराज है, जिस तरीके से विद्वान् लेखक ने उनका चित्रण प्रस्तुत किया है। मुस्लिम विश्वास के अनुसार वे खुदा के अंतिम पैगंबर थे। अन्य विश्वासों का पालन करनेवाले सत्पुरुष भी उन्हें 'हजरत मुहम्मद' संबोधित करते हैं। मेरे हिंदू भाई प्राय: ऐसा करते हैं अथवा मुहम्मद साहिब कहकर दूसरे, मुस्लिम

इस्लाम के बारे में जो कुछ बताया जाता है और उदाहरण दिए जाते हैं, हमेशा ही सही नहीं होते, अत: जो कुछ भी इस्लाम के बारे में बताया जाए, वह इसके स्रोतों-पवित्र कुरान व हदीस-के मुताबिक होना चाहिए। कवियों, सूफियों व संतों का सम्मान भी अवश्य करना चाहिए, परंतु किसी भी प्रामाणिक निष्कर्ष के लिए वे मानक अथवा तराजू नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त जब भी कुरान का हवाला दिया जाए, तो विद्वान् लेखक का कर्तव्य है कि वह अपने विचारों का आधार सही सूचना व समझ को बनाए

विश्वास के अनुसार मुहम्मद (उन्हें शांति प्राप्त हो) एक पैगंबर थे, जो रहस्यमय आयतों के प्राप्तकर्ता थे, न कि परिपत्र में वर्णित, नेपोलियन और लेनिन की तरह अरब के एक राष्ट्रीय नेता। अत: लेखक को अपनी जानकारी में संशोधन करना चाहिए। आप खालिद बिन वालिद, तारिक बिन जैद, मुहम्मद अल-फतेह अथवा सलाहुद्दीन अयूबी को अरबों के राष्ट्रीय नायक कह सकते हैं।

जहाँ तक धार्मिक पूजा-स्थलों का संबंध है, मुसलमानों का सिद्धांत है कि जिस जमीन के टुकड़े को ताकत से, गैर-कानूनी ढंग से और इनसे भी बुरा एक मंदिर को गिरा अथवा नष्ट करके प्राप्त किया गया हो, उस पर मस्जिद नहीं बननी चाहिए। कोई कृत्य किंवदंतियों अथवा कल्पनाओं पर आधारित न होकर समुचित प्रमाण पर आधारित हो तो मुसलमान उस स्थान को खाली करने में एक मिनट भी नहीं लगाएँगे। इसी तरह कोई भी मस्जिद किसी भी व्यक्ति अथवा समुदाय अथवा सरकारी संस्था के कब्जे में नहीं रहनी चाहिए, क्योंकि इससे श्रद्धावानों के पूजा करने के अधिकार को क्षति होती है। इस समस्या के 'न्यायपूर्ण व मान्य हल' के लिए एक ऐसा कानून बनाया जाना जरूरी है। इस समस्या को दूर करने के लिए भारतीय स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त, 1947 को मौजूद स्थिति को मान्यता व स्वीकृति दे दी जाए। इससे असंतोष भड़कना और झगड़ों का फैलना रुक जाएगा।

वस्त्रों, खाने की आदतों आदि के सुझाव अथवा मुसलमानों को हिंदू (भारतीय बताकर) नाम धारण करने के लिए कहना और कुछ नहीं, अल्पसंख्यकों को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति का परिचायक है, इसे 'भारतीयकरण' की प्रक्रिया भी कह सकते हैं। वास्तव में यही एक विषैली प्रवृत्ति है, जिसने सभी अल्पसंख्यक समुदायों, विशेषकर मुसलमानों को संदेहशील व चिड़चिड़ा बना दिया है। यह प्रवृत्ति एक स्थायी रोग में परिणत हो गई है। इसका इलाज तभी हो सकता है, जब हम यह समझें कि अन्य समुदायों को भी अपनी सांस्कृतिक पृथकता बनाए रखने का समान अधिकार है। सूत्र है-'जीओ और जीने दो।'

भारत एक संयुक्त संस्कृति का देश है। इस बुनियादी सचाई को याद रखना जरूरी है। अत: अल्पसंख्यकों की जीवनरेखा-प्रत्येक समुदाय की सांस्कृतिक पृथकता का संरक्षण व उसकी मान्यता हमारी नीति व राष्ट्रीय कार्यक्रमों की आधारशिला होना चाहिए। चूँकि प्रजातंत्र में अल्पसंख्यक समुदाय हमेशा ही एक कमजोर हालात में होते हैं, अत: उनकी संदेहशीलता समझ में आती है। बहुसंख्यक समाज की विशाल हृदयता ही अल्पसंख्यकों में विश्वास पैदा कर सकती है, जैसा कि पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने कहा-भारत में एक अनोखी संयुक्त-संस्कृति है, लेकिन अनेकता में एकता है। हमें गर्व होना चाहिए कि हमारे यहाँ अनेक धर्म, संस्कृतियाँ, जातियाँ व भाषाएँ हैं, फिर भी हम सब भारतीय हैं। आइए, अब हम सुझाई गई कार्ययोजना पर कुछ विचार करें-

1. भारतीय इतिहास की पुनर्रचना सांप्रदायिक सद्भाव पैदा करने के दृष्टिकोण से होनी चाहिए, न कि 'फूट डालो और शासन करो' की या किसी भी समुदाय के आत्मबल को गिराने के उद्देश्य से।
2. हमारी भावी पीढ़ी, विशेषकर स्कूल जानेवाली पीढ़ी को मूल्याधारित नैतिक शिक्षा अथवा प्रत्येक समुदाय को उसके धर्म की शिक्षा दी जानी चाहिए, न कि एक विशेष धर्म अथवा संस्कृति की शिक्षा।
3. मंजूर है।
4. 'मृतप्राय' अल्पसंख्यक आयोग को नवजीवन व सांविधानिक स्तर दिया जाए, ताकि वह निर्धारित लक्ष्य तक पहुँच सके, शिकायतों को दूर कर सके और अन्याय को हटा सके।
5. तथा
6. यह सचाई सामने लाए जाने की जरूरत है कि भारतीय मुस्लिमों के लिए मुगल, पठान, तुर्की, हिंदेशिया, पाकिस्तान तथा सऊदी अरब अनुकरणीय आदर्श नहीं हैं। किसी भी व्यवस्था के लिए पवित्र कुरान तथा हदीस ही मान्य हैं, मुसलमानों के लिए अन्य कुछ भी बंधनकारी नहीं है। भारत एक हिंदूभूमि नहीं है। यह मुसलमान, हिंदू, सिख, ईसाई व बौद्ध की एक समान भूमि है। अत: पूर्वधारणा ही गलत है। यह स्वागत योग्य है कि मुसलमान, हिंदू व अन्य धार्मिक समुदाय पर्वों पर एक-दूसरे को बधाई देते हैं और प्रत्येक समुदाय अपनी सीमा के अंतर्गत दूसरे के साथ मिलकर आनंद में भागीदार बनते हैं।
7. धर्मांतरण अथवा धर्म-परिवर्तन व्यक्तिगत रुचि का मामला है। हमारे संविधान ने सभी को विश्वास व धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी दी है, परंतु इसे ताकत, धमकी अथवा धन का लालच देकर प्रभावी नहीं बनाना चाहिए। इसे उत्सव की शक्ल देकर बड़े स्तर पर नहीं मनाना चाहिए, क्योंकि उससे अन्य संप्रदाय की भावनाएँ भड़कती हैं।
8. अल्पसंख्यकों के अनुपातीय प्रतिनिधित्व (उन्हीं सदस्यों द्वारा जो वास्तव में प्रतिनिधित्व करते हैं और संबंधित समुदाय के विश्वासपात्र हैं।) का स्वागत है। यह सिद्धांत न केवल राजनीति में, बल्कि सार्वजनिक अथवा निजी, नागरिक अथवा सैनिक, पुलिस प्रथा प्रशासनिक सेवाओं में भी अपनाया जाना चाहिए। आशा है, इसे ईमानदारी से लागू करने पर अल्पसंख्यक समस्या मुख्यत: स्वयं ही सुलझ जाएगी।
9. अगर विदेशी धन का प्रयोग शिक्षा, आर्थिक विकास अथवा मानवीय सेवाओं के लिए प्रयुक्त किया जाता है तो इसमें एतराज नहीं होना चाहिए। यह उचित ही है कि इसका उपयोग घोषित उद्देश्य के लिए होना चाहिए, न कि गुप्त उद्देश्य के लिए।
10. ईमानदारी से कार्य किया जाए तो सार्क एक अच्छा मंच साबित हो सकता है, अगर यह विश्वसनीय हो जाए तो इससे बाधित उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।
11. संविधान की धारा 30 का भावनात्मक के साथ-साथ पूरी ईमानदारी से इसका पालन करना चाहिए।
12. इसमें सभी की सहमति है कि हमें एक-दूसरे के धर्म का सम्मान करना चाहिए और एक-दूसरे के धर्म अथवा उसके प्रवर्तक के लिए अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

-*मंथन*, अप्रैल-1989 (पृ. 11-16)

प्रतिसाद

के.एस. सुदर्शन

हिंदू-मुस्लिम बंधुता की राह में कुछ समस्याएँ

पंथनिरपेक्षता की मूलभूत अवधारणा से अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की धारणा का कोई तालमेल ही नहीं है। एक तर्कसम्मत विवेचन

आपके तर्कपूर्ण लेख को सावधानीपूर्वक पढ़ने के बाद यह अनुभव किया कि 'अल्पसंख्यक समस्या' के नाम से जाने जानी वाली समस्या को गंभीर विश्लेषण में कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं को छुआ ही नहीं गया है। अपने निष्कर्षों को मैं निम्न प्रकार से वर्णित करता हूँ-

सर्वप्रथम, निवेदन है कि 'अल्पसंख्यक' व 'बहुसंख्यक' नामकरण ही धर्म-निरपेक्षता के सिद्धांत से मेल नहीं खाता। कथित अवधारणा में राज्य ने जाति-पाँति, भाषा व धर्म को आधार न मानकर अपने सभी नागरिकों को समान व्यवहार की गारंटी दी हुई है। इन शब्दों का प्रयोग अंग्रेज लोग किया करते थे, समाज को अधिक-से-अधिक संभव समूहों में बाँटने के लिए। वे समाज के एक वर्ग को दूसरे वर्ग के खिलाफ खड़ा करते थे। उन्होंने न केवल धार्मिक अल्पसंख्यक बनाए, बल्कि भाषागत व जातिगत और यहाँ तक कि प्रजाति गत वर्गों को भी पैदा किया। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली का प्रयोग करके हम न केवल साम्राज्यवादी व विस्तारवादी शक्तियों की कठपुतली बन जाएँगे, बल्कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति में उनके हितों को पूरा करेंगे।

जैसा कि आपने 'अल्पसंख्यक आयोग' को 'मानव अधिकार आयोग' में प्रत्यावर्तित कर दिया जाए, यह सुझाव संख्या 4 में कहा, "मैं इस पर सहमत हूँ, परंतु आपके सुझाव संख्या में भी अल्पसंख्यक हितों की बात है, अत: उससे सहमत होना संभव नहीं है, क्योंकि अल्पसंख्यक बहुसंख्यक वाली अवधारणा पूर्णत: समाप्त होनी चाहिए।"

हमारे देश के सभी धार्मिक समुदायों में पिछड़े हुए वर्ग हैं। कुछ आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, कुछ सामाजिक रूप से, जिसे अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजाति कहा जाता है, क्योंकि ये सामाजिक स्तर पर बहुत कमजोर हैं। इन वर्गों के उत्थान के लिए संविधान में विशेष प्रावधान रखे गए। परंतु उन्हें ईमानदारीपूर्वक लागू करने से नए तनाव पैदा हो गए, जिससे समाज की एकता खतरे में पड़ गई। इन प्रावधानों को लागू करने में विलंब उचित नहीं है, परंतु साथ-साथ यह देखना भी आवश्यक है कि अनुसूचित व जनजाति के जो लोग आर्थिक व सामाजिक उन्नति के एक विशेष स्तर पर पहुँच गए हैं, उन्हें ये रियायतें जारी न रख उन्हीं के समुदाय के उन अन्य लोगों को दी जाएँ, जिनको इनकी अधिक आवश्यकता है।

अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए सुरक्षित इन प्रावधानों के अलावा कुछ ऐसे ही प्रावधान समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए भी सुरक्षित रखे जाएँ। इन रियायतों का आधार जाति अथवा समुदाय नहीं होना चाहिए। ये शिक्षा क्षेत्र के लिए होनी चाहिए, ताकि योग्य व्यक्ति साधन के प्रभाव में समुचित शिक्षा से वंचित न रह सकें।

आपके लेख में आग्रहपूर्वक बताया गया है कि सभी धर्मों का बीजतत्त्व समान है, परंतु इतिहास व भूगोल से उत्पन्न टकराव ने उन्हें अपनी धुरी से हटा दिया। महत्त्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों ने अपने आर्थिक व राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु धर्म का शोषण किया। इस प्रकार धर्म बदनाम हुआ। परंतु जब धर्म और राजनीति को मिलाया जाता है तो नए टकराव पैदा होते हैं। ईसाइयत व इस्लाम के साथ ऐसा ही हुआ।

आपने बताया कि पोप के अधिकारों में किस प्रकार वृद्धि हुई, किस तरह वह सम्राट् की भूमिका अदा करने लगे, परंतु कुछ घटनाकाल

के बाद यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों ने उसकी आज्ञाओं को मानने से इनकार किया, जिसमें विज्ञान के उदय सबसे प्रमुख भूमिका में रहा, ऐसा माना जाता है कि तभी से ईसाइयत का ह्रास होना शुरू हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं है कि चर्च अपने सम्मान की स्थिति को कमजोर कर चुका था, परंतु पश्चिमी शक्तियों के प्रभाव को बढ़ाने में अब यह उनका मित्र बना हुआ है। ईसाई व गांधीवादी अर्थशास्त्री डॉ. जे.सी. कुमारप्पा की यह टिप्पणी निरर्थक नहीं है कि पश्चिमी राष्ट्रों की चार भुजाएँ हैं-स्थल सेना, जल सेना, वायु सेना व चर्च। चर्च अपने कार्य के बदले अपने विस्तार और रखरखाव के लिए पश्चिमी राष्ट्रों से धन मिलता है। आज भारत में चर्च मिशन समाज के विभिन्न वर्गों में भेद पैदा कर राजनीतिक खेल खेल रहा है। अगर आपका नवीन सुझाव मान लिया जाए तो उनका यह खेल खत्म किया जा सकता है, क्योंकि आपने अपने सुझाव में विदेशी धन पर पाबंदी लगाने की बात कही हैं।

इस्लाम का मामला कुछ दूसरी तरह का है। इस्लाम के ताने-बाने में राजनीति इस प्रकार गुँथी हुई है कि जैसे ही धर्म को राजनीति से अलग करने की बात कही जाती है, मुसलमानों के दिलोदिमाग में शंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस्लाम का उदय उस समय हुआ था, जब पैगंबर मुहम्मद ने मदीना गणतंत्र की स्थापना की और एबीसीनिया में शरणार्थियों को वापिस बुला लिया। उन्होंने मुहाजिरों (आप्रवासियों) तथा अंसारों (मददगारों) को एक इस्लामिक भाईचारे में पिरोया तथा हिचा के 8वें वर्ष तक चारों दिशाओं में अपना सैनिक अभियान जारी रखा। विजेता बनकर उन्होंने मक्का में प्रवेश किया। मक्का में प्रविष्ट होने के बाद पैगंबर ने उतनी ही मेहनत की जितनी कि एक सम्राट को करनी पड़ती है। अभियान संगठित करना, सुनवाई करना, व्याख्यान देना, राजदूत भेजना पत्र लिखवाना, न्याय करना और कानून की व्याख्या करना आदि सभी कार्य उन्होंने किए। कोई भी विषय हो सलाह लेने और देने के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। वे अपने द्वारा संस्थापित समुदाय के आध्यात्मिक व भौतिक उभय नेता थे। अपनी मृत्युपर्यंत उन्होंने इस समुदाय के बाहरी व भीतरी मामलों को सँभाला। तब से यह समुदाय लगातार बुद्धि को प्राप्त हो रहा है।

बड़ी आसानी से समझा जा सकता है कि कुरान में प्रकाशित अधिकांश ज्ञान स्थानीय संदर्भ अथवा एक विशेष परिस्थिति की भूमिका में है। पैगंबर की मृत्यु के तुरंत बाद उत्पन्न धर्मत्याग तथा अवज्ञा को कुचलने के लिए उनके उत्तराधिकारी खलीफाओं के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे मुहम्मद द्वारा वर्णित आयतों व दिशा-निर्देशों की ही शरण लें और उनकी व्याख्या करें। अपने कार्य की पूर्ति हेतु उनका निर्दयी होना स्वाभाविक था। इस प्रक्रिया में धर्म और राजनीति आपस में इस तरह घुल-मिल गए कि उनके सिरे को अलग-अलग पकड़ना ही असंभव हो गया है।

जब हम यह कहते हैं कि धर्म के नाम पर लूट व हत्या की गई तथा इससे धर्म बदनाम हुआ तो हम किसी-न-किसी मात्रा में आंशिक सत्य का ही प्रयोग कर रहे होते हैं। जब तैमूर ने यह कहा, 'लड़ाई की लूट एक मुसलमान के लिए उतनी ही वैध है, जितना कि माँ का दूध,' तो उसने मुहम्मद के ही इन शब्दों को दोहराया-'हमारे मुकाबले में आए लोगों के लिए युद्ध की लूट वैध नहीं है, इसलिए कि अल्लाह ने हमारी कमजोरी व दयनीयता को देखा और इसे हमारे लिए वैध बनाया।' (हदीस 4327) अब पैगंबर से अधिकार प्राप्त कर अगर तैमूर यही बात कहे तो क्या हम उसके कार्य को धर्म विरुद्ध कह दोषारोपण कर सकते हैं। वास्तव में काफिरों अथवा बहुदेववादियों को लूटना मुस्लिम धर्म की केंद्रीय अवधारणा है। उम्माहों की अर्थव्यवस्था में शताब्दियों तक इसने घुरी का काम किया है। अल्लाह ने लूट को मुसलमानों के लिए वैध बनाया-"तो जो कुछ तुमको गनीमत (मुकाबले) में हाथ लगा है, उसको हलाल समझकर खाओ और (आगे के लिए) अल्लाह का भय रखो।" (कुरान 8-66)

आपका यह कहना सही है कि जब उद्देश्य व्यापार हो तो विभिन्न समाजों का आमने-सामने खड़ा होना और आपसी आदान-प्रदान शांति व सहयोग पर आधारित होना चाहिए, ताकि एक-दूसरे को लाभ पहुँच सके, परंतु जब उद्देश्य लूटना, मारना, जलाना व बलात्कार हो तो इससे या तो दोनों में से एक पक्ष नष्ट हो जाएगा अथवा झगड़ा लंबी अवधि तक चलेगा और जब लूट, हत्या बलात्कार व आगजनी को धार्मिक मान्यता दी जाए तो न केवल परिणाम बहुत भयंकर हो सकते हैं, बल्कि इन कुकृत्यों को करते हुए अपराधियों में कोई करुणा का भाव भी उत्पन्न नहीं हो सकता। इस तरह के निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हमें कुरान की कुछ आयतें देखनी होंगी-

(i) अविश्वासी व पाखंडियों के विरुद्ध प्रयास करो, उनके साथ सख्ती से पेश आओ, उनके घर उजड़ जाएँ, उनके इस दुर्भाग्यपूर्ण अभियान के कारण वे समाप्त हो जाएँ।

(ii) मुहम्मद अल्लाह के (भेजे हुए) रसूल हैं और जो लोग उनके साथ हैं, वे काफिरों के हक में बड़े सख्त हैं (और) आपस में रहमदिल हैं।

(iiii) (ऐ ईमानवालो!) इन लोगों से लड़ो, यहाँ तक कि अल्लाह तुम्हारे ही

इस्लाम का मामला कुछ दूसरी तरह का है। इस्लाम के ताने-बाने में राजनीति इस प्रकार गुँथी हुई है कि जैसे ही धर्म को राजनीति से अलग करने की बात कही जाती है, मुसलमानों के दिलोदिमाग में शंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस्लाम का उदय उस समय हुआ था, जब पैगंबर मुहम्मद ने मदीना गणतंत्र की स्थापना की और एबीसीनिया में शरणार्थियों को वापिस बुला लिया। उन्होंने मुहाजिरों तथा अंसारों को एक इस्लामिक भाईचारे में पिरोया तथा हिचा के 8वें वर्ष तक चारों दिशाओं में अपना सैनिक अभियान जारी रखा। विजेता बनकर उन्होंने मक्का में प्रवेश किया। मक्का में प्रविष्ट होने के बाद पैगंबर ने उतनी ही मेहनत की जितनी कि एक सम्राट को करनी पड़ती है

हाथों इनको सजा दे, इनको जलील करे, और इन पर तुमको जीत दे, और कितने ही ईमानवालों के दिलों को ठंडा करे। (6-14)

(iv) बेशक जो लोग कहते हैं कि अल्लाह मरियम का पुत्र मसीह हैं, यह लोग काफिर हैं। अल्लाह (ही) की अबादत करो कि वह मेरा (भी) और तुम्हारा (भी) परवरदिगार है (और शक नहीं कि)। जिसने (किसी को) अल्लाह का साझीदार ठहराया (तो) बहिश्त उस पर अल्लाह ने हराम की और उसका ठिकाना दोजख है और जालिमों का कोई भी सहायक नहीं। (5-72)

(v) ईमानवालों को चाहिए कि वह ईमानवालों को छोड़कर काफिरों को अपना दोस्त न बनाएँ, जो वैसा करेगा तो उसे अल्लाह से कुछ (सरोकार) नहीं। हाँ, अगर किस तरह पर उनसे सुरक्षा लेकर अपने आप को बचाओ, इस प्रकार तुम खुद से सावधान रहो (अंत में) अल्लाह की तरफ (लौटकर) जाना है। (3-28)

(vi) (इस पर इब्राहीम ने) कहा, क्या फिर तुम अल्लाह के सिवाय ऐसों को पूजते हो, जो कि न तुमको कुछ फायदा पहुँचा सकें और न कुछ नुकसान। अफसोस तुम पर और इन चीजों पर जिनको तुम अल्लाह के सिवाय पूजते हो, उन सब पर जुल्म करो। क्या तुम्हें तब भी कोई मतलब नहीं? (21-66, 67)

(vii) ईमानवालों का मददगार अल्लाह हैं, उनको अँधेरे से निकालकर रोशनी में लाता है और जो काफिर है, उनके दोस्त शैतान हैं, उनको रोशनी से निकालकर अँधेरे में ढकेलते हैं। वे लोग (दोजख की) आग वाले (नारकीय) हैं, और वे हमेशा दोजख में ही रहेंगे। (2-257)

(viii) जो ईमानवाले हैं, वे तो अल्लाह की राह में लड़ते हैं और जो काफिर हैं, वे शैतान की राह में (लड़ते हैं) तो तुम शैतान के तरफदारों से लड़ो, शैतान की रणनीति हमेशा कमजोर होती है। (4-76)

(ix) (हे पैगंबर!) मैं तुमको बताऊँ कि अल्लाह के नजदीक कौन ज्यादा बुरा बनने के लायक है, यानी वह जिन पर अल्लाह ने लानत की और उन पर (अपना) प्रकोप उतारा! उनमें किन्हीं को बंदर और सूअर बना दिया, (अल्लाह को छोड़कर) शैतान को पूजने लगे थे, इसी दर्जे के लोग खराब ठहरे और सीधी राह से हट दूर भटक गए। (5-60)

(x) औरतें जो (किसी के) निकाह में हैं, वह आपके लिए मना है, सिवाय उनके, जो तुम्हारे अधिकार में आई हों। इनके सिवाय दूसरी सब औरतें तुम्हारे लिए हलाल हैं, जिनको तुमने जेहाद के पवित्र युद्ध में पकड़ा है, चाहे वे विवाहित हों या अविवाहित, वह आपके दाहिने हाथ है (4-24)

अगर कोई ईमान रखनेवाला लूट, हत्या व बलात्कार करते हुए अपने कृत्य के समर्थन में बोले और उसके विपक्ष में खड़ा हो, कोई अविश्वासी हो तो क्या यह कहा जाएगा कि उसने अपने धर्म के खिलाफ कार्य किया? क्या उस पर धर्म-विरुद्ध कार्य करने का दोष लगेगा? यह हो सकता है, अगर इस्लामी विश्व अथवा कम-से-कम भारत के ही उलेमा तथा न्यायविद् इन परिस्थितिजन्य आयतों को संदर्भ रहित घोषित करें। क्या यह संभव है?

सैयद अमीर अली ने अपनी पुस्तक 'दि स्पिरिट प्रॉफ इस्लाम' में हदीस के उदाहरण दिए हैं, जिसमें पैगंबर ने कहा, "आप एक ऐसे युग में हैं, जिसकी आज्ञा दी हुई है, अगर तुमने उसको छोड़ा तो तुम नष्ट हो जाओगे। इसके बाद एक समय आएगा, जिसमें जो आज्ञा दी गई है, उसका दसवाँ अंश पालन करनेवाले पुनर्स्थापित हो जाएँगे। मैं इस हदीस की प्रामाणिकता को नहीं बता सकता, परंतु सैयद अमीर अली के अनुसार यह जमा-उत-तिरमजी तथा मिशकत में पाई जाती है, अगर यह सुन्नी धर्मशास्त्रियों को मान्य हो तो क्या उस दमाश को छाँटने का समय नहीं आ गया है, ऐसा करने से आधुनिक युग के ईमान लानेवालों को स्थापित होने का मौका मिलेगा। ऐसा करने से उन हिंदुओं तथा गैर-मुसलमानों के संदेह का भी निवारण होगा, जिन्हें इतिहास के दौर में इस्लाम का प्रशंसनीय अनुभव प्राप्त नहीं हुआ।

बदले हुए हालात में इस्लाम को नई व्याख्या देने के प्रयास हुए हैं, परंतु रूढ़िवादियों ने उसका जबरदस्त प्रतिवाद किया। अफगानिस्तान में एक अरबी पैदाइश के जलालुद्दीन अफगानी, जो काफी लंबे अरसे तक काहिरा में अल-प्रजहार विश्वविद्यालय में शिक्षक भी रहे, उन्होंने अतीत से हमेशा घिरे रहने की आदत को छोड़ने पर जोर दिया है, ऐसा करने से आधुनिक ज्ञान के संयोग से बौद्धिक उन्नति का अवसर मिल सकता है। उन्होंने दावा किया कि सुन्नी इस्लाम में मानवीय आत्मा के उच्चतम शिखरों तथा आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार लचीला होने का गुण मौजूद है

बदले हुए हालात में इस्लाम को नई व्याख्या देने के प्रयास हुए हैं, परंतु रूढ़िवादियों ने उसका जबरदस्त प्रतिवाद किया। अफगानिस्तान में एक अरबी पैदाइश के जलालुद्दीन अफगानी, जो काफी लंबे अरसे तक काहिरा में अल-प्रजहार विश्वविद्यालय में शिक्षक भी रहे, उन्होंने अतीत से हमेशा घिरे रहने की आदत को छोड़ने पर जोर दिया है, ऐसा करने से आधुनिक ज्ञान के संयोग से बौद्धिक उन्नति का अवसर मिल सकता है। उन्होंने दावा किया कि सुन्नी इस्लाम में मानवीय आत्मा के उच्चतम शिखरों तथा आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार लचीला होने का गुण मौजूद है, परंतु यह तभी हो सकता है, जब मुस्लिम विचारधारा अपने आपको उन बेड़ियों से मुक्त करे, जिनमें यह शताब्दियों से जकड़ी हुई है। उन्होंने तुर्की के तानाशाह खलीफा के शासन का विरोध किया, क्योंकि मुसलमानों का बौद्धिक विकास को दबाया। ये सज्जन

भारत भी आए थे और अपने तर्क के बल से अनेक मुस्लिम धार्मिक नेताओं को प्रभावित करके गए, परंतु तुर्की के उलेमाओं ने उनके विचारों का प्रतिरोध किया। उन्होंने आरोप लगाया कि जलालुद्दीन अविश्वासी है तथा धार्मिक कानून को तोड़ने-मरोड़नेवाला है। तब अफगानी ने उन्हें सार्वजनिक शास्त्रार्थ के लिए ललकारा, अंत: तुर्की अधिकारियों ने उन्हें तुरंत तुर्की छोड़ने के आदेश जारी कर दिए।

हमारे देश में भी सर सैयद अहमद खाँ ने कुरान की नई व्याख्या की और उस आधार पर सुधार का रास्ता खोला। सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उन्होंने हदीस तथा फिख (इस्लाम का मौखिक पवित्र कानून) को यह कहकर रद्द कर दिया कि ये हजारों वर्ष पूर्व के समाज के लिए तो ठीक थे, परंतु आज इनकी उपयोगिता नहीं है। यहाँ तक कि कुरान को भी तर्क के आधार पर समझना चाहिए। कुछ उपदेश अब लागू व बंधनकारी नहीं माने जाने चाहिए। उनके द्वारा की गई इस्लाम की व्याख्या आधुनिक विचार के समकक्ष बना देती है। इसके साथ-साथ उन्होंने अंग्रेजों द्वारा मिस्र को तुर्की से छीनने व उस पर कब्जे का समर्थन किया, जिस कारण सैयद द्वारा चलाए गए धार्मिक सुधार आंदोलन की लोकप्रियता समाप्त होने लगी। वे भारत के मुसलमानों में धर्म निरपेक्षता उत्पन्न करना चाहते थे, परंतु टर्की की खिलाफत करने से इस्लामी भाईचारे की भावनाएँ महक उठीं, जिससे आंदोलन की गति रुक गई।

आज भी हालत यही है, जो व्यक्ति सुधार के प्रयत्न करेगा, उसे जबरदस्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है, इसलिए सभी समाजों में समाज-सुधारकों की हालत भी तो ऐसी ही होती है। क्या हम मुस्लिम बुद्धिवादियों से आशा कर सकते हैं कि वे इस मौके पर सामने आएँ और ठीक समझते हों तो एक शक्तिशाली सुधारवादी आंदोलन आरंभ करें।

इसी भाँति आपका यह कहना-"भारतीय इस्लाम मौलवी व मौलाना को जानता था, परंतु खलीफा को नही," आंशिक सत्य है। केंद्र में स्थित एक सशक्त खलीफा की अवधारणा भारतीय मुसलमानों के मस्तिष्क को प्रभावित करती रही है। उत्तर-पूर्वी भारत में मुसलमानों के प्रवेश के साथ-साथ अब्बासिद वंश में खलीफत अवधारणा का प्रकाश महमूद गजनवी ने अब्बासिद खलीफा के आध्यात्मिक नेतृत्व के आगे समर्पण किया। वह इस बारे में स्पष्ट था कि विश्वबंद्य खलीफा के समक्ष समर्पण तथा 'काफिर' भारतीय भूमि पर आक्रमण व उस पर कब्जा दोनों बातें एक-दूसरे से जुड़ी हैं। उसे तत्कालीन खलीफा अल कादिर से सम्मान मिला था। सोमनाथ को लूटने पर उसे दुबारा अनेक पदवियों और श्रेष्ठ विशेषणों से सम्मानित किया गया। उसने सिक्कों पर खलीफा का नाम खुदवाने का व्यवहार आरंभ किया। आगामी खिलजी व तुगलक वंशों ने भी इस व्यवहार को अपनाया और शुक्रवार की प्रार्थनाओं में खलीफा का नाम पुकारा जाने लगा।

परंतु मुगल शासन में यह परंपरा समाप्त हो गई। मुगल सल्तनत की गिरावट के साथ-साथ मराठा व जाटों के नेतृत्व में हिंदू शक्ति का उदय हुआ। शाह वलीउल्लाह देहलवी ने इस्लाम का पहला आधुनिक पुनर्जन्म आंदोलन आरंभ किया। नक्शबंदी सूफी संप्रदाय के वलीउल्लाह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'भारत में इस्लाम खतरे में है' का नारा बुलंद किया। वे सिर्फ यही नहीं चाहते थे कि मुसलमान फिर दिल्ली का तख्त हासिल करें, बल्कि यह भी चाहते थे कि मुस्लिम विश्व के लिए एक एकीकृत खलीफा हों, ताकि वह समुदाय को आध्यात्मिक व सांसारिक दिशा-निर्देश दे सकें तथा विभिन्न मुस्लिम शासकों पर थोड़ा-बहुत नियंत्रण भी रख सकें। उसने भारत पर आक्रमण करने के लिए न केवल अहमद शाह अब्दाली को आमंत्रित किया, बल्कि अवध के रूहेला नवाब को भी कहा कि आक्रमण की स्थिति में उसकी सहायता करे।

उसके बेटे शाह अब्दुल अजीज (1748-1824) ने पिता से भी एक कदम आगे बढ़कर भारत को दार-उल-हर्ब घोषित कर दिया। उसने धन व मददगार एकत्र करने के लिए रूहेलखंड, दोआब, अवध व बिहार में अपना प्रभुत्व फैलाया और अपने एक नजदीकी रिश्तेदार सैयद अहमद बरेलवी (1776-1831) को नए खलीफा का पद सँभालने के लिए तैयार किया। अब्दुल अजीज के भक्तों ने भावी खलीफा को मान्यता प्रदान की। उत्तर भारत की गहन यात्रा के दौरान सैयद अहमद बरेलवी ने मुस्लिम जगत् की सेवा करने की कसमें उठाईं। 1826 ई. में हज से लौटने के बाद उसने जिहाद के लिए सिपाहियों की भर्ती तथा धर्म-प्रचार का कार्य प्रारंभ किया। नौशेरा में अपनी सरकार की स्थापना की, जो बाद में पेशावर स्थानांतरित हो गई। उसने 1831 में 80,000 सिपाहियों को सहायता से महाराजा रणजीत सिंह पर आक्रमण किया। उसकी सेना में भारत व स्थानीय जनजातियों से एकत्र किए हुए मददगार शामिल थे। बालाकोट के इस युद्ध में सैयद अहमद मारा गया।

शाह अब्दुल अजीज 1824 में मर चुका था। अब उसके प्रपौत्र मुहम्मद इशाक ने बागडोर सँभाली। उसने वली उल्लाह आंदोलन को दुबारा संगठित किया। सैयद अहमद् को पठानों का समर्थन नहीं मिला था। उनकी नाराजगी दूर करने के लिए उसने दरगाहों की आलोचना करनी बंद की तथा हनाफी संप्रदाय के पक्ष में शरियत को नई व्याख्या दी। पठानों का मतभेद प्रमुखत: इन दोनों बातों को लेकर था। इस कार्यक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग था, तुर्की की आटोमन सल्तनत से संबंध स्थापित करना। इस उद्देश्य के लिए वह भारत से तुर्की के लिए रवाना हुआ, परंतु वहाँ पहुँचने से पहले ही 1946 में मक्का में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

बंगाल में शरियत उल्लाह का फजिया आंदोलन भी इसी किस्म का था। इसमें जमींदारों के शोषण के खिलाफ गरीब किसानों की आवाज को उठाया गया। बलीउल्ला तथा सैयद अहमद से प्रेरणा ग्रहण कर मौलवी करामात अली ने बिहार में शुद्ध इस्लाम का आंदोलन उठाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्मशास्त्री व न्यायविद् नेताओं को मुस्लिम राजनीतिक शक्ति ह्रास होने का पछतावा रहा है तथा भारत में मुस्लिम शासन की पुनर्स्थापना के लिए शुद्ध इस्लाम का समानांतर आंदोलन चलाया जाता रहा है। इन आंदोलनों में मुस्लिम मस्तिष्क को खलीफात की अवधारणा से पूरित रखा गया। यही कारण था कि 1621 के दौरान महात्मा गांधी ने खलीफात आंदोलन को समर्थन दिया है व उसके बदले में उन्हें अंग्रेजों को भारत छोड़ने व स्वराज्य स्थापित करने के लिए मुस्लिम समर्थन मिला, परंतु मुस्लिम दिमाग

किस तरह कार्य करता है, इसका अंदाजा गांधीजी के ही विश्वासपात्र सहयोगी अली बंधुओं में से एक के इस बयान से लगाया जा सकता है-"पापी से पापी मुसलमान भी गांधी से अच्छा है, क्योंकि वह कम-से-कम इस्लाम और पैगंबर में विश्वास तो करता है।" खिलाफत आंदोलन को गांधीजी द्वारा समर्थन मिलने से अंततोगत्वा जिन्ना को पाकिस्तान की माँग करने का बहाना मिला, क्योंकि उसके अनुसार वह एक रूढ़िवादियों का आंदोलन था। उस समय जिन्ना भी संभवत: पाकिस्तान बनने के प्रति अधिक आशावादी नहीं थे।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राजनीतिक दलों ने सामूहिक मतों पर दृष्टि रखते हुए धर्मांध मुसलमानों की परितुष्टि आरंभ कर दी, जिससे कट्टरता को बढ़ावा मिलने लगा। परिणाम यह हुआ कि आज आरिफ मुहम्मद व सिकंदर बख्त के मुकाबले शहाबुद्दीन व इमाम बुखारियों का अधिक सम्मान हो रहा है।

अगर हम शामी (सेमेटिक) धर्मों की हिंदू धर्मों के साथ विभिन्न समानताओं को खोजने का प्रयास करें तो इससे हमें कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इसका प्रमुख कारण यह है कि दोनों के गमनमार्ग मूलत: अलग-अलग हैं। हिंदुत्व का विकास कई शताब्दियों में उन्नत हुए विश्वासों का समूह है। यह वेदों की स्वाहा व स्वधा ध्वनियों, उपनिषदों को दार्शनिक संकल्पनाओं, योगानुशासन, वेदांत के आत्मानुसंधान व भावमयी भक्ति के पूर्ण समर्पण सामंजस्य से उभरकर निकला है। दूसरी ओर इस्लाम एक अनुदार केंद्रीय अनुशासन से बँधा है। यह परमात्मा की आवाज कुरान व पैगंबर की आवाज हदीस के चारों ओर घूमता है। इसने जो भी संकल्पनाएँ बाहरी स्रोतों से ग्रहण कीं अथवा नकल की, उन्हें इन्हीं दो वाणियों के अधीन बना दिया, यहाँ तक कि अपने निबंध में आपने गीता का जो श्लोक (10-20) उद्धृत किया है, उस पर भी कट्टरपंथी मुसलमान 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण स्वयं काल के अधीन होने के बावजूद कहते हैं-'मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ', जबकि कुरान में कहा गया है-"वही पहली है और वही अंतिम भी।" आचार्य विनाबा भावे ने इसी प्रकार के पद विभिन्न धर्मग्रंथों से छाँटने में बड़ी मेहनत की, परंतु वे अपने सर्वोदय कार्य के लिए मुस्लिम कार्यकर्ताओं को आकृष्ट नहीं कर पाए। दोनों धर्मों में मौलिक समानताएँ दरशाने के लिए हिंदू, कुरान में से अनेक आयतें ढूँढ़ सकते हैं, परंतु इस कृत्य से वे मुसलमान मस्तिष्क को प्रभावित नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी नजर में 'आयत-उल-सैफ' ने उन्हें 'मन्सुख' किया है, अर्थात् उनके अर्थ को तोड़ा-मरोड़ा है। तलवार की आयत में कहा गया है-"जब पवित्र महीने गुजर जाएँ, मूर्ति उपासक जहाँ भी मिलें, उन्हें कत्ल कर दो, उन्हें बंदी बना लो, उनका धन छीन लो और उन्हें प्रत्येक घात के लिए तैयार करो, परंतु अगर वे पछतावा करें, ईमान पर आएँ और कर अदा करें तो उन्हें आजाद कर दो। लो अल्लाह क्षमाशील व अनुकंपाशील भी है।"

यह अकेली आयत हिज्रा के 8वें वर्ष में उतरी थी और इसने कुरान की पिछली 124 आयतों को रद्द कर दिया था। वे रद्द की गई आयतें ही आमतौर से मुस्लिम सहनशीलता के पक्ष में उद्धृत की जाती हैं।

सूफी कवियों के उद्धरण देने का भी कोई विशेष लाभ नहीं है। सोलहवीं शताब्दी में भारत में अबुल फजल के अनुसार 17 प्रकार के सूफी संप्रदाय मौजूद थे, जिनमें से 8 (हबीबी, जुमेदी, तासी, चिश्ती, सुहरावर्दी, कादिरी, नक्शबंदी व फिरदौसी) कट्टरपंथी थे व शरियत से अच्छी तरह जुड़े हुए थे। भारतीय सूफीवाद में हिंदू विरोधी वाद-विवाद मयूद्दीन चिश्ती से आरंभ हुआ। पंजाब में प्रारंभिक सूफियों व प्रारंभिक चिश्तियों ने बड़े स्तर पर धर्मांतरण की शुरुआत की। पुरातन पंथियों में शत्तारी संप्रदाय ही एकमात्र ऐसा संप्रदाय है, जिसने भारतीय योग के तत्त्वों को सीधा ग्रहण किया। इसके अनुयायी योगियों की तरह जंगलों में रहते थे, फलों व जड़ी-बूटियों की हलकी-फुल्की खुराक लेते थे तथा शरीर को कठिन तपस्या के अधीन करते थे। यह समन्ववादी तत्त्व इसकी पूजा-पद्धति में भी दृष्टिगोचर होता है।

परंतु भारत में सूफियों को सदैव यह खतरा बना रहता था कि कहीं वे चुनौती-पूर्ण हिंदू तत्त्ववाद में ही न खो जाएँ, इसलिए वे मुसलमानी कट्टरपन से समझौता करते हुए चलते थे। इस्लामी धार्मिक इतिहास में परमात्मा की सर्वव्यापी और उसकी प्रभुता के रहस्य में सदा ही तनाव रहा है। भारत में यह तनाव मध्य-मार्ग के माध्यम से शिथिल हुआ, क्योंकि यहाँ इस्लाम का प्रचार सूफियों द्वारा किया गया-शरियत के नियमों का पालन करते हुए।

चौदहवीं शताब्दी में कश्मीर के लल्ला डेड ने शैववाद का संपर्क नक्शबंदी सूफीवाद से कराया, परंतु बाद के घटनाक्रम में 16वीं व 17वीं शताब्दियों के दौरान नक्शबंदी सूफीवाद हिंदुत्व के विरुद्ध गैर-समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाता चला गया। यह परिवर्तन ख्वाजा बकुई-बिल्लाह तथा शेख अहमद सरहिंदी की शिक्षाओं में विशेष रूप से देखा जा सकता है। शाहवली अल्लाह से पूर्व के मीमांसकों में शेख अहमद सरहिंदी का नाम सबसे अधिक जाना जाता है। यहाँ से हदीस में विद्वत्ता की मुस्लिम परंपरा

सूफी कवियों के उद्धरण देने का भी कोई विशेष लाभ नहीं है। सोलहवीं शताब्दी में भारत में अबुल फजल के अनुसार 17 प्रकार के सूफी संप्रदाय मौजूद थे, जिनमें से 8 कट्टरपंथी थे व शरियत से अच्छी तरह जुड़े हुए थे। भारतीय सूफीवाद में हिंदू विरोधी वाद-विवाद मयूद्दीन चिश्ती से आरंभ हुआ। पंजाब में प्रारंभिक सूफियों व प्रारंभिक चिश्तियों ने बड़े स्तर पर धर्मांतरण की शुरुआत की। पुरातन पंथियों में शत्तारी संप्रदाय ही एकमात्र ऐसा संप्रदाय है, जिसने भारतीय योग के तत्त्वों को सीधा ग्रहण किया। इसके अनुयायी योगियों की तरह जंगलों में रहते थे, फलों व जड़ी-बूटियों की हलकी-फुल्की खुराक लेते थे

का आरंभ हुआ तथा चरमोत्कर्ष पाया गया वली उल्लाह तथा उत्तर 19वीं शताब्दी की अहले-हदीस में।

शेख अहमद सरहिंदी के अनुसार इस्लाम व कुफ्र (भारत के संदर्भ में हिंदुत्व) परस्पर विरोधी, प्रतिरोधी अत: एक-दूसरे को काटनेवाले हैं। परस्पर विरोधी एकात्म स्वीकार करना चाहिए कि इस्लाम की सुरक्षा व इसका सम्मान ईमान न कभी लानेवालों व उनके विश्वास के अपमान पर खड़ा है। जो काफिरों से मित्रता करता है, उनका सम्मान तथा उनका संग करता है अपने धर्म के सम्मान को गिराता है। उसके अनुसार मुसलमानों के लिए यह आवश्यक है कि वे काफिरों को काबू में रखें और उनकी मूर्तियों की अवमानना करें। नई प्रस्थापनाएँ, विशेषकर उदारवाद की ओर झुकी हुई-को इस्लाम के उत्कर्ष के दिनों में सहन किया जा सकता है, परंतु (राजनीतिक) गिरावट के दिनों में नहीं। जजिया जिम्मियों की सुरक्षा हेतु लगाया हुआ गणना-कर नहीं है, अपितु अपमान करने के उद्देश्य से है। राम और रहीम को एक समान समझना बेवकूफी की हद है। पैदा करनेवाला व पैदा होनेवाला दोनों एक समान नहीं हो सकते। राम और कृष्ण के जन्म से पूर्व खुदा को इन नामों से किसी ने नहीं पुकारा, फिर इनके जन्म के बाद उसे ये नाम कैसे दिए जा सकते हैं। यद्यपि वह जानता था कि पैगंबर ने भारत को दिशा प्रदान करने की कृपा नहीं की, फिर भी उसका विचार था कि संभवत: वे यहाँ आए, परंतु उन पर ध्यान नहीं दिया गया, जैसा कि उसकी समझ में आया-हिंदुत्व न केवल इस्लाम का प्रतिद्वंद्वी है, बल्कि इसका एक दुश्मन भी। इसलिए उन्होंने मुसलमानों से कहा कि वे काफिर व उनके व्यवहारों को कोसना जारी रखें, क्योंकि कोसना दुश्मनी की घोषणा होता है।

शेख सरहिंदी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों ने इस्लाम की कट्टरपंथी व अंतरंग विभिन्न धाराओं को एक धारा में बदल दिया। इससे धार्मिक नियमों व यौगिक अनुभवों के बीच का तनाव कम हुआ। इससे सूफियों व उलेमाओं के बीच का बचा-खुचा मतभेद भी कम हुआ, जिससे उनके गठबंधन को मजबूती मिली।

वली उल्लाह ने यह भी प्रचार किया कि हिंदुस्तान में इस्लाम संकट के दौर से गुजर रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है, यहाँ के मुसलमानों ने हिंदुओं से मित्रता करके गैर-इस्लामी रंग-ढंग को अपना लिया है, जिससे इस्लाम भ्रष्ट हो गया है। परंतु वे (मुसलमान) एक 'सर्वोच्च धर्म' के अनुयायी हैं, अत: उनका फर्ज है कि वे अपने धर्म में पैदा हुए भ्रष्टाचार को रोकें। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु हिंदू-क्रियाओं के विरोध में प्रचंड अभियान चलाना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि मुसलमान अपने आपको सामान्य भारतीय समाज का अंग न समझें। उनको यह नहीं भूलना चाहिए कि वे एक बड़ी मुस्लिम बिरादरी के आवश्यक अंग हैं। डॉ. आई.एच. कुरैशी लिखते हैं-"वली-उल्लाह नहीं चाहते थे कि मुसलमान इस उपमहाद्वीप की सामान्य जनता से घुल-मिल जाएँ। वह चाहते थे कि वे शेष मुस्लिम दुनिया से अपने संबंध बनाकर रखें। इससे उनकी आशाएँ तथा आदर्श विश्व-इस्लाम समुदाय द्वारा विकसित परंपराओं में टिके रहेंगे।"

अजीज अहमद अपनी विद्वत्तापूर्ण पुस्तक 'स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन इंडियन एन्वायरनमेंट' में कहते हैं-एक दृष्टि से सरहिंदी भारत पाकिस्तान उपमहाद्वीप में मौजूद आधुनिक इस्लाम का जन्मदाता है। सबसे अलग,

आत्म- विश्वास से पूर्ण, पुरातन पंथी, सुधार की आवश्यकता के प्रति गंभीरता से सचेत, परंतु नवीनीकरण से परहेज रखनेवाला, अनुमानों को सिद्धांत माननेवाला, व्यवहार में डरावना तथा दूसरी सभ्यताओं से संपर्क रखने में संकीर्ण-ये हैं इसकी कुछ विशेषताएँ। इसमें कुछ भी अचंभे की बात नहीं है। आधुनिक मुस्लिम भारत के सर सैयद अहमद खान, इकबाल, अब्दुल कलाम आजाद जैसे बौद्धिक नेताओं द्वारा प्रदत्त व धार्मिक तथा राजनीतिक समस्याओं के हल यद्यपि एक-दूसरे से बहुत भिन्न रहे हैं, परंतु ये सभी शेख अहमद सरहिंदी के प्रभाव में थे।

आज भी सुन्नी मुस्लिम बौद्धिकता देवबंद के मौलवियों द्वारा नियंत्रित होती है। यह केंद्र नक्शबंदी संप्रदाय के अब्दुल अजीज के शिष्यों द्वारा चालू किया गया था। इस विधि से सामान्य मुसलमान की मानसिकता का निर्माण किया जाता है। यही कारण है कि वे भारतीय नाम परंपराओं व पर्वों को नहीं अपनाते। इसमें उन्हें अपनी अलग पहचान छिपने का खतरा दीखता है। यही कारण है कि पूरे देश में एक क्रमबद्ध अभियान चलाया जाता है, जिससे उस हिंदू स्पर्श को नष्ट किया जा सके, जिससे मुसलमान प्रभावित हो जाते हैं। यहाँ राजस्थान के मेहरात मुसलमानों का उदाहरण विचारणीय है। ये सभी चौहान वंशी राजपूत थे। इन्होंने पृथ्वीराज चौहान की हार के बाद मुहम्मद गोरी के दबाव में इस्लाम कबूल किया, परंतु हिंदू व मुसलमान दोनों ही नाम अपनाए। ईद व मुहर्रम के साथ दीवाली व दशहरा मनाए। प्रतिक्रियास्वरूप कट्टरपंथी मुस्लिम नेताओं ने उन्हें मजबूर किया कि इस्लाम की पवित्रता बनाए रखने के लिए वे सभी गैर-इस्लामी संबद्धताओं का परित्याग करें। मेहरात मुसलमानों के वर्ग में इसकी प्रतिक्रिया हुई, उन्होंने यही उचित समझा कि सभी मुस्लिम संबद्धताओं को समाप्त किया जाए और अपने मौलिक धर्म की ओर लौटा जाए। उन्होंने अपने मूल से अलग होना

आज भी सुन्नी मुस्लिम बौद्धिकता देवबंद के मौलवियों द्वारा नियंत्रित होती है। यह केंद्र नक्शबंदी संप्रदाय के अब्दुल अजीज के शिष्यों द्वारा चालू किया गया था। इस विधि से सामान्य मुसलमान की मानसिकता का निर्माण किया जाता है। यही कारण है कि वे भारतीय नाम परंपराओं व पर्वों को नहीं अपनाते। इसमें उन्हें अपनी अलग पहचान छिपने का खतरा दीखता है। यही कारण है कि पूरे देश में एक क्रमबद्ध अभियान चलाया जाता है, जिससे उस हिंदू स्पर्श को नष्ट किया जा सके, जिससे मुसलमान प्रभावित हो जाते हैं। यहाँ राजस्थान के मेहरात मुसलमानों का उदाहरण विचारणीय है

उचित नहीं समझा।

विभिन्न उलेमा इस बात पर सहमत नहीं हैं कि कौन मुस्लिम है और कौन काफिर। पाकिस्तान बनने के बाद लाहौर में हुए अहमदिया दंगों के सिलसिले में पाकिस्तान सरकार ने न्यायमूर्ति मुनीर व न्यायमूर्ति कयानी को मिलाकर एक दो सदस्यीय जाँच-आयोग का गठन किया। उलेमाओं से जब यह पूछा गया कि मुसलमान कौन है? तो उत्तर इतने विभिन्न थे कि न्यायमूर्ति मुनीर को लिखना पड़ा-उलेमाओं द्वारा दी गई समस्त परिभाषाओं पर विचार कर हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि कोई भी दो उलेमा इस मूलभूत प्रश्न पर एकमत नहीं हैं। अगर हम अपनी परिभाषा दें और वह परिभाषा उन परिभाषाओं के अनुकूल न हो, जो उलेमाओं ने दी है तो वे एकमत से हमें इस्लाम से बाहर निकालने का निर्णय भी ले सकते हैं, परंतु अगर हम किसी भी एक उलेमा द्वारा दी गई परिभाषा को स्वीकार कर लें तो उस अलिम की नजरों में तो हम मुसलमान रहेंगे, परंतु अन्य उलेमा हमें काफिर घोषित कर सकते हैं।" (मुनीर रिपोर्ट, पृ. 229-30)

पाकिस्तान में कानूनी तौर पर अहमदियों को गैर-मुस्लिम घोषित कर दिया गया है। प्रमुख अहमदी नेताओं पर पैगंबर अपमान-रोकथाम अधिनियम के तहत 400 के करीब मामले बनाए गए। इनका कसूर यही था कि इन्होंने हजरत मुहम्मद को अंतिम अवतार नहीं माना। इस अधिनियम के अंतर्गत पुरुषों को मृत्युदंड व स्त्रियों को आजीवन कारावास दिया जा सकता है। शिया-सुन्नी के बार-बार होनेवाले झगड़ों को विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है, परंतु पूर्व वर्ष एक दिलचस्प घटना घटी। बरेली के एक सुन्नी मौलवी को काफिर घोषित कर दिया गया। परिणामत: उसे काबा में प्रवेश नहीं मिला, वह सुन्नी मुसलमानों के बरेलवी संप्रदाय से संबद्ध था। इस संप्रदाय का विश्वास है कि जो कुछ भी अल्लाह से मिले, वह पैगंबर के माध्यम से ही प्राप्त करना चाहिए। अन्य संप्रदाय देववंदियों के अनुसार इसका अर्थ हुआ, पैगंबर को अल्लाह का भागीदार बनाना। यह तो कुफ्र हुआ। हुआ यह कि एक देवबंदी मौलवी ने सऊदी अरब के बादशाह शाह फाहद को

पाकिस्तान में कानूनी तौर पर अहमदियों को गैर-मुस्लिम घोषित कर दिया गया है। प्रमुख अहमदी नेताओं पर पैगंबर अपमान-रोकथाम अधिनियम के तहत 400 के करीब मामले बनाए गए। इनका कसूर यही था कि इन्होंने हजरत मुहम्मद को अंतिम अवतार नहीं माना। इस अधिनियम के अंतर्गत पुरुषों को मृत्युदंड व स्त्रियों को आजीवन कारावास दिया जा सकता है। शिया-सुन्नी के बार-बार होनेवाले झगड़ों को विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है, परंतु पूर्व वर्ष एक दिलचस्प घटना घटी। बरेली के एक सुन्नी मौलवी को काफिर घोषित कर दिया गया

सूचित कर दिया कि एक काफिर काबा की यात्रा पर आ रहा है। परिणामत: उक्त मौलवी अख्तर खान अजहारी को न केवल कावा में जाने से रोका गया, बल्कि 10 दिन तक जेल में बंद करने के बाद बंबई लौटाया गया।

इन हालात में यह कैसे संभव है कि मुस्लिम जनता को साथ लेकर चलने के प्रयास सफल हो सकें। मुल्ला व मौलवी तथा निहित स्वार्थ युक्त राजनीतिज्ञ सदा यही चाहते हैं कि हिंदू व मुसलमानों के बीच भेद बनाकर रखा जाए तथा मुस्लिम जनता को प्रभाव से अलग न होने दिया जाए।

इस्लाम बनाम राष्ट्रवाद की अवधारणा पर भी गहराई से विचार किए जाने की आवश्यकता है। राष्ट्रवाद के सभी विद्वान् सहमत हैं कि राष्ट्रवाद मुख्यत: एक अपनेपन की भावना का नाम है, जो अपने पूर्वजों की भूमि में निर्मित एक विशेष वातावरण में उपजी समान संस्कृति से विकसित होती है, इस्लामी चिंतन के तर्कसंगत निष्कर्षों के फलस्वरूप मुस्लिम विचारक राष्ट्रवाद की भावना देने में असफल रहे हैं। अत: वे राष्ट्रवाद की अनुमति वहीं तक देते हैं, जहाँ तक यह इस्लामी यकीनों के टकराव में नहीं आती। इन यकीनों का सामान्य अर्थ है अरब संस्कृति।

मूल रूप से इस्लाम का आविर्भाव अरब राष्ट्रवाद के प्रकटयीकरण के लिए हुआ। हमें कुरान में कई आयतें ऐसी मिलती हैं, जिनसे पता लगता है कि ये अरबों के लिए उतरीं, जैसे-

"अलिफ-लाम-रा! हमने इस कुरान को अरबी भाषा में उतारा है, ताकि तुम (अपनी मादरी जबान में उसे बखूबी) समझ सको।" (12-2)

"जब हमने पैगंबर भेजा तो उस कौम की जवान में (बातचीत करता हुआ) भेजा, ताकि वह उनको (अल्लाह का संदेश) समझा सके। (13-4)

"हा-गी म् यह कुरान एक पुस्तक है, जिसकी आयतें अरबी भाषा में समझ से काम लेनेवालों के लिए खूब खुलासा तौर पर बयान की गई हैं।" (41-3)

"हा-मी म् हमने इस कुर्आन को अरबी जबान में रखा है, ताकि (अपनी मादरी जवान की सरलता से) तुम समझ लो।" (43-3)

इस्लाम पर अरब संस्कृति, परंपरा एवं रीति-रिवाज का मजबूत और गहरा प्रभाव है। अगर हम अपने आपको यह स्वीकार करने के लिए मना लें कि पैगंबर मुहम्मद अरब के राष्ट्रीय नेता थे, जो विभिन्न खानाबदोश जनजातियों को एक मजबूत राष्ट्र में परिवर्तित करना चाहते थे तो उनके अधिकांश बयानों का औचित्य ठहर जाएगा, परंतु जब अपने विस्तार के दौरान अरबों ने दूसरे देशों के लोगों को अरबी संस्कृति और रीति-रिवाजों के अनुसार ढालने की कोशिश की तो इस्लामिक बिरादरी में दरार पड़ गई और यह अपने एकाधिपत्य को सुरक्षित नहीं रख पाया।

आज हम देखते हैं कि प्रत्येक इस्लामी राष्ट्र अपनी किस्म के इस्लाम को प्रस्तुत कर रहा है। एक ओर तुर्की ने इस्लाम के साथ यूरोपियन संस्कृति को मिला लिया है। दूसरी ओर इंडोनेशिया ने इस्लाम व हिंदू संस्कृति का श्रेष्ठ मिश्रण प्रस्तुत किया है। वहाँ का मुसलमान रामायण व महाभारत को अपने सांस्कृतिक महाकाव्य मान सकता है, व्यक्तियों व संस्थाओं के संस्कृत नाम

रख सकता है। ईरान की अपने मिश्रण की इस्लामी संस्कृति है। आज पाकिस्तान व बंगलादेश में यही प्रक्रिया दृष्टिगोचर हो रही है, परंतु यह उन्हीं देशों के लिए सत्य है, जहाँ मुसलमान बहुसंख्या में है, अर्थात् दर-उल-इस्लाम।

जिन देशों में मुसलमान अल्पसंख्या में हैं, वे अपने आपको एक संरक्षित समुदाय में डालकर रखते हैं, धर्मांतरण तथा प्रजनन द्वारा अपनी संख्या बढ़ाते रहते हैं, इस प्रकार एक बहुसंख्यक समाज में परिवर्तित हो जाते हैं। उस समय तक वे उन परिवर्तनों को भी स्वीकार नहीं करते हैं, जो अन्य मुस्लिम देशों में हो रहे हैं। भूतपूर्व विदेश सचिव व विभिन्न देशों में भारत के भूतपूर्व राजदूत बदरुद्दीन तैयबजी आई.सी.एस. ने लोकसभा के लिए 1971 के चुनाव के घोषणा-पत्र में कहा, "केंद्रीय सरकार को अधिकार नहीं है कि वह मुस्लिम समाज में समाज का सुधार लागू करने का प्रयास करे, चाहे वह सुधार बेशक पाकिस्तान में स्वीकार कर लिया गया हो, क्योंकि स्वतंत्रता-प्राप्ति के 23 वर्ष बाद भी सरकार 6 करोड़ भारतीय मुसलमानों का विश्वास नहीं जीत सकी है।" (इंडियन एक्सप्रेस, 7 फरवरी, 1971) यह प्रवृत्ति मुसलमानों को भू-संस्कृति को स्वीकार करने से रोकती है, इसलिए वे राष्ट्र के 'हम-समुदाय' में शामिल नहीं हो पाते। ईरान में हमारे तत्कालीन राजदूत श्री एम.आर.ए. बेग ने अपनी पुस्तक 'मुस्लिम डायलेमा इन इंडिया' में लिखा है- "चूँकि सिद्धांतत: मुसलमानों का कोई देश नहीं है, उन्हें यह कमी 'समुदाय' की आत्यंतिक भावना से पूरी करनी पड़ती है। इस विशेषता के कारण वे गैर-मुसलमान देशों में प्रभावशाली ढंग से जज्ब नहीं हो पाते। अत: एक व्यावहारिक मुसलमान न अंतरराष्ट्रीयवादी होता है न राष्ट्रीय और न ही मानवतावादी। इस्लाम उसे दूसरे राष्ट्र में रहनेवाला संप्रदायवादी बना देता है। उसे मुस्लिम बहुसंख्यक देश में ही अपना घर प्रतीत होता है।"

ऐसी बौद्धिक दशाओं में अगर मुसलमान बहुसंख्यक समाज के सामंजस्य स्थापित करनेवाली सभी प्रयत्नों को इस संदेह की दृष्टि से देखते हों कि यह उनकी अलग पहचान समाप्त करने के लिए किया जा रहा है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

निराशावाद की शुरुआत यहीं से है, जब हम देख भी रहे हैं कि मुस्लिम समुदाय से पर्याप्त संख्या में ऐसे धार्मिक व सामाजिक सुधारक आगे नहीं आ रहे हैं, जो इस समाज को आधुनिक युग की चुनौतियों का साहस व विश्वास के साथ मुकाबला करना सिखा दें। समय की आवश्यकता है कि उदारवादी शिक्षित मुसलमान गैर-राजनीतिक स्तर पर इस प्रचार कार्य को अपने हाथ में लें। ऐसा करनेवालों को उलेमा काफिर भी घोषित कर सकते हैं, परंतु यह जोखिम तो उठाना ही होगा।

हाल ही में करांची में ओरंगी पायलट प्रोजेक्ट के डायरेक्टर एक अख्तर हमीद खान ने बड़ी स्पष्टता के साथ न्यूयॉर्क टाइम्स को एक साक्षात्कार दिया, जिसे पाकिस्तान के उर्दू साप्ताहिक 'तकबीर' ने 19 मई, 1988 के अंक में इस प्रकार प्रकाशित किया-"इस्लाम ने मुसलमानों को यह नहीं सिखाया कि वे गैर-मुसलमानों के साथ किस प्रकार शांति से रहें। कुरान में बताया गया है कि अतीत में भी ऐसे अल्पसंख्यक समुदाय हुए हैं, जिन्होंने बहुसंख्यक समाज को परास्त करके उस पर शासन किया। हमारा धर्म और इतिहास हमें अल्पसंख्या में रहने के तौर-तरीके नहीं सिखाता। वे बताते हैं, जब तक विजय प्राप्त न हो, लड़ाई जारी रखो। भारतीय मुसलमान को इस्लाम का संदेश है कि हिंदुस्तान पर विजय प्राप्त करो। यह एक आत्मघाती नीति है।"

अल्पसंख्यक बौद्धिकता सभी संकटों के मूल में है। हिंदुस्तान में मुसलमान समुदाय के पिछड़े होने का एक विशेष कारण यह भी है। इससे वे समानता के स्तर पर दूसरों का मुकाबला नहीं कर सकते। यह उनकी उन्नति में बाधा है। पारसी व यहूदी कभी भी अल्पसंख्यक रुतबों व अधिकारों के लिए प्रयत्नशील नहीं रहे, अत: उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की। यहाँ तक कि बोहराओं, मैमनों तथा खोजाओं ने भी उन्नति की। इन्होंने अल्पसंख्यक अधिकारों की परवाह किए बगैर व्यापार व उद्योग को अपनाया

अल्पसंख्यक बौद्धिकता सभी संकटों के मूल में है। हिंदुस्तान में मुसलमान समुदाय के पिछड़े होने का एक विशेष कारण यह भी है। इससे वे समानता के स्तर पर दूसरों का मुकाबला नहीं कर सकते। यह उनकी उन्नति में बाधा है। पारसी व यहूदी कभी भी अल्पसंख्यक रुतबों व अधिकारों के लिए प्रयत्नशील नहीं रहे, अत: उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की। यहाँ तक कि बोहराओं, मैमनों तथा खोजाओं ने भी उन्नति की। इन्होंने अल्पसंख्यक अधिकारों की परवाह किए बगैर व्यापार व उद्योग को अपनाया।

अख्तर हमीद का साक्षात्कार कुरान के उपयोगी संदर्भों से भरपूर है, फिर भी साप्ताहिक के संपादक ने अपनी परिचयात्मक टिप्पणी में हमीद पर हिंदू बुद्धिवादी होने का आरोप लगाया और उसके पाकिस्तान से निष्कासन की माँग की।

हमारे देश में ऐसे सुधारकों को हिंदू समाज से तो प्रोत्साहन मिलेगा, परंतु फिर आसनस्थ उलेमा उन पर अपधर्म-अनुगमन का आरोप लगाएँगे। श्री हमीद दलवई ने पुणे में 'सत्य शोधक मंडल' स्थापित करके एक तार्किक दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ने का प्रयास किया था, परंतु उनकी असामयिक मृत्यु से इस प्रयास को गंभीर धक्का लगा। मुस्लिम समाज में ऐसे कल्याणकारी महापुरुषों की कमी नहीं है, जो निष्पक्ष होकर अपने समुदाय की कमजोरियों का विश्लेषण कर सकते हों। कमी सिर्फ इस बात की है कि समुदाय को एकत्र किया जाए और सगंठित करके अभियान चलाया जाए। उन्हें उलेमाओं का कोपभाजन बनना पड़ सकता है। उन्हें निष्कासित भी किया जा सकता है, परंतु अगर वे अपने स्थान पर अडिग रहें तो धीरे-धीरे अपने आधार को विस्तृत कर सकते हैं। हिंदू सहर्ष उनके इस प्रयास के साथी होंगे।

-*मंथन*, अप्रैल 1989, (पृ. 17-31)

प्रतिसाद

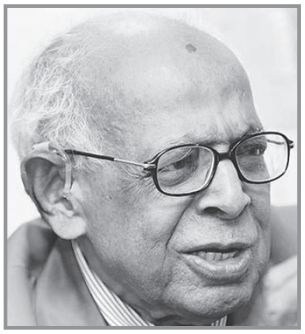

सैयद शहाबुद्दीन

हिंदू धृष्टता और आत्मश्लाघा

मैंने आपका 'सांप्रदायिक समन्वय : कठिनाइयाँ ओर उनके हल' शीर्षांकित परिपत्र पढ़ा। मैं उस पर अपने विचार व्यक्त करने धृष्टता कर रहा हूँ। आमने-सामने बैठकर और भी विस्तार से विचार किया जा सकता है।

हिंदू-मुस्लिम एकता, हिंदुत्व व इस्लाम की आपसी तुलना अथवा उनके घटनाबद्ध एकीकरण पर निर्भर न होकर एक ही राष्ट्रीय भूमि पर रहनेवाले विभिन्न धार्मिक समूहों के शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व, आपसी सम्मान व सहिष्णुता पर आधारित निर्वाह-व्यवस्था की संभावना तथा राष्ट्रहित के संयुक्त प्रयासों पर निर्भर करती है। इससे विभिन्न धार्मिक अथवा जातीय समूहों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा जीवन की समान पद्धति के उद्‌गमन की संभावना क्षीण नहीं होती, परंतु जो मामले धार्मिक आदेशों पर आधारित व अपनी पृथकता बनाए रखने के लिए अनिवार्य होते हैं, उनमें अलग रास्ता अपनाया जा सकता है। इसके साथ-साथ हमें अपने दिमाग से यह विचार भी निकाल देना चाहिए कि 'भारतीयकरण' की राह पर जबरदस्ती चलवाया जा सकता है। जहाँ तक मैं हिंदू समाज की उग्र राष्ट्रवादी ताकतों के दिमाग को पढ़ पाया हूँ, कथित प्रक्रिया 'हिंदूकरण' का ही दूसरा नाम है।

स्मृति-पटल पर पड़ी लकीरों के कारण, जाने अथवा अनजाने में हम एक दूसरे की धार्मिक ग्रहणशीलता के प्रति असहिष्णु रहते हैं। एक और संवेदनशून्यता दूसरी धर्मांधता किसी भी समाज के लिए विस्फोटात्मक मिश्रण का काम दे सकती है। आपका उद्देश्य यह तो नहीं हो सकता, परंतु मुझे कहते हुए संकोच नहीं है कि आपने पवित्र पैगंबर की तुलना शिवाजी अथवा नेपोलियन अथवा लेनिन अरबों के नायकों से की है, जो मुसलमानों की धार्मिक-ग्रहणता के लिए आक्रामक है।

मैं सहमत नहीं हूँ कि राष्ट्रीय राज्य सांस्कृतिक एकता पर आधारित है अथवा राष्ट्रीय एकता तथा संघीय निष्ठा के लिए सांस्कृतिक एकता अनिवार्य है। इस बिंदु पर मुझे विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है, आज के अनेक राष्ट्रीय राज्य बहु-सांस्कृतिक राज्य हैं और ऐसा होने पर गर्व करते हैं। समझ में नहीं आता कि जब हमारे देश में धार्मिक, भाषागत, जातीय, क्षेत्रीय विविधता है, इसलिए सांस्कृतिक बहुवाद मोटा-मोटा दिखाई देता है तो हम सामंजस्य अथवा समरूपता के इतने इच्छुक क्यों रहते हैं। में इसे बलात् आत्मसात् करने की प्रक्रिया से अधिक कुछ नहीं समझता। आर्यों के आगमन से आज तक हमारा इतिहास इसी सूत्र से गुँथा रहा है।

ज्ञात इतिहास के बाद से उपमहाद्वीप पर अनेक आक्रमण हुए हैं। इस शृंखला में अंतिम थे अरब, तुर्क, अफगान व मुगल। मैं नहीं समझता कि इतिहास इस्लाम-पूर्व व इस्लाम आक्रांताओं के बीच कोई सार्थक अंतर बता सकता है। मेरे अनुसार जिन्होंने भारत में अपना घर बनाया, उन्हें आक्रांताओं से अलग समझना चाहिए। इस अभिप्राय से मुहम्मद बिन कासिम, गजनवी तथा गोरी को खिलजी तथा औरंगजेब से अलग समझना चाहिए।

आप ऐतिहासिक मंदिरों को लौटाने की बात करते हैं। प्रत्येक मामले को तथ्यों के आधार पर निपटाया जाना चाहिए, न कि कथाओं और किंवदंतियों के आधार पर। हमें प्रत्येक पूजास्थल के इतिहास की खोज करनी चाहिए और इसे मूल-धर्म के पूजकों को लौटा देना चाहिए। ऐसा होने पर मुझे नहीं मालूम कितने हिंदू मंदिर जैनियों तथा बौद्धों को लौटा देने पड़ेंगे। प्रश्न यह है कि आप इतिहास की रेखा कहाँ पर खींचेंगे? क्या भूतकाल की खुदाई जरूरी है? पुराने जख्मों को कुरेदना आवश्यक है? जिस जागरूक राष्ट्र ने 15 अगस्त, 1947 को नई शुरुआत की हो और जो भावी विश्व में अपना

हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रश्न हिंदुत्व और इस्लाम के बीच तालमेल पर नहीं, बल्कि एक ही राष्ट्र के भूभाग में रहने वाले दो धार्मिक समुदायों के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व से जुड़ा हुआ है

स्थान सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्नशील हो, उसके लिए इस प्रकार का प्रयास अनुकूल नहीं है। पीछे देखना और पिछले मानभंग हों, चाहे वास्तविक हों अथवा काल्पनिक का विवेचन करना एक दयनीय स्थिति का द्योतक है। निस्संदेह, यह हमें संरचनात्मक मार्ग से भटका देगा और जरा सोचिए, पिछली गलतियों को मौजूदा उचित कारवाइयों से चुकाने की कोशिश की गई तो कितने अनर्थ का सामना भी करना पड़ सकता है।

आपने सुझाव दिया है कि भारतीय मुसलमानों को धर्मनिरपेक्ष नाम अपनाने चाहिए, परंतु जो हिंदू नाम हैं, वही आपके लिए धर्मनिरपेक्ष हैं। मुझे यह कहने दीजिए कि मैं सभी नामों का पूरी तरह सम्मान करता हूँ। वास्तव में मैं सहज सांस्कृतिक आंतरिक प्रतिक्रियाओं में कई नाम विभिन्न समुदायों ने स्वीकार कर लिए हैं, परंतु आपको उन नामों से खिच क्यों हैं, जिनका उद्‌गम स्थल अरब व फारस से है? आप मुसलमानों से यह क्यों चाहते हैं कि वे इस्लामी परंपराओं को छोड़ दें?

आपने गोहत्या तथा मस्जिद के आगे संगीत का जिक्र किया है। यह बड़ा दिलचस्प है। मैं सार्वजनिक हत्या के खिलाफ हूँ, क्योंकि वह भावनाओं को भड़काती हैं। दूसरी ओर समझ में नहीं आता है कि किसी पर खुराक संबंधी पाबंदियों क्यों लगाई जाएँ और अवांछित पशुओं की देख-रेख पर सरकारी पैसा क्यों खर्च हो? ऐसा लगता है कि जब प्रार्थना हो रही हो और मस्जिद के सामने ढोल-ढमाके का शोर हो तो आपको उसमें कोई एतराज नहीं है। यह भी एक संवेदनहीनता का मामला है, परंतु मैं इसे मतग्राह्यता ही कह सकता हूँ। मैं एक आपसी समझ का सुझाव दे रहा हूँ, जब भी किसी समुदाय का धार्मिक जलूस पूजा के समय अन्य समुदाय के पूजा-स्थल के सामने से निकले तो उसे सम्मान की दृष्टि से अपना संगीत बंद करके गुजरना चाहिए।

सांस्कृतिक समानता के उत्साह में आपने समाज वस्त्रों व समान फैशन की बात भी कह डाली है। इनका राष्ट्रवाद अथवा धर्म से कोई संबंध नहीं है। स्टाइल और फैशन अकसर बदलते रहते हैं। यहाँ तक कि चीन भी अब अपने चिरशैशव से बाहर निकल चुका है।

आपने यह भी सुझाव दिया है कि भगवाध्वज भारत का राष्ट्रीय झंडा होना चाहिए। कोई न कोई कारण तो होगा ही कि स्वतंत्रता-आंदोलन अथवा भारतीय गणतंत्र ने इसे स्वीकार नहीं किया। मैं समझता हूँ कि उसके लिए आपको भारत के हिंदू राज्य बनने की घोषणा तक इंतजार करना चाहिए।

अंत में आपने सुझाव दिया है कि मुसलमानों को सुन्नत छोड़ देनी चाहिए। समझ में नहीं आता कि जब मुसलमान सुन्नत कराते हैं तो हिंदू क्यों घबरा जाते हैं?

आपके कार्यक्रम की योजना में मैं इस सुझाव से सहमत हूँ कि भारतीय इतिहास भारतीय लोगों के दृष्टिकोण से दुबारा लिखा जाना चाहिए, परंतु समस्या यह है कि ऐसे इतिहासकार कहाँ से ढूँढ़े जाएँ, जो हिंदू हों न मुसलमान। मैं इस सुझाव से सहमत हूँ कि स्कूलों में महान् धार्मिक नेताओं की वाणी व जीवन से संबंधित नैतिक शिक्षा दी जाए।

आपके तीसरे सुझाव के बारे में मेरा कहना है कि सामाजिक हिंसा किन्हीं विशेष सामाजिक समूहों के विरुद्ध केंद्रित होती है, इसलिए उनके पूजा-स्थल, मदरसे तथा कब्रिस्तान आदि संस्थाओं को सुरक्षा प्रदान की जाए।

मैं नहीं चाहता कि अल्पसंख्यक आयोग को बदला जाए। अगर यह निर्जीव है तो इसे समुचित सहायता उपलब्ध कराकर संवैधानिक स्तर प्रदान किया जाए। इसके साथ-साथ मानव अधिकार आयोग भी स्थापित किया जाए, जो नागरिकों के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करे।

पैरा 5 के संदर्भ में यह समझ में नहीं आया कि 'धार्मिक पर्व मनाने में साथ लगने' से आपका क्या अभिप्राय है। कोई हिंदू नमाज में नहीं आ सकता, न ही कोई मुसलमान पूजा कर सकता है, परंतु निस्संदेह वे ऋतु परिवर्तन के भ्रातृवत् समारोह में भागीदारी बन सकते हैं। इस पैरे में आपने हमारे देश को 'हिंदूभूमि' बताया है। यह दिलचस्प है।

जहाँ तक मुस्लिम-परिवार-संहिता का प्रश्न है, मैंने संहिता के विचार को सदा ही समर्थन दिया है। यह तैयार की जा रही है, परंतु इसे छाती पर बंदूक तानकर लागू नहीं किया जा सकता।

धर्म-परिवर्तन एक मनुष्य का विशेषाधिकार है। कोई सरकार अथवा प्राधिकरण इस छूट और इसके परिणाम से प्राप्त अधिकार को छीन नहीं सकते। जहाँ तक धर्म प्रचार का संबंध है तो दूसरे के धर्म पर आक्षेप नहीं लगाना चाहिए। इससे न केवल गलत जानकारी दी जाती है, बल्कि दुर्भावना व अशांति भी पैदा होती है।

जहाँ तक सांप्रदायिक पार्टियों का संबंध है, पार्टी का नाम महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि जिन पार्टियों की सदस्यता एक भी समुदाय के लिए प्रतिबंधित नहीं, उनमें भी संप्रदायवाद देखा जा सकता है। आपने 'अल्पसंख्यक हित' (इसे स्वीकार करने के लिए धन्यवाद) की सुरक्षा के लिए अनुपातीय प्रणाली की बात की है। इसकी विस्तार से बताए जाने की जरूरत है।

जहाँ तक विदेशी सहयोग का प्रश्न है, मैं आपसे भी आगे बढ़ने का प्रयत्न करूँगा। मेरा सुझाव है कि शैक्षणिक तथा मानवतावादी राहत उद्देश्यों के अलावा अन्य किसी भी कार्य के लिए विदेशी धन पर पूर्ण पाबंदी लगानी चाहिए अथवा इन्हें सरकारी एजेंसी के माध्यम से दिया जाना चाहिए।

पैरा 10 में दिए गए सुझाव से मैं सहमत हूँ।

पैरा 11 में दिए गए सुझाव से भी मैं सहमत हूँ। किसी भी स्तर के सभी धार्मिक भाषायी अथवा सांस्कृतिक समुदायों को अपनी पसंद की संस्थाओं को स्थापित व प्रशासित करने की छूट होनी चाहिए। मेरा विचार है कि इस प्रकार के समुदाय को अपने बालकों के लिए दो-तिहाई तक सुविधाएँ सुरक्षित रखने का अधिकार होना चाहिए।

मैं आपके विचार से पूरी तरह सहमत हूँ कि विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि एक दूसरे के धर्म का सम्मान करें। यही कारण है कि मैं एक समुदाय द्वारा दूसरे समुदाय के पूजा-स्थल पर बलात् कब्जा करने के विरुद्ध हूँ।

मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि आपके परिपत्र में कुछ तथ्यात्मक गलतियाँ हैं। उदाहरण के लिए मैं कुरान में किसी आयत के बारे में नहीं जानता हूँ, जो आपने गाय के बारे में उद्धृत की है। (पृ. सं. 21) मुझे इसकी भी जानकारी नहीं है कि पैगंबर ने कभी भगवा ध्वज का प्रयोग किया था। मुझे नहीं मालूम है कि मुगल बादशाहों ने सुन्नत नहीं करवाई थी। मुझे नहीं मालूम है कि गैर-ईसाई देशों की सामूहिक प्रार्थना में भाग लेते हैं अथवा मुस्लिम देशों में गैर-मुस्लिम ईद की नमाज में शामिल होते हैं।

यह साफ-साफ कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि पूरे परिपत्र में अपने आप को सही समझने की भावना तथा भारत को 'हिंदूभूमि' कहने की धृष्टता भरी पड़ी है। इससे वांछित रचनात्मक उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती।

-*मंथन*, अप्रैल-1989 (पृ. 33-36)

प्रतिसाद

डॉ. गोपाल सिंह

सामान्य सिद्धांत मंजूर परंतु विशेष पर आपत्ति

मैंने यथासंभव विचार और सम्मान के साथ आपका 'सांप्रदायिक समन्वय : कठिनाइयाँ और उनके हल' शीर्षांकित परिपत्र पढ़ा।

मैंने हमेशा ही आपकी संदेह रहित विद्वत्ता, मातृभूमि के प्रति निष्ठा व देशभक्तिपूर्ण भावनाओं की प्रशंसा की है। मैं आपके लेखों को 'स्टेटसमैन' व 'दि टाइम्स ऑफ इंडिया' में पढ़ता रहता हूँ।

आपके निबंध के पहले 17 पेजों में परिलक्षित धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन व संतुलन से मैं प्रभावित हुआ, परंतु आपसे अनुमति लेते हुए विनम्र निवेदन है कि पृ. 18 के बाद की बातों पर मैं सहमत नहीं हूँ। यह ठीक है कि भारतीय मुसलमानों, विशेषकर बुद्धिजीवियों को चाहिए कि वे अपने आपको मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन खिलजी तथा औरंगजेब की यादगारों से अलग रखें, परंतु इस सुझाव के बाद हमें इस लाभ की स्थिति को और आगे नहीं बढ़ाना चाहिए। मौजूदा मुसलमानों को हमारे द्वारा यह नहीं कहा जाना चाहिए कि वे अतीत में ताकत के जोर से अथवा गैर-इस्लामी तरीके से मस्जिदों में परिवर्तित किए गए ऐतिहासिक मंदिरों को हमें लौटाएँ। राष्ट्रीय समन्वय लाने का यह कोई तरीका नहीं है। इससे हमारा देश विखंडित हो जाएगा।

अगर हमारा कोई पड़ोसी देश यह दलील देता है कि अमुक क्षेत्र अंग्रेजों ने अथवा मुगलों ने भारत में मिलाया, हमारे सीमावर्ती क्षेत्रों पर दावा करें तो उस स्थिति में हमारी हालत क्या होगी?

यह कहना कि अंग्रेजों ने हिंदुओं को प्रसन्न करने के लिए गजनी के रत्नजड़ित दरवाजों को वहाँ से हटाया, इतिहास से पुष्ट नहीं होता। यह काम सिखों ने किया था। रणजीत सिंह ने काबुल की गद्दी के लिए शाहशुजा को सहायता देने के लिए शर्तें लगाई थीं कि-(1) अफगानिस्तान में गो हत्या बंद की जाए, (2) सोमनाथ मंदिर के दरवाजे भारत को लौटाए जाएँ। शुरू में शाहशुजा नहीं माना। बाद में जब सिखों व अंग्रेजों ने काबुल पर मिलकर चढ़ाई (1836) की तो सिखों ने जिद पकड़ी कि वे गजनी से सोमनाथ मंदिर के दरवाजों को किसी भी हालत में ले आएँगे और वहाँ लगा देंगे, जहाँ उन्हें लगना चाहिए। बाद में क्या हुआ, वह एक अलग कहानी है। मैं नहीं समझता कि सोमनाथ के पुजारियों ने इस प्रस्ताव को ठुकराया होगा।

मुसलमानों को अपने नाम बदलने की जरूरत नहीं है। हम बुल्गारिया नहीं हैं। इंडोनेशिया व थाईलैंड का सांस्कृतिक इतिहास बिल्कुल ही अलग किस्म का है। एक का इतिहास हिंदू बौद्ध है, दूसरे में (हिंदू अतीत के साथ) मुस्लिम बहुसंख्या है। भारत में मुसलमान अल्पसंख्या में हैं, इसीलिए कट्टरवादी हैं। इसके बिल्कुल विपरीत है। अरब देशों, अफगानिस्तान व ईरान में बहुसंख्या में हैं।

मेरे विचार से गो-हत्या बंदी के साथ सूअर मारने पर भी प्रतिबंध लगना चाहिए। वास्तव में अगर आप मुझसे पूछें-वेद, रामायण व महाभारत कुछ भी कहते हों, हमें सभी पशुओं की हत्या पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।

मशीनी युग के असर से हेयर स्टाइल, खाने की आदतें आदि सभी बड़ी तेजी से बदल रहे हैं। यहाँ तक कि नाम भी बदल रहे हैं। अंतरजातीय विवाहों की संख्या बढ़ी है। बिना हमारी आवश्यकता व इच्छानुकूल एकता व सांस्कृतिक निकटता प्रभावी नहीं हो सकती। क्या हिंदू लोग वर्ण व्यवस्था तथा हाल ही में अर्जित भाषागत श्रेष्ठता एवं कट्टरपंथी दृष्टिकोण छोड़ सकेंगे? आपने इन हिंदुओं को नहीं छुआ और ईसाइयों के प्रति आप बड़े कठोर रहे हैं। रीति-रिवाजों के अलावा हमारे विश्वासों में उनकी ताजा खोजबीनों का योगदान तथा हमारे सुधारों अथवा ह्रास के प्रति उन द्वारा दी गई

अल्पसंख्यक शब्द में ही एक अलगाव की धारणा सन्निहित है। इस शब्द का हमारे संविधान से बाहर होना ही अपेक्षणीय है

चुनौतियाँ ध्यान से देखने योग्य हैं। अन्य लोग भी ईसायत व अंग्रेजी भाषा से प्रभावित हुए हैं, परंतु हमने न केवल अपनी संस्कृति को नकार दिया है, बल्कि अपने आपसे नफरत करना भी आरंभ कर दिया है। यह किसका कसूर है? क्या हमारा नहीं?

मैं विदेशों में प्राय: हिंदू, मुसलमान तथा सिख समुदायों के बीच जाता रहता हूँ। मैंने देखा है कि उन्होंने आधुनिकता को अधिक मात्रा में अपना लिया है, जबकि हमने ऐसा नहीं किया। दुर्भाग्य से मौजूदा राजनीतिक हिंदुओं में कट्टरवादी वातावरण अल्पसंख्यक कट्टरवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप नहीं है। यह बहुसंख्यक (यद्यपि स्वयं जाति व भाषा आधार पर बँटा हुआ) चेतना पश्चिम से थोक में उधार ली गई राजनीतिक प्रक्रिया का ही एक उप-उत्पाद है।

आशा है आप, मेरे इन निष्कर्षों का बुरा न मानेंगे।

मैं आपको अल्पसंख्यक समस्या पर अपने विचार भेज रहा हूँ, जैसा कि आपने पढ़ा भी होगा, मैं धर्म व भाषा पर आधारित 'अल्पसंख्यक' शब्द से नफरत करता हूँ। चाहता हूँ कि इस शब्द को संविधान से निकाल दिया जाए। प्रसंगवश, मेरे पिता एक हिंदू (बहुसंख्यक समुदाय वाले) थे और मैं उनका बेटा, उनके द्वारा बनाया गया सिख, बिना किसी अपने कसूर के, अल्पसंख्यक कहकर तिरस्कृत कर दिया गया हूँ।

–*मंथन*, अप्रैल–1989, (पृ. 37–38)

आध्यात्मिक हस्तक्षेप की आवश्यकता

मोअज्जिज अली बेग

अल्पसंख्यक समस्या पर अपना विचार-परिपत्र भेजने के लिए धन्यवाद। इसके अधिकांश वाक्य मेरी ही आवाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। मैं आपकी भावनाओं के साथ हूँ। इस पुनीत कार्य के लिए मेरा सहयोग व यथायोग्य सेवाएँ अर्पित हैं।

1957–58 के आसपास मैंने भी बौद्धिक स्तर पर इसी किस्म के प्रयास किए थे। यहाँ संलग्न है उन अधिकारियों के पत्रों की इलेक्ट्रो-कॉपियाँ, जिन्होंने सभी 'धर्मों की एकता' की समस्या को समझा। प्रो. सोरोकिन ने हवार्ड में संरचनात्मक-परमार्थ अनुसंधान केंद्र खोला था। मृत्युपर्यंत मैं उनके संपर्क में रहा।

मुझे विश्वास है कि आपने सही बिंदु पकड़ लिया है। अब हम आगे बढ़ सकते हैं। आशा है कि मानवीय स्वभाव की सत्यता प्रस्थापित होने पर घृणा-पथ लुप्त हो जाएँगे। एक राष्ट्रीय आवश्यकता समझकर इन्हें इस भूमि से उखाड़ फेंकना चाहिए। मेरे साधन छोटे हो सकते हैं, परंतु मैं आपके साथ आगे बढ़ने को तैयार हूँ।

मानवीय स्वभाव की सत्यता प्रस्थापित होने पर घृणा-पथ लुप्त हो जाएँगे

मैं ईमानदारी से विश्वास करता हूँ कि आधुनिक मानव प्रवास्तविकतावाद से ग्रस्त एवं भावुक बौद्धिकता के दबाव में है। अत: जहाँ तक प्रमार्थ का संबंध है, वह उसके योग्य नहीं रह गया है। किसी भी प्रकार का प्राध्यात्मिक हस्तक्षेप अब एक आवश्यकता बन गया है। घृणा हमारे राष्ट्रीय व्यक्तित्व के लिए भारी पड़ रही है। अगर हम इसे उखाड़ फेंकने में सफल हो गए तो संभवत: नेतृत्व हमारे ही हाथ में होगा।

एक औसत मुसलमान का बंद मस्तिष्क व हठवादिता निस्संदेह करुणापूर्ण है। निश्चय ही मैंने इस बारे में सोचा है, समाधान के लिए अन्वेषण जारी है। आपके लेख से मुझे बहुत प्रोत्साहन मिला है। मैं यहाँ 'दि पोसिबल रोल ऑफ इस्लामिक मिस्टीसिज्म' आदि से शीर्षांकित अपना लेख भी संलग्न कर रहा हूँ। यह 1984 में, म्यूनिख में अरविंदस्क्रीज फर इंटर कल्चरल कम्यूनिकेशन (कोल्न) तथा सेंटर फॉर इंडियन ऐंड इंटर-रिलीजियस स्टडीज, रोम, इटली के तत्त्वावधान में आयोजित इंटरनेशनल कोलोकुइस में पढ़ा गया था। इसका जर्मन अनुवाद कथित कोलोकुइम की काररवाई में दर्ज है। इस पर आपकी सम्मति का स्वागत किया जाएगा।

–*मंथन*, अप्रैल–1989, (पृ. 39)

प्रतिसाद

मैं एक वैकल्पिक और पूरक परिपत्र लिखना चाहूँगा

बलराज पुरी

सांप्रदायिक सद्भाव की दिशा में चल रहे प्रयासों की व्यावहारिकता और वांछनीयता पर संशय की एक दृष्टि

समस्या सुलझाने के लिए आपने जो विचार-विमर्श प्रारंभ किया है, उससे मैं प्रभावित हुआ हूँ। आपका यह निष्कर्ष ठीक ही है कि इस समस्या का समाधान वह आलंबन है, जिस पर भारत तथा विश्व के भविष्य का उत्तोलक टिका हुआ है।

ऐसी बहुत सी बातें हैं, जिन पर मेरे जैसे व्यक्ति का आपसे सहमत होना मुश्किल नहीं है, परंतु जहाँ तक आपके परिपत्र के मुख्य दृष्टिकोण का संबंध है, मैं एक प्राचारभूत बिंदु पर असहमत होने की क्षमा चाहूँगा। मेरी असहमति पर पूरा वाद-विवाद होने के बाद एक वैकल्पिक परिपत्र लिखने की आवश्यकता पड़ जाएगी। यहाँ मैं आपका ध्यान 'हिंदुस्तान टाइम्स' में छपे दो लेखों की ओर आकर्षित करना चाहूँगा। इससे पता लगेगा कि इस विषय पर मेरा चिंतन क्या है। एक लेख 15 सितंबर को 'रिलीजन ऐंड पोलिटिक्स' पर हाल ही में छपा था। अन्य लेख 1 जुलाई, 1987 को छपा था। पूरा वाद-विवाद 11 जुलाई, 1987 के ई.पी.डब्ल्यू. में भी प्रकाशित हुआ। अगर आप चाहें तो उन्हें इन स्थानों पर ढूँढ़ सकते हैं अथवा मैं भी आपको भेज सकता हूँ।

संक्षेप में सभी धर्मों में आवश्यक एकता की खोज तथा समान नाम आदि, इन सबके माध्यम से धार्मिक समुदायों की सामंजस्यता के प्रयत्नों के औचित्य की व्यावहारिकता के प्रति मुझे संदेह है।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हमारा यह दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार हम उसका तो सम्मान करते हैं, जो हमारे जैसा है, परंतु उसका नहीं, जो भिन्न है। वास्तव में सभ्य व प्रजातांत्रिक जीवन के आधार सहिष्णुता की भावना की माँग है और मतभेद के लिए सम्मान। दूसरा इस देश में सैद्धांतिक अथवा दार्शनिक मतभेदों के कारण कभी सांप्रदायिक तनाव पैदा नहीं हुआ। इन मतभेदों को समाप्त करने के प्रयत्न में हम अपनी ऊर्जा का ही ह्रास करते हैं। बुराई के उस कारण को हटाने से क्या लाभ, जो मौजूद ही नहीं।

वास्तविक समस्या धर्म की उस भूमिका से पैदा होती है, जो समुदाय के संशयवादी सदस्यों से संबंधित हैं। प्रासंगिक प्रश्न यह है कि अल्पसंख्यकों को अलग पहचान का आग्रह कहाँ तक वैध है? इन पहचानों की वैध परिधि क्या है? और इन सामुदायिक पहचानों के विभिन्न दावों का दूसरे समुदायों तथा राष्ट्र के दावों के साथ सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाए।

जब आपने यह कहा है कि भारत के बँटवारे की माँग मुख्यतया अलीगढ़ के लड़कों की ओर से आई न कि उलेमा अथवा पीरों की ओर से, तो आप समस्याओं के धार्मिक व सांप्रदायिक समाधान की पृथकता को समझने के निकट थे। एक स्थान पर आपने यह भी स्वीकार किया है कि धर्म का संबंध रीति-रिवाजों, कर्मकांड तथा सांस्कृतिक पर्वों से होता है, परंतु आपने मुश्किल से ही समस्या के इस पहलू पर विचार किया है कि धर्म पृथकता के निर्माण का आधार बन जाता है। आपका ध्यान इस ओर ज्यादा केंद्रित रहा है कि धर्म ब्रह्मांड के रहस्यों को खोलने में उपयोगी है। धर्म की यही भूमिका है तो मैं समझता हूँ, समस्या का यह सबसे कम झंझट वाला भाग है।

यह तो स्पष्ट है कि हिंदुत्व में सहिष्णुता की कोई कमी नहीं है, बल्कि इससे भी अधिक यह अपने डेरे में किन्हीं भी आध्यात्मिक, तात्त्विक अथवा दार्शनिक मान्यताओं को समायोजित करने की क्षमता से परिपूर्ण है। व्यावहारिक रूप में इस प्रकार के विश्वास इसमें पहले से ही मौजूद थे तथा समुदाय के सभी सदस्यों व संप्रदायों के लिए किसी भी शास्त्र को अंतिम सत्य के रूप में स्वीकार नहीं कर लिया गया है। नए कवियों

के स्वागत के लिए संभावना का द्वार खुला रख दिया गया है। संकीर्ण शब्दों का प्रयोग करें तो हिंदुत्व अन्य धर्मों के समान एक धर्म नजर नहीं आएगा। इसे धर्मों की संसद् कहा जाता है।

हिंदुत्व का राष्ट्रवाद के प्रति दृष्टिकोण इसे अन्य धर्मों से सीधे टकराव की स्थिति में लाकर खड़ा कर देता है। तत्त्वत: यह प्राचीन भारतीय संस्कृति का सकल योग है, जो अन्य धर्मों को आत्मसात् करते हुए सदा नवीन होकर उभरता रहा है। एक तरीके से हिंदुत्व भारतीय राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक व धार्मिक प्रकटीकरण है। भारतीय पुराण, प्राचीन इतिहास, राष्ट्रीय महाकाव्य, गंगा व हिमालय की पूजा आदि ये सभी इसके आवश्यक अंग हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'भारत माता' हिंदुओं की सबसे पवित्र देवी है।

राष्ट्रवाद के प्रति अपने दृष्टिकोण को पैमाना मानते हुए हिंदू देखता है कि अन्य समुदायों में इसकी बहुत कमी है। धार्मिक, आध्यात्मिक तथा भावानात्मक तीनों प्रकार के अपनेपन में यह कमी दिखाई देती है। अन्य समुदायों के धार्मिक विश्वासों का ये बहुत सम्मान करते हैं, परंतु जब यह पता लगता है कि अन्य समुदाय भारतमाता का भी सम्मान नहीं कर रहे हैं तो बहुत दु:ख होता है। अत: यह जरूरी हो गया है कि हिंदुत्व तथा अन्य धर्मों के अंतर को समझा जाए, न कि अन्य धर्मों से इसकी समानता का वर्णन किया जाए।

संक्षेप में अंतर-समुदाय संबंधों, विशेषकर अन्य समुदायों के साथ हिंदुओं के संबंधों में दो मामले ऐसे हैं, जिन पर वाद-विवाद होना चाहिए, परंतु विवाद होता है, वाद नहीं है। पहला मामला है-आधुनिकीकरण की शक्तियों के असर से पूरे विश्व में अल्पसंख्यकों द्वारा अपने पृथक्कीकरण के लिए आग्रह करना। दूसरा मामला है-राष्ट्रवाद की अवधारणा से संबंधित। यह कितना बहुजातीय अथवा सजातीय होना चाहिए? क्या यह देशभक्ति है? अथवा एक राजनीतिक तथा धार्मिक विचारधारा है? जो लोग राष्ट्रवाद की इस विचारधारा अथवा धार्मिक गम्यता में भाग नहीं लेते, उनके साथ क्या व्यवहार किया जाए?

अगर आप इन मामलों की प्रासंगिकता स्वीकार करें तो हमारे दोनों परिपत्र एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हो सकते हैं।

-*मंथन*, अप्रैल-1989, (पृ. 41-42)

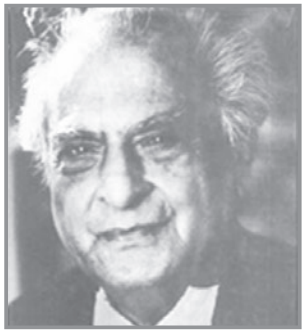

पी.एन. हक्सर

प्रमुख समस्या धर्म को परिभाषित करने की है

मुझे 'सांप्रदायिक समन्वय : कठिनाइयाँ और उनके हल' शीर्षांकित शोधपत्र तथा संलग्न सहपत्र मिला। संभवत: आप नहीं जानते होंगे कि मेरे आँखों की दशा ऐसी है कि मैं स्वयं कुछ नहीं पढ़ सकता। परिणामत: मुझे सबकुछ पढ़कर सुनाया जाता है। इस क्रिया में स्वाभाविक रूप से समय अधिक लगता है। ऐसी हालत में इस शोध-पत्र के बारे में अपनी प्रतिक्रियाएँ भेजने में असमर्थ हूँ।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस पृथ्वी पर मानव के आने से आज तक प्रेम, करुणा व सहिष्णुता ही मानवीय जीवन के सर्वोत्कृष्ट पहलू रहे हैं, परंतु जैसा कि आप जानते हैं, मनुष्य लोग घृणा, नृशंसता व असहिष्णुता पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने से नहीं चूके हैं। धर्म और खुदा के नाम पर प्राय: ऐसा किया गया। मेरा अकिंचन सुझाव है कि पहले 'धर्म' शब्द की व्याख्या की जाए। अध्यात्म के खोज व धर्म का पालन करनेवालों का राजनीतिक सत्ता की खोज में राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने के प्रयासों से स्थिति में अंतर पड़ जाता है।

यद्यपि हमारे देश में हिंदू-मुसलमान को विभाजित करने की अपराधपूर्ण कोशिशें जारी हैं, परंतु जनता में फूट पैदा करने की एकमात्र कोशिश यही नहीं है।

अपनी टिप्पणियों के लिए मैं क्षमा भी चाहता हूँ। हम कुछ भी करें, परंतु मेरा यह निवेदन है कि किसी जाति व वर्गभेद को आधार बनाए बगैर अगर हम सभी नागरिकों में देश निर्माण के लिए भाग लेने की भावना पैदा करना चाहते हैं तो हमें अपने आपको सही समझने की प्रवृत्ति को छोड़ना होगा।

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 26)

प्रतिसाद

डॉ. एम. मंजूर आलम

१२-सूत्रीय कार्ययोजना सामान्यत: स्वीकार्य

मंथन (अंग्रेजी) जून 1988 का अंक भिजवाने के लिए धन्यवाद। अन्य कई कामों में व्यस्त था। अत: आपके लेख पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने में विलंब हो गया इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

लेख के बारे में कुछ कहने से पहले इस्लाम का थोड़ा सा परिचय देना चाहूँगा। चूँकि इस्लाम का शाब्दिक अर्थ है-समर्पण, शरणागति व आज्ञापालन अथवा अल्लाह की इच्छा व आदेश के सम्मुख बिना शर्त समर्पण या आज्ञापालन।

अल्लाह ने अपनी सृष्टि को मार्गदर्शन के बगैर नहीं रखा है। आदम (उन्हें शांति प्राप्त हो) से मुहम्मद (उन्हें शांति प्राप्त हो) तक, हमारे यहाँ पैगंबरों की एक शृंखला है। कुछ पैगंबरों ने अल्लाह के मार्ग निर्देशन को पुस्तक के माध्यम से प्रकट किया। मुहम्मद (उन्हें शांति प्राप्त हो) के द्वारा उद्घाटित कुरान मार्गदर्शक पुस्तकों की शृंखला में आखिरी व अंतिम पुस्तक है, जो अल्लाह के द्वारा दिया गया है।

धर्म शब्द की पश्चिमी व्याख्या के अनुसार इस्लाम एक धर्म नहीं है। अगर वे इतिहास पर गौर करें तो मालूम होगा कि इस्लाम एक विश्वास, जीवन-पद्धति, धर्म तथा सामाजिक अनुशासन है, सिद्धांत व व्यावहार की संहिता है, सिद्धांतों व मूल्यों का एक समुच्चय है।

आइए, अब आपके लेख पर विचार करें। जहाँ तक मैं समझा हूँ, इस लेख का उद्देश्य हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, ईसाई तथा सिख जैसे विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच शांति व सामंजस्य स्थापित करना है। आपके दृष्टिकोण में पाए इस स्वस्थ परिवर्तन की मैं प्रशंसा करता हूँ।

धर्म की महत्ता और उस पर लगाए जा रहे आरोपों के संदर्भ में आपकी खोजबीन गंभीर व अभिव्यक्ति तर्कपूर्ण है। वास्तव में हमारे समाज में धर्म की जड़ें इतनी गहरी हैं कि नास्तिक मतवादी के रूप में प्रख्यात लोग भी अपनी बात कहने के लिए धार्मिक शब्दावली का ही आश्रय लेते हैं। मुसलमानों में तो धर्म की जड़ और भी गहरी है। यहाँ बाथवादी सिद्धांत के प्रतिपादक माइकल अफलाक का उदाहरण दिया जा सकता है। उन्होंने बाथवाद (समाजवाद का सीरियाई व इराकी रूपांतर) का प्रचार करने के लिए इस्लामिक शब्दावली का प्रयोग किया।

हम मुसलमानों के लिए धर्मों की एकता एक परायी अवधारणा है। हम धर्मों के सहअस्तित्व में विश्वास रखते हैं। कुरान और पैगंबर (उन्हें शांति प्राप्त हो) का भी यही आदेश है कि अन्य धर्मों व उनके प्रवर्तकों का सम्मान किया जाए, परंतु हमारे लिए दीन एक है। यह आदम (उन्हें शांति प्राप्त हो) से शुरू हुआ और कुरान के प्रकटीकरण पर समाप्त हुआ। इस्लाम के अनुसार निर्माता और सृष्टि के बीच मालिक व नौकर का संबंध है। एक मुसलमान के लिए उसे प्रसन्न करना आवश्यक है। इसलिए परमात्मा को प्राप्त करने की अवधारणा मुसलमानों के लिए प्रासंगिक नहीं है। इस्लाम की परिधि में मोक्ष का कोई स्थान नहीं है। मोक्ष किससे? हमारे अनुसार एक मुसलमान को मृत्यु के बाद अपने कर्मों का अच्छा या बुरा फल मिलता है।

इस्लाम ने मुसलमान पर जो पहली रोक लगाई है, वह उसके और उसके अंतरात्मा पर लगाई है। अन्य पाबंदी, हर लिहाज से समाज की है। अत: एक स्वस्थ समाज के निर्माण से न केवल सामाजिक समस्याएँ न्यूनतम हो जाएँगी, बल्कि एक अच्छे मानव का भी निर्माण होगा। कुरान व हदीस ने समाज के लिए एक विस्तृत रूपरेखा व दिशा-निर्देश दिए हैं। इसमें सम्मान व गौरव से विचरण करने हेतु कोई भी विश्वासी

धर्म की जड़ें हमारे समाज में इतनी गहरी हैं कि जाने-माने नास्तिक भी अपनी बात कहने के लिए धार्मिक शब्दावली का ही आश्रय लेते हैं

अथवा गैर-विश्वासी होने के लिए स्वतंत्र है। वर्ग के आधार पर संघर्ष, आर्थिक शोषण अथवा प्रतिस्पर्धा का कोई प्रश्न ही नहीं है। परिणामत: कोई भी शांति के साथ रह सकता है, यही 'इस्लाम' शब्द का दूसरा अर्थ है।

यद्यपि सामाजिक रीति-रिवाजों के महत्त्व को कोई नकार नहीं सकता, परंतु हमारे लिए उनका महत्त्व प्राथमिक नहीं द्वितीय है। एक विशेष स्थानीय व्यवहार तथा इस्लाम की आधारभूत शिक्षा के बीच टकराव की स्थिति में इस्लामी उपदेश ही मान्य होगा। हमें 'सलवार-साड़ी' अथवा 'पायजामा-धोती' के झगड़े में समय नहीं गँवाना चाहिए। इस्लाम में किसी विशेष किस्म के वस्त्रों के लिए आग्रह नहीं है। कोई भी परिधान, जो सामान्य है-इस्लामी है।

"नाम में क्या रखा है? गुलाब को किसी भी नाम से पुकारा जाए, इससे उसकी खुशबू में कोई अंतर पड़ने वाला नहीं।"

कार्यक्रम के संरचनात्मक सुझावों पर विचार करने से पूर्व यह देखना जरूरी है कि इस्लाम की आधारभूमि क्या है?

संक्षेप में बताया जा सकता है कि इस्लाम का जन्म न्याय-स्थापन तथा मानव कल्याण के लिए हुआ है। सामाजिक न्याय के मुख्य स्रोत हैं- विश्वबंधुत्व, समानता, विचार व कार्य की स्वतंत्रता तथा मुक्ति व सामाजिक संस्थानों की निष्पक्षता।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि मानव अल्लाह की सर्वोत्कृष्ट रचना है। वह इस दुनिया में उसका (अल्लाह का) 'उच्च प्रतिनिधि' नियुक्त किया गया है। उसको हस्तांतरित किया गया है कि वह 'मानवता' के कल्याण व उन्नति के लिए नियमों का पालन करे। यह अधिकार एक विश्वास अत: उसकी (अल्लाह की) इच्छाओं तथा शर्तों के अनुसार प्रयोग में लाया जाना चाहिए। इस्लाम की आधारभूत शिक्षाओं तथा भारत में उत्पन्न हो रहे हालात को ध्यान में रखते हुए कार्रवाई की योजना के लिए निम्न बातें विचारणीय हैं-

1. सर्वप्रथम भारत का इतिहास अंग्रेजों द्वारा साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से लिखा गया तथा भारतीय लेखकों ने इसी को काट-छाँटकर अपना काम निकाला। अत: जरूरत है कि तथ्यों पर आधारित तथा सापेक्ष दृष्टिकोण व उचित अभिप्राय से भारतीय अन्वेषकों द्वारा इतिहास दुबारा लिखा जाए। ऐसा तथ्यात्मक व संतुलित इतिहास अन्य किसी भी वस्तु की अपेक्षा भारतीय सर्वसाधारण में अधिक सामंजस्य स्थापित करेगा।
2. स्कूलों में मूल शास्त्रों तथा आधारभूत स्रोतों के माध्यम से नैतिक व धार्मिक शिक्षा प्रदान कराई जाए।
3. सभी नागरिकों के जीवन, अवयव, संपत्ति व सम्मान निश्चयपूर्वक सकुशल व सुरक्षित रहें। सामाजिक हिंसा की स्थिति में तुरंत जाँच-पड़ताल कराई जाए, उसकी खोजबीन को प्रकाशित किया जाए व घटनाग्रस्तों को क्षतिपूर्ति दिलाई जाए।
4. निर्जीव अल्पसंख्यक आयोग को संवैधानिक स्तर प्रदान किया जाए।
5. मुसलमान व हिंदू एक-दूसरे के पर्वों पर शुभकामनाओं का आदान-प्रदान करें।
6. मुसलमानों को चाहिए कि वे किसी मुस्लिम देश की नकल न कर कुरान व शरीयत की हिदायतों को मानें।
7. सबको अपनी समझ व संकल्पनानुसार अपना धर्म, पसंद व परिवर्तित करने की छूट हो।
8. जिस राजनीतिक दल की सदस्यता एक समुदाय तक सीमित हो, उस पर प्रतिबंध लगाया जाए, परंतु जैसा कि संविधान सभा में मुस्लिम सदस्यों ने माँग की थी, सभी अल्पसंख्यक हितों को छूट हो कि वे अनुपातीय प्रतिनिधित्व द्वारा अपनी सुरक्षा करें।
9. किसी भी धार्मिक नेता तथा संगठन को भारतीय मूल के व्यक्तियों के सिवा अन्य से विदेशी धन लेने की छूट न हो।
10. भारतीय संविधान सच्ची संघीय भावना के अनुसार कार्य करे, ताकि 'भारतीय संघवाद' के बाहर हिंदुस्तान प्रायद्वीप के क्षेत्र व इकाइयाँ स्वैच्छिक शर्तों पर भारत राज्य के सदस्य बनने को प्रेरित हों।
11. अल्पसंख्यकों की हैसियत के बारे में परमानेंट कोर्ट ऑफ इंटरनेशनल जस्टिस द्वारा दिए गए निर्देशों की भावना को शामिल करने के लिए संविधान की धारा-30 में संशोधन किया जाए (1935 पी.सी.आई.जे. सर. ए/बी नं. 64 पी. ए.)।
12. इन सबसे ज्यादा, हिंदू, मुसलमान व ईसाइयों को एक-दूसरे का सम्मान करना सीखना चाहिए।

–*मंथन*, मई, 1989, (पृ. 19-22)

प्रामाणिक व विश्वासोत्पादक

एम. रफीक खान

संलग्न 'सांप्रदायिक समन्वय कठिनाइयाँ और उनके हल', संकलित परिपत्र के लिए धन्यवाद। मैंने इसे कई बार पढ़ा। परिपत्र प्रामाणिक व निर्णयात्मक घटनाओं पर आधारित है। सभी प्रश्नों का उत्तर विश्वासोत्पादक है।

–*मंथन*, अप्रैल-1989 (पृ. 43)

प्रतिसाद

लक्ष्मी एन. मेनन

समस्या का मूल कारण आर्थिक है

सांप्रदायिक सद्भाव संबंधी समस्या के शोधपत्र पर अपनी सहमति न भेज पाने का मुझे खेद है। मैंने इसे बड़े ध्यान से पढ़ा, परंतु अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने में संकोच आने जैसा प्रतीत कर रहा हूँ। एक नए आशावादी को निरुत्साहित करने की इच्छा नहीं है, परंतु आत्मा से आवाज आती है कि आप मुझे गलत नहीं समझेंगे।

आपने विभिन्न मनीषियों, संतों व ऋषियों को उद्धृत करते हुए सभी धर्मों की एकता का प्रतिपादन किया है। जब कभी आप अल्पसंख्यकों पर विचार करते हैं तो सारा ध्यान मुसलमानों पर केंद्रित कर लेते हैं। भारत में एक नहीं, अनेक समुदाय अल्पसंख्यक हैं। उनको एक-दूसरे से अलग रखनेवाली वस्तु धर्म नहीं है, बल्कि आर्थिक असमानता तथा अव्यावहारिक परंपराओं से उत्पन्न सामाजिक विषमता है। असमानताओं में भूमि सुधारों पर जोर दिया जाना चाहिए। हरिजनों व अनुसूचित जातियों (एक ऐसा विभाजन, जो राष्ट्रीय एकता के लिए बाधक है) पर हिंसा का कारण भूमि-आवंटन अत्यधिक भूमि वाले जमींदार से भूमि लेकर भूमिहीन को देने का विचार। संपन्न जमींदार इस नीति को स्वीकार नहीं करता, इसलिए वह आतातायी और अत्याचार से पूर्ण अमानुषिक तरीके अपनाता हुआ भूमि को वापस लेने के लिए हिंसा का लगातार अथक प्रयोग करता है। सरकार की उदासीनता और बल प्रयोग के अक्षम उपकरणों के कारण स्थिति और बिगड़ती जाती है।

अपने लंबे अनुभव से मैंने यह भी सीखा है कि हमारी जनता नादान और अशिक्षित है, अत: जल्दी ही दुष्प्रचार व गलत जानकारी का शिकार हो जाती है। दुष्प्रचारकों के अनुसार कुछ ऐसी बातें हैं, जिन्हें अशिक्षित होने के कारण अभावग्रस्त लोग जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। उनके पास सही जानकारी पाने के अन्य साधन भी नहीं होते। अत: 'धर्म खतरे में है' का नारा उनके नीरस जीवन के लिए 'मिर्च मसाला' बन जाता है।

मेरा आपसे विनम्र निवेदन है कि आपको इस विषय पर दुबारा से विचार करना चाहिए। आर्थिक और सामाजिक अन्याय को पक्का बनाने में हमारा भी हाथ रहा है। अभावग्रस्त का शोषण करने के लिए राजनीतिज्ञों व दुष्प्रचारकों को अवसर उपलब्ध नहीं कराए जाने चाहिए। मेरे अनुसार इस समस्या को हल करने की संजीवनी बूटी शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार है। इससे प्रत्येक नागरिक स्वयं झूठ व सच का फैसला करने के योग्य हो जाएगा। मुझे संदेह है कि 'सत्य एक है, भिन्न व्यक्ति इसकी भिन्न व्याख्या करते हैं' अथवा 'आप किसी भी नाम से उसे पुकारें, परमात्मा एक है-वही है'। इन उक्तियों का बार-बार प्रयोग करने से आपको कोई उपलब्धि प्राप्त नहीं होगी। ये बातें प्लेटफार्म पर व ड्राइंगरूम में अच्छी लगती हैं। मुझे निश्चय है कि आपको कोई न्यायपूर्ण व बंधनकारी फार्मूला नहीं मिला है। अन्याय के मूल कारण-आर्थिक व सामाजिक विषमताओं पर ध्यान देकर ही आप सफल हो सकते हैं।

मुझे शोधपत्र भेजने के लिए धन्यवाद। स्पष्ट-वादन के लिए क्षमा करें।

-मंथन, मई-1989, (पृ. 27-28)

हमें बाँटने वाला मुख्य कारक धर्म नहीं, बल्कि आर्थिक असमानताएँ और सामाजिक विषमताएँ हैं

प्रतिसाद

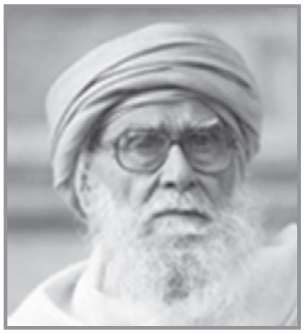

मौलाना वहीदुद्दीन खान

जहाँ अकबर व डॉ. भगवान दास भी असफल हो गए

सांप्रदायिकता की समस्या का सही समाधान धार्मिक स्वतंत्रता और सहिष्णुता ही है

सांप्रदायिक समस्या पर आपका विश्लेषण मूलत: सही है। मैं आपके विचार से पूर्णत: सहमत हूँ कि धार्मिक स्वतंत्रता तथा सहिष्णुता ही इस समस्या का एकमात्र समाधान है, परंतु इस विचार को तार्किक आधार प्रस्तुत करने के लिए न तो यह साबित करना आवश्यक है और न संभव हो सकता है, क्योंकि सभी धर्म एक और समान है। हमारी जानकारी में ऐसे दो महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं, जिनसे यह साबित होता है कि ऐसे (धर्मों को एक व समान घोषित करने के) प्रयत्न पूर्णत: विफल हो जाते हैं। ऐसा एक प्रयत्न बादशाह अकबर ने किया था व दूसरा हाल ही में डॉ. भगवान्दास द्वारा किया गया। पहले के पास महान् राजनीतिक सत्ता व दूसरे के पास सभी धर्मों के ज्ञान का विशाल भंडार था। अपने श्रेष्ठतम प्रयत्नों के बावजूद ये दोनों इस मामले में पूर्णत: असफल हुए। इन अनुभव की भूमिका से मैं समझता हूँ कि धार्मिक स्वतंत्रता व सहनशीलता व्यावहारिक आधार पर प्राप्त की जा सकती है, न कि सैद्धांतिक आधार पर।

आप द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम की रूपरेखा मूलत: सही है, परंतु आपका सुझाव क्रमांक 7 'धार्मिक स्वतंत्रता के सिद्धांतों के सामंजस्य' के अनुसार नहीं है, यद्यपि आपने इसे पर्याप्त तथ्य देकर प्रस्तुत किया है।

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 23)

पढ़ने में रुचिकर परंतु सहमत नहीं

वी. गंगाधर

'मंथन' की प्रति भेजने के लिए धन्यवाद। यद्यपि मैं आपके कई विचारों व सुझावों से सहमत नहीं हूँ, फिर भी हिंदू-मुस्लिम संबंधों पर आप द्वारा लिखा गया निबंध बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा। अगर हम घर पर ही पूजा करें, सभी पर्वों को सार्वजनिक रूप से मनाने पर प्रतिबंध लगा दें और इस तरह बचाए गए धन को अन्य अच्छे कार्यों पर व्यय करें तो हमारी कई समस्याओं का समाधान हो सकता है। धर्म को गलियों में ले जाने से देश की बहुत हानि हुई है। पर्व, प्रदर्शन व आडंबर कानून-पसंद लोगों के लिए अशांति का कारण बन गए हैं।

चूँकि मेरे चारों ओर लाउडस्पीकर पर संगीत चलता रहता है, इसलिए मैंने ऐसा कहा है। क्या वास्तव में गणेशजी को इसकी जरूरत है?

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 24)

प्रतिसाद

सार्थक बात करें फिजूल को छोड़ें

डॉ. ए.आर. बेदार

संप्रदायवाद की राष्ट्रीय समस्या के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण तथा एक सद्भावपूर्ण प्रयास के पीछे कल्याण की भावना की मैं प्रशंसा करता हूँ।

परंतु हमें आवश्यक और ऊपरी बातों के बीच अंतर रखना चाहिए। गत व अरबी नामों जैसी अनावश्यक बातों को न उठाकर सीधे प्राथमिकताओं पर जाना तथा ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

पृष्ठ 7 पर तीसरे पैरे की अंतिम पंक्ति 'इस्लामी आदेशों के अनुसार' इस प्रकार लिखना मेरे अनुसार बिल्कुल भी जरूरी नहीं था। ऊपरी तौर पर मैं निम्नलिखित के स्रोत की जानकारी लेना चाहूँगा-

पृष्ठ 15 की 17वीं लाइन तैमूर का उद्धरण-यह सही नहीं लगता है (न ही यह अपरिहार्य था)। पृष्ठ 19 गजनी की मस्जिद के दरवाजे मंदिर सोमनाथ के दरवाजे बताकर भारत लाए गए और मित्रता के प्रतीक स्वरूप गजनी वापिस भेज दिए गए, बयान सही नहीं है।

पृष्ठ 21 कुरान में कहा गया है कि गौ का मांस जहरीला होता है और गो का दूध रोगनाशक।

पृष्ठ 23 अकबर से बहादुरशाह तक मुगलों की सुन्नत नहीं हुई थी।

पृष्ठ 18, किसी को मुहम्मद तथा उनके अनेक विवाहों पर कटाक्ष करने का अधिकार नहीं है। रेखांकित भाग अनजाने में स्वयं ही व्यंग्यपूर्ण है (इसकी भी आवश्यकता नहीं थी)।

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 28-29)

वी.के. गोकाक

यदा-कदा चमत्कार भी होते हैं

आप द्वारा प्रेषित विवरण पढ़ा। आपके द्वारा सोची गई योजना एक अच्छा प्रारंभिक कदम है। मौजूदा हालात में इससे अधिक कुछ सफल भी नहीं हो सकता। एक पक्का हल तभी निकल सकता है, जब शिक्षा एवं स्वाभाविक संस्कृति को आधार मान राष्ट्रीय स्तर पर हृदय परिवर्तन हो। यदा-कदा चमत्कार भी होते ही रहते हैं, आशा है कि लगभग आधी शताब्दी गुजर जाने के बाद हम एक शांतिपूर्ण स्थिति में होंगे।

-*मंथन*, अप्रैल-1989, (पृ. 40)

प्रतिसाद

एम.वी. कामथ

एक सार्थक वार्तालाप हिंदुओं और मुसलमानों के बीच

आपके परिपत्र और सहपत्र के लिए धन्यवाद। उत्कृष्ट शोधपत्र तैयार करने के लिए बधाई। इसकी तर्कशैली सुंदर है। आवश्यक एकता को स्थापित करने का जी-तोड़ प्रयास किया गया है।

इस समय मैं जूनियर कॉलेज विद्यार्थियों के लिए बुनियादी पाठ्यक्रम की एक पुस्तक तैयार करने में व्यस्त हूँ। इसे पाठ्यपुस्तक शैली में न लिखकर मैं जवाहरलाल के पत्र पुत्री के समान अपनी प्रपौत्री के नाम पत्र के रूप में अनेक विषयों को शामिल करते हुए लिख रहा हूँ। मैं इस पुस्तक का नाम रखूँगा- 'गोरी के नाम पत्र।' आपने महत्त्वपूर्ण संदर्भ की इतनी बढ़िया सामग्री भेज दी है कि इसमें से कई बातें मैं इस पुस्तक में शामिल करना चाहता हूँ। आशा है, आप इसकी अनुमति देकर अनुगृहीत करेंगे।

अपनी रचनात्मक कार्य योजना में आपने सुझाव दिया है कि अंग्रेजों अथवा अंग्रेजों द्वारा प्रेरित भारतीयों द्वारा लिखे गए इतिहास को उस इतिहास से प्रत्यांतरित करना चाहिए, जो भारतीय दृष्टिकोण से लिखा गया हो। यही मैं कर रहा हूँ, अगर आप मुझे इसके प्रयोग की अनुमति दें तो आपका शोधपत्र मेरे लिए बहुत सहायक हो सकता है।

आपने गैर-हिंदुओं के साथ एक सार्थक वार्त्तालाप आरंभ किया है। यह प्रयास सामयिक रूप में प्रासंगिक है, मैं कोई विपरीत टिप्पणी करने के बजाय आपके विचारों से सहमति व्यक्त करता हूँ। सफलता की कामना।

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 29)

प्रेम नारायण भाटिया

शोध का उत्कृष्ट नमूना

अल्पसंख्यक समस्या पर आप द्वारा भेजे गए शोधपत्र पर अपनी प्रतिक्रियाएँ न भेजे जाने का मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। वास्तव में यह शोध व प्रायोजना का एक उत्तम नमूना है। वास्तव में धर्मनिरपेक्षता की समस्या पर आपका शोधपत्र सर्वोत्तम है। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने एक प्रति श्री पी.एन. हक्सर को भी भेजी है। वे राष्ट्रीय एकता पर प्रधानमंत्री को सलाह देने के लिए स्थापित विशेष ग्रुप के संयोजक हैं।

क्यों न इस शोधपत्र को संक्षिप्त कर एक बड़े समाचार-पत्र में छपवाया जाए।

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 26-27)

प्रतिसाद

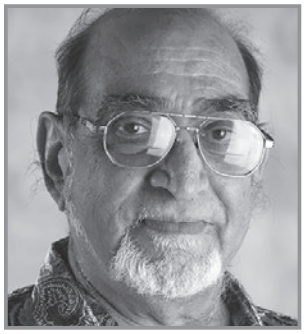

असगर अली इंजीनियर

एक गंभीर विचार विनिमय आवश्यक

अल्पसंख्यक समस्या पर आपके शोधपत्र व संलग्न सहपत्र के लिए धन्यवाद। मैं निश्चित ही इसे सावधानीपूर्वक पढ़ूँगा और अपनी प्रतिक्रिया भेजूँगा।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उस समस्या से सभी का गहरा संबंध है। हम देश में सांप्रदायिक सद्भाव संवर्धन के लिए प्रयत्नशील हैं। इस पर एकीकरण व एकता निर्भर है।

पिछले वर्ष स्टेट्समैन, कलकत्ता में आपका एक लेख प्रकाशित हुआ था। दिल्ली-मेरठ दंगों पर लिखी गई मेरी पुस्तक के परिशिष्ट में भी इसे शामिल किया गया था। यह एक प्रशंसनीय लेख था। हाल ही में आपने औरंगाबाद की हालत पर एक लेख लिखा, जो कि बंबई के 'इंडियन पोस्ट' में प्रकाशित हुआ। उसकी कुछ बातों से मैं सहमत नहीं हूँ।

विभिन्न धार्मिक समुदायों में अच्छी समझ पैदा करने के लिए एक गंभीर विचार-विमर्श की बहुत जरूरत है। हम इसके संयोजन के लिए सदा प्रयत्नशीन रहते हैं।

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 27)

पी. परमेश्वरन

उलझी समस्या का ताजगी भरा समाधन

मैंने आपके निबंध 'सांप्रदायिक समन्वय: कठिनाइयाँ और उनके हल' को पढ़ा और मुझे पढ़कर खुशी हुई कि इस निबंध में उलझी हुई समस्या का एक प्रेरणादायी व ताजा समाधान है। निश्चय ही अल्पसंख्यक समस्या के समाधान के लिए इसमें कई नए व तर्कपूर्ण सुझाव शामिल हैं। इस केंद्रीय विचार पर देश के प्रमुख बुद्धिजीवियों के विचार-विमर्श से बहुमूल्य परिणाम सामने आ सकते हैं। यह अवसर भी उपयुक्त है।

इस शोधपत्र पर प्रथम दृष्टि से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मेरे खयाल से अन्य बिंदुओं पर मुझे विस्तार से विचार करना पड़ेगा। बाद में इसे पढ़कर विस्तार से विचार करूँगा।

-*मंथन*, अप्रैल-1989 (पृ. 16)

प्रतिसाद

एक व्यावहारिक परिपत्र

डॉ. नारायण समतानी

धर्म भारतीय लोगों के जीवन का अविभाज्य अंग है। हमें ऐसा हल ढूँढ़ना चाहिए, जिससे धर्म बना रहे व लोग भी समृद्ध हों

बनारस में एक ईसाई मंडली ने एक सुंदर मैत्री भवन बनाया है। ये हिंदुत्व, बौद्ध, इस्लाम, ईसाइयत व जैनधर्म के बीच विचार-विमर्श संयोजित करने में दिलचस्पी रखते हैं। ये अन्य धर्मों के भगवान तथा संतों की तसवीरें भी रखते हैं। मैं उनसे कहूँगा कि वे विचार-विमर्श की पुस्तक प्रकाशित होने पर आपको भेजें।

जहाँ तक आपके परिपत्र का संबंध है, मुझे यह बहुत व्यावहारिक लगा। धर्म भारतीय लोगों के जीवन का अविभाज्य अंग है। हमें ऐसा हल ढूँढ़ना चाहिए, जिससे धर्म बना रहे व लोग भी समृद्ध हों। आपने ठीक ही कहा है कि भारत में धर्म व विज्ञान का कभी टकराव नहीं हुआ तथा राजनीतिक नेताओं ने निहित स्वार्थ के लिए धर्म का दुरुपयोग किया।

आपका यह कहना भी ठीक है कि मानव मस्तिष्क में कोई-न-कोई ऐसी तरंग है, जो नीरस तथा घातक समानता को उखाड़ फेंकती है। हिंदुत्व में ही अनेक समुदाय नहीं हैं, बल्कि बुद्ध धर्म भी 18 संप्रदायों में बँटा है।

धार्मिक स्वतंत्रता हमारी विशिष्टता रही है। आपने बताया कि चीनी परंपरा में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के धर्म की प्रशंसा करता है। अशोक ने अपनी राज विज्ञप्ति में भी यही कहा था- "दूसरे संप्रदाय के धर्म को ध्यानपूर्वक सुनना व उसका सम्मान करना चाहिए। ऐसा करने से उसके अपने संप्रदाय का ही लाभ होता है।"

मुझे आपका परिपत्र बहुत पसंद आया। आपके प्रशंसनीय प्रयासों को सफलता की कामना करता हूँ।

-*मंथन*, अप्रैल-1989, (पृ. 40)

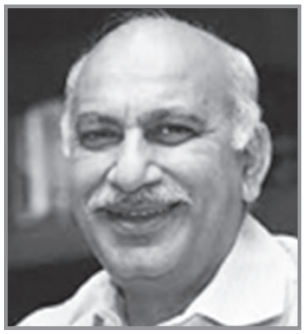

एम.जे. अकबर

अत्यंत कठिन समस्या पर महत्त्वपूर्ण योगदान

भारत में अल्पसंख्यक समस्या पर आपका शोधपत्र प्राप्त हुआ। इसके सभी पहलुओं पर सहमत न होते हुए मैं समझता हूँ कि आधुनिक युग की एक जटिल समस्या पर विचार-विमर्श आमंत्रित करना एक महत्त्वपूर्ण योगदान है, फिर भी मुझे प्रसन्नता होगी कि, आप इसे 'टेलीग्राफ' के संपादकीय पृष्ठ पर प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करेंगे।

-*मंथन*, मई-1989 (पृ. 23)

प्रतिसाद

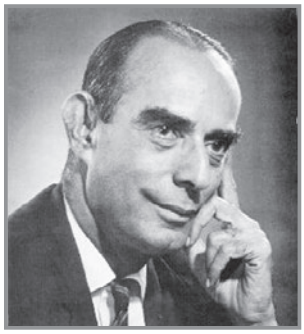

एम.आर. मसानी

धर्मिक समस्या अल्पसंख्यक समस्या नहीं है

भारत में अल्पसंख्यक समस्या के निदान पर आप द्वारा तैयार किए गए परिपत्र एवं उसको अग्रेषित करने के लिए धन्यवाद। वृद्धावस्था के कारण मैं अब अधिक फुर्तीला नहीं रह गया हूँ, मेरी आँखों से भी कम दिखाई दे रहा है। बाद में जो विचार-विमर्श आप आयोजित करना चाहते हैं, मैं उसमें भी भाग नहीं ले सकूँगा। आशा है, इसके लिए आप क्षमा करें। चूँकि मैं पढ़ नहीं सकता हूँ, इसलिए मैंने इस परिपत्र को पढ़वाकर सुना। जिन मूल्यों पर आप जोर दे रहे हैं, उससे मुझे सहानुभूति है। मेरा मत कुछ इस प्रकार है-

1. आपका परिपत्र वास्तव में भारत की अल्पसंख्यक समस्या के लिए नहीं, बल्कि सांप्रदायिक व धार्मिक समस्या के लिए है। दोनों एक जैसी नहीं है। जनजातियों की जातिगत समस्याएँ हैं और हरिजनों की वर्ण संबंधी, ये दोनों अल्पसंख्यक समस्याएँ हैं, परंतु धार्मिक नहीं।
2. आपने कॉलेजों के दाखिले व सरकारी नौकरियों में आरक्षण व भेदभाव का जिक्र नहीं किया है। अमरीका में इसे 'सकारात्मक कार्रवाई' कहते हैं।

मैं यहाँ बंबई में 'इंडियन लिबरल ग्रुप' तथा 'इंडियन कमेटी फॉर कल्चरल फ्रीडम' द्वारा आयोजित संगोष्ठी के निष्कर्षों की प्रतिलिपि संलग्न कर रहा हूँ।

-*मंथन*, अप्रैल-1989, (पृ. 43-44)

डॉ. कर्ण सिंह

मत-मतांतरों के बीच रचनात्मक विमर्श चाहिए

भारत में अंतर-धार्मिक संबंधों के बारे में आपका परिपत्र प्राप्त हुआ। इसे मैंने दिलचस्पी से पढ़ा। यह वह क्षेत्र है, जिससे मेरा गहरा संबंध है। पिछले कुछ वर्षों से मैं भारत तथा विदेश में मत-मतांतरों के आपसी विचार-विमर्श में सक्रिय हूँ। मौजूदा वर्ष के प्रारंभ में मैंने लंदन में 'हिंदुत्व व विश्व-धर्म' पर एक व्याख्यान दिया था। उसकी एक प्रतिलिपि मैं भेज रहा हूँ।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत जैसे देश में जहाँ विश्व के आठ महान् धर्म फलते-फूलते हैं, वहाँ धार्मिक स्तर संरचनात्मक विमर्श बहुत आवश्यक है।

-*मंथन*, अप्रैल-1989, (पृ. 44)

प्रतिसाद

बी.के. नेहरू

आवश्यकता विवेक की है, धर्म की नहीं

मुझे डर है कि संभवत: मैं भी उन्हीं लोगों में से हूँ, जो धर्म को अविवेकपूर्ण व मानवीय इतिहास तथा समाज की सर्वाधिक विघटनवादी ताकत मानते हैं। मैं यह कहने का भी दुस्साहस कर रहा हूँ कि मैं सभी धर्मों की एकता के विचार को संभव नहीं मानता।

एक तरीके से देखा जाए तो हिंदू-मुस्लिम मतभेद धार्मिक नहीं हैं। आवश्यक नहीं है कि दोनों ही विश्वासकर्ताओं के धार्मिक व्यवहारों के कारण झगड़े होते हों। यह मतभेद धार्मिक इसलिए है कि जब भारत में राष्ट्रवाद पहली बार क्रियाशील हो रहा था तो उन्हें अपने राष्ट्रवाद की जड़ें ढूँढ़ने के लिए मजबूर होकर अपनी बुनियाद की ओर जाना पड़ा। प्रेरणा प्राप्त करने के लिए हिंदू वेद और शास्त्रों की ओर मुड़े तथा मुसलमान कुरान तथा हदीस की ओर। आज हिंदू प्रभावी व बहुसंख्या में हैं। अत: स्वाभाविक है कि भारतीय राष्ट्रवाद का चरित्र भी मुख्यतया हिंदू ही होगा। इसे स्वीकार करने में मुसलमानों को दिक्कत आती है, अत: वे अपनी पृथक् पहचान की आक्रामक सुरक्षा करने लगते हैं।

हल निकलेगा, धीरे-धीरे, विवेक के जाग्रत होने पर। जिस देश का आदर्श ऐसा समाज हो, जो धार्मिक पुस्तकों पर निर्भर न होकर विवेक व न्याय पर आधारित हो, तो उस देश की देशभक्ति अपने आप प्राप्त होनी शुरू हो जाएगी।

-*मंथन*, अप्रैल-1989, (पृ. 43)

बी.एन. पांडे

शुभकामनाएँ

आपका लेख व उस पर व्यक्त विचार प्राप्त हुए। मैंने बड़ी जिज्ञासा से इनको पढ़ा। सभी धर्मों को आधारभूत एकता पर यह एक संक्षिप्त निबंध है। मेरी शुभकामनाएँ।

-*मंथन*, मई-1989, (पृ. 24)

प्रतिसाद

डॉ. सुशीला नैयर

सुझावों पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाए

कुछ दिन पूर्व भारत लौटने पर मैंने अल्पसंख्यक समस्या पर आपके शोधपत्र व उसके साथ संलग्न सहपत्र को पढ़ा। मैंने इसे बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ा। मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि समस्याएँ धर्म से पैदा न होकर धर्म के राजनीतिक शोषण से पैदा होती हैं। आपके सुझावों व कार्य की रूपरेखा पर सावधानीपूर्वक विचार किए जाने की जरूरत है। इस विषय पर एक सम्मेलन बुलाने का विचार अच्छा है।

–*मंथन*, मई-1989, (पृ. 25)

इम्तियाज अहमद

भारतीय अनुभव से भारतीय समस्या का समाधान खोजें

हमारे देश की समस्याओं के लिए समाधान भी देसी ही चाहिए

अल्पसंख्यक समस्या पर विचार-विमर्श के लिए शोधपत्र तैयार करने के लिए मैं आपका स्वागत करता हूँ। जहाँ तक इसकी संरचना का संबंध है-इस प्रश्न पर मेरी समझ इतनी अलग है कि मैं आपसे कुछ ही अंशों में सहमत हो सकता हूँ, या तो आप धर्म को (मैकाले के धर्मनिरपेक्षवादियों की तरह) पीछे धकेल देंगे अथवा इसकी सक्रियता को स्वीकार करेंगे। अगर हम पहले रास्ते पर चलें तो समस्या स्वयं ही सुलझेगी। अगर हम दूसरे मार्ग को अपनाएँ तो आपके कार्यक्रम की अंतिम योजना की कई बातें अर्थहीन हो जाएंगी अथवा लड़खड़ाकर गिर पड़ेंगी।

हमारे देश में अल्पसंख्यक समस्या पर विचार करते समय महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा कर आपसी भलाई के सुगम बिंदुओं पर अपनी सहमति व्यक्त करने की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है। मैं समझता हूँ कि इस समस्या के समाधान के लिए हमें आधारभूत भारतीय सभ्यता की ओर देखना होगा और उससे प्रेरणा ग्रहण करनी होगी। हम अपने आपको सिर से पैर तक पूर्णत: धर्मनिरपेक्षवादी अथवा संकर-प्रतिक्रियावादी घोषित कर इस समस्या पर विचार करने नहीं बैठ सकते। भारतीय समाज के आधारभूत स्वभाव को समझे बगैर हम इस समस्या पर हाथ नहीं डाल सकते।

जिस समय आप इस शोधपत्र पर विस्तार से विचार करेंगे, आशा है, मैं भी इस संबंध में विशद विवरण प्रस्तुत कर सकूँगा। मुझे इसे पढ़ने में बड़ा आनंद आया।

–*मंथन*, मई-1989, (पृ. 22)

के.आर. मलकानी जन्म शताब्दी समापन समारोह

प्रख्यात संपादक मलकानी जी पर पुस्तकों का नई दिल्ली में लोकार्पण

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रवक्ता थे मलकानी जी - महामहिम आरिफ मोहम्मद खान

-डॉ शंशाक द्विवेदी

प्रख्यात संपादक एवं समाजधर्मी स्वर्गीय के. आर. मलकानी के जन्म शताब्दी के समारोप कार्यक्रम में उन पर केंद्रित और सद्य प्रकाशित पुस्तकों 'के. आर. मलकानी: हिन्दू-मुस्लिम संवाद' (संपादक डॉ. महेश चंद्र शर्मा), के. आर. मलकानी एंड द मदरलैंड (संपादक -डॉ अनिर्बान गांगुली) का लोकार्पण केरल के राज्यपाल महामहिम आरिफ मोहम्मद खान, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष रामबहादुर राय और एकात्म मानव दर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा 19 नवंबर 2022 को नई दिल्ली में संपन्न हुआ। कार्यक्रम में पुस्तकों का परिचय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी फाउंडेशन के मानद निदेशक डॉ. अनिर्बान गांगुली ने दिया।

कार्यक्रम में एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ. महेश चंद्र शर्मा ने कहा कि मलकानी जी अद्भुत अध्येता थे। वे रोज विकसित होते थे। वे एकमात्र व्यक्ति थे जिन्हें शोध पत्रिका *मंथन*, दैनिक अखबार मदरलैंड और साप्ताहिक पत्रिका आर्गनाइजर के संपादन का अनोखा अनुभव था। वे सरोकारों से पढ़ते थे। देश की मूलभूत समस्यायों के बारे में बहुत सोच-समझकर लिखते और बोलते थे। हिंदू-मुस्लिम संवाद पर उनकी सोच यह थी कि सबको न्याय मिले और तुष्टीकरण किसी का न हो। वास्तव में के. आर. मलकानी के बारे में देश के लोगों को कम जानकारी है। जबकि उनके विराट व्यक्तित्व के बारें में सबको जानना चाहिए। वास्तव में देशवासियों और मीडिया को सकारात्मक मलकानी नहीं मिले बल्कि उनके आलोचकों द्वारा बताए और दिखाए गए मलकानी मिले। हकीकत में मलकानीजी की पत्रकारिता दिव्य और जानने योग्य थी। उनके लेखन में प्रखर राष्ट्रीय प्रवाह है। 1975 में आपातकाल के प्रथम बंदी थे मलकानी जी। 25 जून 1975 की रात्रि में ही उनको मीसा बंदी बना लिया गया। बंदी बनाने का मूल कारण था उनका श्द मदरलैंडश दैनिक का संपादक होना। वे पूरे आपातकाल में बंदी रहे। जेल का सर्वोत्तम उपयोग तो अध्ययन में ही है। मलकानी वैसे भी उद्भट अध्येता थे। जेल ने उन्हें बहुपाठी अध्येता बना दिया। इसका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक 'द मिडनाइट नॉक' में किया है। कुछ समय तक मलकानी जी 'ऑर्गनाइजर' तथा 'द मदरलैंड' दोनों के संपादक रहे। आपातकाल के बाद 'मदरलैंड' पुन: प्रकाशित नहीं हो सका। 'ऑर्गनाइजर' पुन: प्रकाशित हुआ तथा मलकानी जी उसके संपादक सन 1983 तक रहे। तत्पश्चात वे दीनदयाल शोध संस्थान के उपाध्यक्ष तथा शोध पत्रिका '*मंथन*' के संपादक बने।

शोध पत्रिका '*मंथन*', दैनिक अखबार 'मदरलैंड' और साप्ताहिक पत्रिका 'ऑर्गनाइजर' का संपादन जिस कुशलता से मलकानी जी ने किया वो अद्वितीय था। एक ही व्यक्ति तीन अलग-अलग प्रकृति के पत्रों का सफलतापूर्वक संपादन कर पाए, ऐसी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे मलकानी जी। उनकी लेखनी में बिक जाना, दब जाना और झुक जाना नहीं था। वो ऐसे स्वयंसेवक थे जो किसी के कहने पर नहीं बल्कि स्वयं की प्रेरणा से संपादक थे।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी फाउंडेशन के मानद निदेशक डॉ. अनिर्बान गांगुली ने कहा कि इमरजेंसी के पहले भारत कैसा था ये जानने के लिए मलकानी जी के विचारों को 1971 और 1974 के कालखंड में उनके सम्पादन में निकलने वाले अखबार द मदरलैंड के माध्यम से पढ़ना चाहिए। आज की कांग्रेस और उसकी राजनीति को व्यापकता से समझने के लिए मलकानीजी के विचारों को पढ़ना चाहिए। मलकानी जी उस समय तत्कालीन सत्ता के विरोधी नहीं, बल्कि समालोचक थे। उन्होंने सरकार द्वारा 1974 में किए गए पोखरण परमाणु परीक्षण का पुरजोर समर्थन किया था। इंदिरा गाँधी की कार्यप्रणाली में क्या अच्छा था, यह भी उन्होंने 'द मदरलैंड' में लिखा है। मलकानी जी योग्य संपादक थे जिन्हें हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओँ में महारत हासिल थी। भारत की विभिन्न भाषाओं के बारे में उनकी सोच थी कि सभी भाषाएँ भारतीय भाषाएँ हैं और सबको सीखना चाहिए। भाषा के आधार पर कहीं भी कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

केरल के राज्यपाल महामहिम आरिफ मोहम्मद खान ने कार्यक्रम में मलकानी जी के साथ अपने संबंधों का गहराई के साथ जिक्र किया। उन्होंने कहा कि आजादी के बाद राजनीतिक विषयों पर बेहतर बौद्धिक चिंतन की शुरुआत मलकानी जी ने की थी। उन्होंने विवादित और महत्वपूर्ण विषयों पर इस तरह लिखा कि लोग उस पर संवाद कर सकें। उन्होने डिबेट को इग्नाइट किया। उन्होंने कहा कि 1986 में जब मैंने केंद्रीय मंत्रिमंडल से इस्तीफा दिया मेरी उम्र मात्र 35 साल थी और मुझे हौसले और सहयोग की बहुत जरूरत थी। ऐसे समय में मलकानी जी ने अपने लेखों और विचारों के माध्यम से मुझे बहुत हौसला दिया। उन्होंने पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेई द्वारा प्रेरित पाकिस्तान की बस यात्रा से जुड़े कई संस्मरण साझा किए। उन्होंने कहा कि मैं पाकिस्तान नहीं जाना चाहता था, लेकिन अटल जी ने कहा कि ये राष्ट्रीय कर्तव्य है और आपको इसका पालन करना पड़ेगा। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम समस्या के परिप्रेक्ष्य में कहा कि इन सबसे ऊपर राष्ट्रीय कर्तव्य होना चाहिए। वास्तव में हमें राष्ट्रीय एकता की जरुरत है। उन्होंने कहा कि गाँधी जी होते तो हिंदू-मुस्लिम एकता की बात नहीं करते बल्कि राष्ट्रीय एकता की बात करते। भारत की विविध ता और गौरवशाली परंपरा इसलिए जीवित है क्योंकि भारत की सभ्यता और संस्कृति ने समय के साथ बदलाव किया। उन्होंने कहा कि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रवक्ता थे मलकानी जी। छोटी सोच में सुख नहीं होता, जीवन में मानवीय दृष्टिकोण होना जरुरी है। अंग्रेज भारत को राष्ट्र नहीं मानते थे, बल्कि वे भारत को विभिन्न समूहों का संग्रह मानते थे और इसी के आधार पर उन्होंने 'बांटो और राज करो' की नीति पर काम किया जिसमें वो काफी हद तक सफल भी रहे।

अंग्रेजों ने भारत का इतिहास एक साम्राज्यवादी दृष्टि से लिखा था। भारतीय लेखक भी उपकरणात्मक प्रयोग करके इसी को घसीटते रहे हैं। सबसे पहले आवश्यक है कि इस इतिहास को भारतीय दृष्टिकोण से लिखकर स्थानापन्न किया जाए। यह लोकोन्मुख होना चाहिए, न कि राजाओं पर केंद्रित। इस प्रकार का तथ्यपूर्ण व संतुलित इतिहास भारतीय लोगों के आपसी संबंधों में सामंजस्य पैदा करेगा। भारत सदा से ही स्वतंत्र विचारधारा, अभिव्यक्ति व जीवन पद्धति का देश रहा है। इतिहास के इस परिप्रेक्ष्य में हिंदू, मुसलमान व ईसाई आदि सभी के लिए यह संभव होना चाहिए कि वे एक अच्छी बुद्धि, परस्पर विश्वास और एक परमात्मा की प्रतिमूर्ति होने की भावना रखते हुए आपस में शांति और सद्भाव के साथ मिलकर रहें।

के. आर. मलकानी की पुस्तक 'हिंदू मुस्लिम संवाद' में एक जगह लिखा हुआ है कि हेनरी फोर्ड का यह ऐतिहासिक कथन गलत है कि इतिहास शय्या है। जो कोई यह सोचता है कि इसका संबंध मूल अतीत से होता है, वह भी भ्रम में है। इतिहास सजीव सत्ता है, वस्तुतः इतिहास-गाथा अतीत के उस भाग की कथा होती है जिसकी वर्तमान में भी प्रासंगिकता होती है। अतीत के वर्तमान पर पड़ने वाले प्रतिबिंब का नाम इतिहास है। यदि राजनीति बदलती है तो इतिहास भी बदलता है। अतः सवाल उठता है कि वर्तमान की समस्याओं को कैसे सुलझाया जाए और राजनीति में कैसे परिवर्तन हो? इतिहास जानकारी या दिशा-निर्देश मात्र के

लिए ही नहीं लिखा जाता, बल्कि हमें सलाह देने, सावधान करने और प्रेरणा देने के लिए भी लिखा जाता है। सदियों तक भारत में तुर्कों ने शासन किया, लेकिन आज एक भी तुर्की परिवार आपको नहीं मिलेगा। जनसंख्या के केवल दसवें भाग के बराबर लोगों ने ही 'इस्लाम' के आधार पर भारत के बाहर जाने की इच्छा व्यक्त की थी और यह दसवाँ भाग भी किसी पड़ोसी मुस्लिम देश की तुलना में हिंदू संस्कृति के अधिक निकट है। आक्रमणकारियों के खिलाफ भारत की जीत अब लगभग पूर्ण है, तूफान से हम सफलतापूर्वक निकल आए हैं।

'के. आर. मलकानी: हिंदू मुस्लिम संवाद' कई चिर परिचित मान्यताओं को तोड़ती हुई तथ्यों को तार्किक ढंग से पेश करती है जिसका एक उदाहरण राजपूत राजा मानसिंह के संदर्भ में है। महाराणा प्रताप का कार्यकलाप, जहाँ एक प्रतिरोधी शक्ति के रूप में अत्यंत शौर्यपूर्ण है, वहीं जयपुर के राजा मानसिंह के आचरण में ऐसी कोई निम्नता रेखांकित नहीं की जा सकती। मानसिंह की ईमानदार सोच थी कि मुगलों को नहीं हराया जा सकता। इसलिए उसने एक कीमत पर उनको सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार जयपुर मुगलों का महत्वपूर्ण केंद्र बन गया और मुगल जयपुर पर निर्भर हो गए। इस प्रक्रिया में मुगल काबू में होते गए और जयपुर ने दिल्ली पर अधिकार करने की कोशिश की। अकबर को गहरा आघात पहुँचाते हुए जहाँगीर द्वारा अबुल फजल की आकस्मिक हत्या कर दी गई। अन्यथा अकबर और मानसिंह ने तय कर लिया था कि मानसिंह को 'राज प्रतिनिधि' (रीजेंट) बनाकर जहाँगीर के बजाय नाबालिग खुसरो की वास्तविक शासक के रूप में ताजपोशी की जाए, ताकि अकबर के बाद वह वास्तविक बादशाह बन सके।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष वरिष्ठ पत्रकार रामबहादुर राय ने कहा कि हिंदू-मुस्लिम संवाद पर आई हुई हजारों किताबों पर भारी पड़ेगी मलकानी जी की हिंदू-मुस्लिम संवाद पुस्तक। मलकानी जी की पुस्तक संवाद के दरवाजे खोलती है। मलकानी जी की पुस्तक और विचारों में जड़मति को सुजान बनाने की क्षमता है। गाँधी जी क्यों विफल हुए और जिन्ना क्यों सफल हुए के संदर्भ में उन्होंने कहा कि विफलता कई बार सफलता से कीमती होती है। वास्तव में गाँधी जी की विफलता ,सफलता से बहुत ज्यादा कीमती थी। उन्होंने कहा की देश को बेहतर बनाने का सपना मलकानी जी का सपना था। मलकानी जी ने सब धर्मों की बुनियादी एकता पर बहुत सुंदर लिखा है। वरिष्ठ पत्रकार रामबहादुर राय ने कहा कि आज का सोशल मीडिया हिंसा, सेक्स, करप्शन और छीछालेदर का मंच है। सोशल मीडिया संवाद का मंच नहीं है। मलकानी जी के विचार यथार्थ दृष्टिकोण के साथ इतिहास की गलत व्याख्या से सावधान कर रहे हैं।

इस्लाम के बारे में हिंदू और मुसलमान हिंदुत्व के बारे में बहुत कम जानते हैं। अत: विषय-संगत ज्ञान को व्यवस्थित किया जाना और उससे एक दूसरे को परिचित कराना आवश्यक है। हमारे युवजन की सामान्य शिक्षा में धार्मिक-महापुरुषों की जीवनियाँ तथा मुख्य धार्मिक शिक्षाओं का संकलन हिस्सा बनना चाहिए। यह अमेरिकी शिक्षा पद्धति का प्रताप था कि उसने अपने में कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, यहूदी, रूसी, इतावली और आइरिश साहित्य को समेटा तथा देशभक्त अमेरिकी नागरिक पैदा किए। निश्चित ही भारतीय शिक्षा-पद्धति को भी इसी प्रकार भारत की सेवा के लिए उपयुक्त बनाया जा सकता है।

प्रख्यात संपादक एवं समाजधर्मी स्वर्गीय के. आर. मलकानी के जन्म शताब्दी के समारोप कार्यक्रम में राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ से जुड़े हुए राजकुमार भाटिया ने आए हुए सभी अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम में एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के उपाध्यक्ष तथा मेवाड़ विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ. अशोक गदिया का विशेष योगदान रहा। कार्यक्रम का संचालन प्रभात प्रकाशन के प्रमुख प्रभात कुमार ने किया। कार्यक्रम में सैकड़ों बुद्धिजीवियों, पत्रकारों और गणमान्य नागरिकों की उपस्थिथि रहीं।

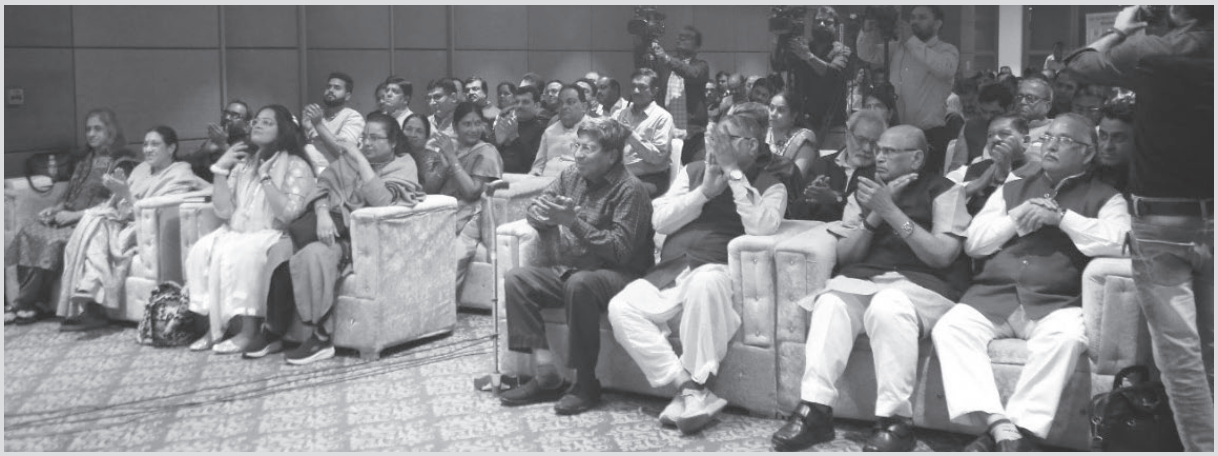

''पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विषय में जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इस विषय पर गवेषणात्मक अध्ययन किया है। इस शोध-ग्रंथ का प्रकाशन न केवल जनसंघ की राजनीति व विचारधारा के प्रति लोगों को लाभदायक जानकारियाँ देगा वरन् राजनीति शास्त्र की वैचारिक बहस को भी आगे बढ़ाएगा। दीनदयाल उपाध्याय व भारतीय जनसंघ को समझने के लिए यह शोध-ग्रंथ प्रामाणिक आधारभूमि प्रदान करता है।''

—डॉ. इकबाल नारायण

पूर्व कुलपति-राजस्थान विश्वविद्यालय,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा नॉर्थ-ईस्ट हिल्ज यूनिवर्सिटी,
पूर्व सदस्य-सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्

''यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।''

—डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकें

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

ISBN 978-93-5186-262-8
₹ 500/-

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार

डॉ. महेशचंद्र शर्मा

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

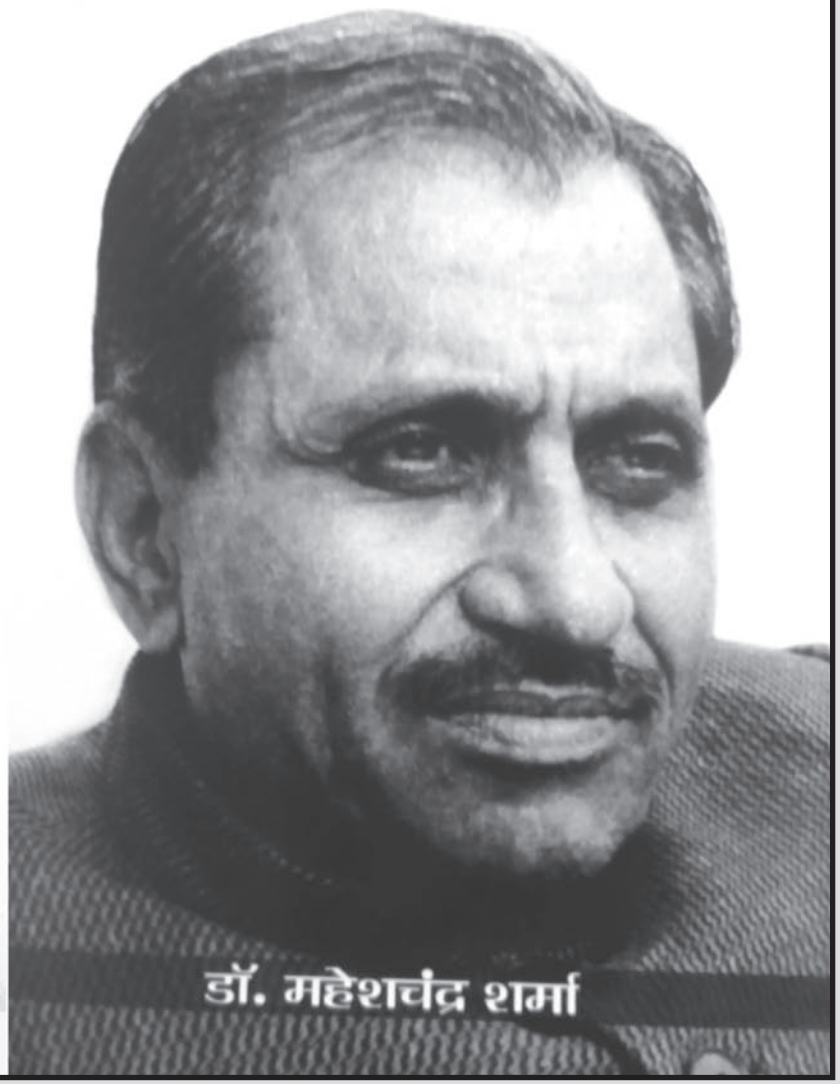

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रंबध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेल: info@manthandigital.com

आज़ादी का अमृत महोत्सव

मध्यप्रदेश शासन

श्री महाकाल लोक
उज्जैन

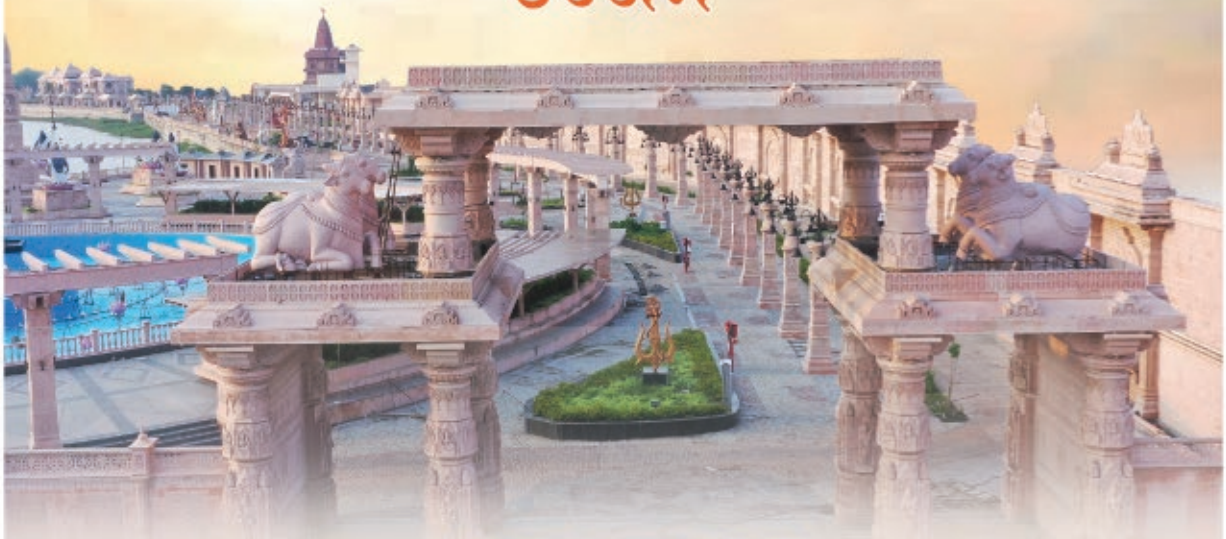

श्री महाकालेश्वर धाम का ऐतिहासिक और अभूतपूर्व नवनिर्माण

श्री महाकालेश्वर धाम उज्जैन, भारत में सर्वाधिक प्रतिष्ठित ज्योतिर्लिंगों में से एक विश्व प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। उज्जैन महाकाल मंदिर परिसर के नवनिर्माण का पहला चरण पूर्ण हो गया है। इस नवनिर्माण योजना का उद्देश्य आकर्षक एवं विश्वस्तरीय धुनियादी अधोसंरचना के विस्तार के माध्यम से श्रद्धालुओं के आध्यात्मिक अनुभवों को और बेहतर एवं आनंददायी बनाना है। इसमें 900 मीटर लम्बा कॉरिडोर, दिव्य कलाकृतियां, एक थीम पार्क, एक हेरिटेज मॉल, ई-इंसपोर्ट सुविधा तथा पवित्र रुद्रसागर झील का पुनरुद्धार सम्मिलित है। 856 करोड़ रुपये से श्री महाकाल मंदिर परिसर में निर्मित श्री महाकाल लोक को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के मार्गदर्शन एवं मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के नेतृत्व में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा मूर्तरूप दिया जा रहा है।

सप्तऋषि के साथ शिव स्वरूप

स्वागत संकुल क्षेत्र में कमल कुंड

शिव विवाह

पूरे परिसर को भगवान शिव की पौराणिक कथाओं के आधार पर विकसित किया गया है। इसमें शिव विवाह, त्रिपुरासुर वध, शिव पुराण और शिव तांडव स्वरूप की विभिन्न कहानियों को दर्शाया गया है जो तीर्थयात्रियों की धार्मिक भावनाओं और पर्यटन अनुभव को और बेहतर बनाएंगे। प्रांगण के मध्य में भोजनालय, जनसुविधा, खरीदारी जैसी सुविधाएं भी उपलब्ध कराई गई हैं।

मुख्य विशेषताएं

- स्वागत संकुल क्षेत्र, जिसमें एक घाट में लगभग 20 हजार तीर्थयात्रियों की क्षमता है, इसमें दो द्वार, नंदी द्वार एवं पिनाकी द्वार, टिकट और सूचना कियोस्क, मूर्तियां, रुद्रसागर तट और सप्तऋषियों सहित 54 फीट ऊंचा पंचमुखी शिव स्तम्भ है।
- कमांड सेंटर के साथ पूर्णतः सुसज्जित सुरक्षा निगरानी क्षेत्र और चार्जिंग डॉक के साथ ई-रिक्शा पार्किंग।
- स्वल्पाहार, हस्तशिल्प, फूल और कर्मकांड की वस्तुओं आदि के लिये 128 दुकानें।
- 400 किलोवाट क्षमता की सोलर रूफ एवं 400 कारों की क्षमता वाली पार्किंग।
- एक ही समय में 6 हजार लोगों की क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से महाकालेश्वर मंदिर के समीप ही निर्मित मानसरोवर।
- महाकालेश्वर मंदिर और राम घाट से जुड़ने वाला प्राचीन पैदल मार्ग और महाकाल द्वार का संरक्षण।
- रुद्रसागर झील को क्षिप्रा नदी के जल से भरने तथा इस झील को सीवर मुक्त बनाने के लिये जीर्णोद्धार।

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

आज़ादी का अमृत महोत्सव

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

"राज्य में उच्च गुणवत्ता के साथ परिणामोन्मुखी शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से सीएम राइज स्कूलों की स्थापना की जा रही है। इन स्कूलों का लक्ष्य विश्व स्तरीय शिक्षण विधियों द्वारा बच्चों के ज्ञान और कौशलवर्धन के साथ ही भारतीय परंपरागत मूल्यों, संस्कृति एवं नवाचारों को समावेशित कर बच्चों का सर्वांगीण विकास करना है।"

-शिवराज सिंह चौहान

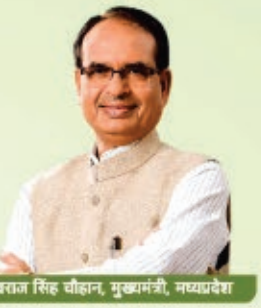

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश में विश्व स्तरीय स्कूली शिक्षा का उदय

स्कूली शिक्षा के नवाचारों को ध्यान में रखते हुए, मध्यप्रदेश सरकार प्रत्येक विद्यार्थी को विश्व स्तरीय शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। पूरे राज्य में उच्च गुणवत्तापूर्ण स्कूली शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने हेतु महत्वपूर्ण पहल के माध्यम से व्यापक कदम उठाए जा रहे हैं।

CM RISE VIDYALAYA

सीएम राइज स्कूल : भविष्य के लिए एक दूरदर्शी सोच - स्कूली शिक्षा में आधुनिकीकरण, नवीन संसाधनों का समावेश, बच्चों का सर्वांगीण विकास, स्कूलों की संरचना में व्यापक सुधार, बच्चों की शिक्षा एवं अन्य गतिविधियों में जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से मध्यप्रदेश सरकार 9,200 सर्वसुविधायुक्त सीएम राइज स्कूल की स्थापना कर रही है। 370 विद्यालयों को फेज-1 (2021-2024) तक पूर्णरूपेण विकसित किया जाएगा और शेष विद्यालयों को फेज-2 (2024-32) में पूरी तरह क्रियाशील बनाया जाएगा।

4 स्तरीय स्कूलों की परिकल्पना

52	261	3,200	5,687
जिला स्तरीय स्कूल	विकासखण्ड स्तरीय स्कूल	संकुल स्तरीय स्कूल	ग्राम समूह स्तरीय स्कूल

सीएम राइज स्कूलों के प्रमुख बिंदु

1. विश्व स्तरीय बुनियादी संरचना
2. परिवहन सुविधा
3. नर्सरी/ केजी से 12वीं तक
4. स्मार्ट कक्षाएं और डिजिटल लर्निंग
5. व्यावसायिक शिक्षायुक्त पाठ्यक्रम
6. 21वीं सदी के कौशल कार्यक्रम
7. अभिभावकों की सहभागिता
8. संसाधनयुक्त प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय और पाठ्येतर गतिविधियां
9. स्टाफ का क्षमता संवर्धन
10. शत-प्रतिशत शिक्षक एवं अन्य स्टाफ

अन्य महत्वपूर्ण शैक्षणिक पहल

- **सुपर 100 :** मेधावी छात्रों को उनके भविष्य के सपनों को साकार करने में सहायतार्थ निःशुल्क और उच्च गुणवत्तापूर्ण कोचिंग।
- **स्थानीय भाषाओं पर आधारित प्राथमिक पाठ्यक्रम :** स्थानीय भाषा में सहज-सरल और निर्बाध शिक्षण प्रणाली।
- **कक्षा 5 और 8 के छात्रों में सीखने की गुणवत्ता में सुधार :** वैज्ञानिक सर्वेक्षणों और छात्रों के लर्निंग डेटा के विस्तृत विश्लेषण द्वारा।

सर्वांगीण विकास हेतु अतिरिक्त प्रयास

अनुगूंज : STEAM (साइंस, टेक्नोलॉजी, एज्युकेशन, आर्ट्स और मैथ्स) के जरिए कला शिक्षा को बढ़ावा देने में अग्रणी राज्य। यह कार्यक्रम बच्चों को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का एक मंच प्रदान करता है।

उमंग : एक जीवन कौशल शिक्षा कार्यक्रम, जो स्वस्थ मानसिकता को बढ़ावा देने और सही दृष्टिकोण विकसित करने पर केंद्रित है, जिससे बच्चों में निर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है।

आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए ईसीसीई प्रशिक्षण : आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की क्षमता निर्माण हेतु राज्य स्तरीय प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण और डिजिटल मॉड्यूल द्वारा संचालित मिश्रित व्यक्तिगत प्रशिक्षण मॉडल।

मूलभूत साक्षरता एवं संख्या ज्ञान : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार, पढ़ने, लिखने और गणित में बुनियादी कौशल को विकसित करना। तीसरी कक्षा तक सभी छात्रों में बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक कौशल सुनिश्चित करना।

स्कूल शिक्षा विभाग, मध्य प्रदेश